छठा सेमेस्टर
(Sixth Semester)

भारत में औद्योगिक विकास
बीएईसी (एन) – 302

(Industrial Development in India)
BAEC (N) – 302

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाई पास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी - 263139

फोन नं. 05946 - 261122, 261123 (अर्थशास्त्र विभाग 05946-286041)

फैक्स नम्बर - 05946-264232,

ई-मेल info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

संयोजक
निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

प्रोफेसर बिक्रम केशरी पटनायक, (सदस्य), निदेशक, विस्तार एवं विकास अध्ययन विद्याशाखा, इंदिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रोफेसर एम. सी. सती, (सदस्य), प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) श्रीनगर, गढ़वाल

प्रोफेसर आर. पी. ममगाई, (सदस्य), प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, दून विश्वविद्यालय, देहरादून

डॉ. शालिनी चौधरी, (सदस्य), सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ. नमिता वर्मा, (मनोनीत सदस्य), सहायक प्राध्यापक (ए.सी.), अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. शालिनी चौधरी
सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. के. आर. त्रिपाठी प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वाविद्यालय, उत्तर प्रदेश	**1 -13**
डॉ. रवि प्रताप सिंह प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वाविद्यालय, उत्तर प्रदेश	**14-16**

पाठ्यक्रम सम्पादन

डॉ. शालिनी चौधरी
सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

आई.एस.बी.एन. :

प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट) : **उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**

प्रकाशन वर्ष : **2026**

Published By : **उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल – 263139**

Printed at : Uttarayan Prakashan, Haldwani **प्रतियाँ:** 61 Nos.

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

छठा सेमेस्टर
Sixth Semester

भारत में औद्योगिक विकास **बीएईसी (एन) – 302**

Industrial Development in India **BAEC (N) – 302**

विषय-सूची

खण्ड – 1 परिचय	**पृष्ठ संख्या**
(Introduction)	**1 – 52**
इकाई-1 औद्योगिक अर्थशास्त्र : अर्थ, क्षेत्र और आवश्यकता (Industrial Economics: Meaning, Scope and Need)	**01-07**
इकाई-2 औद्योगिक संरचना के उद्योग : बड़े, मध्यम, लघु एवं ग्रामोद्योग (Industries of Industrial Structure : Large, Medium, Small And Cottage Industries)	**08-19**
इकाई-3 सार्वजनिक क्षेत्र: निष्पादन और समस्याएं (Public Sector: Performance and Problems)	**20-30**
इकाई-4 विनिवेश: अर्थ, नीतियाँ एवं मूल्यांकन (Disinvestment: Meaning, Policies and Evaluation)	**31-41**
इकाई-5 औद्योगिक एकीकरण एवं गठजोड़- विलय और समामेलन, औद्योगिक एकीकरण के प्रभाव (Industrial Consolidation and Consolidation - Mergers and Amalgamation, Effects of Industrial Consolidation)	**42-52**
खण्ड – 2 औद्योगिक स्थानीयकरण	**पृष्ठ संख्या**
(Industrial Localization)	**53-103**
इकाई-6 औद्योगिक स्थानीयकरण के प्रभावकारी कारक (Influential Factors of Industrial Localization)	**53-65**
इकाई-7 औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्त- वेबर, सार्जेण्ट फ्लोरेन्स (Theories of Industrial Localization - Weber, Sargent Florence)	**66-80**

इकाई-8 औद्योगिक असन्तुलन: कारण और मापन (Industrial Imbalance: Causes and Measurement)	**81-92**
इकाई-9 औद्योगीकरण एवं क्षेत्रीय विकास (Industrialization and Regional Development)	**93-103**
खण्ड – 3 औद्योगिक उत्पादकता और क्षमता **(Industrial Productivity and Efficiency)**	**पृष्ठ संख्या** **104-144**
इकाई-10 उत्पादकता-मापदण्ड और मापन (Productivity- Criteria and Measurement)	**104-116**
इकाई-11 उत्पादकता और क्षमता उपयोग के प्रभावकारी कारक (Influencing Factors of Productivity and Capacity Utilization)	**117-126**
इकाई-12 प्रतिस्पर्द्धा के वातावरण में उत्पादकता का महत्व (Importance of Productivity in a Competitive Environment)	**127-134**
इकाई-13 उत्पादकता और क्षमता उन्नयन के लिए आवश्यकताएं (Requirements for Productivity and Capacity Upgradation)	**135-144**
खण्ड – 4 औद्योगिक वित्त **(Industrial Finance)**	**पृष्ठ संख्या** **145-199**
इकाई-14 औद्योगिक वित्त (Industrial Finance)	**145-160**
इकाई-15 औद्योगिक वित्त के स्रोत (Sources of Industrial Finance)	**161-179**
इकाई-16 विदेशी पूँजी और निवेश (Foreign Capital and Investment)	**180-199**

इकाई- 1 औद्योगिक अर्थशास्त्र: अर्थ, क्षेत्र और आवश्यकता

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 औद्योगिक अर्थशास्त्र का आशय एवं संक्षिप्त परिचय
1.4 औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के विकास का संक्षिप्त इतिहास
1.5 औद्योगिक अर्थशास्त्र का क्षेत्र
1.6 औद्योगिक अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रकृति
1.7 औद्योगिक अर्थशास्त्र की आवश्यकता
1.8 अभ्यास प्रश्न
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.13 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
1.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

किसी विषय के अध्ययन के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि उस विषय के संदर्भ में कुछ परिचयात्मक तथ्यों जैसे- विषय के आशय, विषय के विकास का इतिहास, विषय-वस्तु, अध्ययन प्रकृति, विषय की उपयोगिता इत्यादि को समझ लिया जाए। अत: औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के अध्ययन के लिए भी यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम इस विषय के आशय, विकास का इतिहास, विषय-वस्तु, अध्ययन प्रकृति, उपयोगिता इत्यादि को समझ लिया जाए। इस इकाई के अन्तर्गत इन्हीं पहलुओं की विवेचना की जा रही है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित तथ्यों को समझ सकेंगे-

- ✓ औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय का आशय क्या होता है।
- ✓ औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय का विकास एवं संक्षिप्त इतिहास क्या है।
- ✓ औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय की विषय वस्तु क्या होती है।
- ✓ औद्योगिक अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रकृति क्या होती है।
- ✓ औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के औचित्य को समझा सकेंगे।

1.3 औद्योगिक अर्थशास्त्र का आशय एवं संक्षिप्त परिचय

सामान्य अर्थ में औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय का तात्पर्य अर्थशास्त्र विषय की उस शाखा से है जिसके अन्तर्गत किसी देश के औद्योगिक जगत के अन्तर्गत सम्पादित होने वाले विभिन्न व्यवहारों तथा इनके कारण उत्पन्न होने वाले प्रभावों के आर्थिक पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय का तात्पर्य ऐसे विषय से है जिसके अन्तर्गत किसी एक देश के औद्योगिक जगत के अन्तर्गत घटित होने वाले विभिन्न आर्थिक घटनाओं, औद्योगिक संरचना, व्यावसायिक इकाईयों अर्थात् फर्मों के विभिन्न प्रकार के व्यवहारों इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय आर्थिक साहित्य में एक नया विषय है में भिन्न-भिन्न नामों से प्रचलन में रहा है। इनमें से कुछ प्रमुख नाम हैं- 'इकोनामिक्स ऑफ इन्डस्ट्री', 'इन्डस्ट्री एन्ड ट्रेड', 'इन्डस्ट्रियल ऑर्गेनाइजेसन एन्ड पॉलिसी', 'बिजनेस इकोनॉमिक्स' इत्यादि। वस्तुत: आर्थिक साहित्य में इस विषय को ***'औद्योगिक अर्थशास्त्र'*** के नाम से सर्वप्रथम 1952 में एक अर्थशास्त्री **पी. डब्ल्यू. एस. एन्ड्रयूस** ने अपने एक लेख में सम्बोधित किया। तभी से यह विषय इस नाम से प्रचलन में आने लगा।

1.4 विषय का विकास एवं संक्षिप्त इतिहास

औद्योगिक जगत के विश्लेषण के लिए आवश्यक कुछ आधारभूत पहलुओं जैसे- 'श्रम विभाजन' तथा 'कीमत निर्धारण की प्रक्रिया' का उल्लेख तो अर्थशास्त्र विषय के प्राचीनतम विचारधारा, जो एडम स्मिथ द्वारा अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'वेल्थ आफ नेशन' के माध्यम से व्यक्त किया गया, में मिलता है। स्मिथ के विचार आने के लगभग 100 वर्षों पश्चात् औद्योगिक जगत से सम्बन्धित कुछ अन्य पहलुओं से सम्बन्धित विचार जैसे- 'मॉग-सिद्धान्त', 'लागत विश्लेषण' तथा 'उत्पादन विश्लेषण' विकसित किये गये आगे चलकर फर्म के व्यवहार का विश्लेषण करने में काफी सहायक सिद्ध हुए। इसी क्रम में, 1920 के दशक में, सर्वप्रथम **नाइट** तथा बाद में **सर्राफा** द्वारा विकसित किया गया पूर्ण प्रतियोगिता का मॉडल भी फर्म के व्यवहार की व्याख्या करने मे अत्यन्त महत्वपूर्ण साबित हुआ। परन्तु ये सभी विचार फर्म के वास्तविक व्यवहार का स्पष्ट विश्लेषण करने में असफल साबित हुए।

औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के विकास की गति 1930 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में परिलक्षित होती है जब 1933 में दो महत्वपूर्ण विचारधारायें प्रकाश में आयीं। इन दोनों विचारधाराओं में एक विचार था **जोन रॉबिन्सन** का और दूसरा **चेम्बरलिन** का। **जोन रॉबिन्सन** ने अपने लेख के माध्यम से 'अपूर्ण प्रतियोगिता' के मॉडल को प्रस्तुत किया तथा एडवर्ड चेम्बरलिन ने 'एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता' के मॉडल को प्रस्तुत किया। ये दोनों ही मॉडल औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय को विकसित करने मे काफी महत्वपूर्ण साबित हुए। एडवर्ड चेम्बरलिन का विचार आने के पश्चात् फर्म के सिद्धान्त के सन्दर्भ मे नये-नये

विचारों, जैसे - द्वयाधिकार का मॉडल, अल्पाधिकार के मॉडल का अभ्युदय हुआ। ये सभी विचार आधुनिक औद्योगिक जगत में सम्पादित किये जाने वाले विभिन्न व्यवहारों जैसे-'उत्पाद विविधीकरण', 'औद्योगिक एकीकरण', 'विज्ञापन', 'नवप्रवर्तन', 'शोध एवं अनुसन्धान' इत्यादि क्रियाओं की व्याख्या करने में काफी हद तक सफल साबित हुए।

औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के विकास के सन्दर्भ में उपरोक्त सभी विचार 'निगमन प्रणाली' के आधार पर विकसित किये गये थे। परन्तु इस सन्दर्भ में एक विचारधारा ऐसी भी विकसित होती रही जो 'आगमन प्रणाली' पर आधारित रही। इस विचारधारा के अन्तर्गत जिन अर्थशास्त्रियों का योगदान उल्लेखनीय रहा उनमें प्रमुख थे - एलन (1933), सार्जेन्ट फ्लोरेन्स (1933), बर्ले एवं मीन्स (1932), डब्ल्यू. जी. हाफमैन (1933), पी. डब्ल्यू. यस. एन्ड्रयूस (1949) इत्यादि। वस्तुत: इस विषय के विकास में तीव्र गति 1950 एवं 1960 के दशक मे देखने को मिलती है। 1950 में एक जर्नल- 'जर्नल ऑफ इण्डस्ट्रियल इकोनामिक्स' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात अनेक अर्थशास्त्रियों जैसे- बेन, बॉमोल, रॉबिन मैरिस, स्टिगलर, साइमन, रिचर्ड साइर्ट, जेम्स जी. मार्च, विलियम्सन, गालब्रेथ इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने आगमन प्रणाली पर आधारित अपने विचारों के आधार पर इस विषय को और अधिक विकसित स्वरुप प्रदान किया। **बेन** ने तो इस विषय के अध्ययन के लिये एक अलग प्रारूप को ही विकसित किया जिसे **"स्ट्रक्चर - कन्डक्ट - पर्फामेन्स"** प्रारुप के नाम से जाना जाता है। वहीं दूसरी तरफ, रॉबिन मैरिस ने फर्म के व्यवहार का विश्लेषण करने के लिये एक अलग विचारधारा 'प्रबन्धकीय सिद्धान्त' का प्रतिपादन करके इस विषय के विकास को नया आयाम प्रदान किया। ठीक इसी प्रकार रिचर्ड साइर्ट और जेम्स जी. मार्च ने 'व्यवहारवादी सिद्धान्त' का प्रतिपादन करके इस विषय के विकास को और अधिक गति प्रदान किया।

1.5 औद्योगिक अर्थशास्त्र का क्षेत्र

औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के क्षेत्र का अभिप्राय उन सभी विषय वस्तुओं से होता है जो इसके अन्तर्गत अध्ययन के लिए शामिल किये जाते हैं। चूँकि औद्योगिक अर्थशास्त्र का तात्पर्य उस विषय से होता है जिसके अन्तर्गत औद्योगिक जगत के अन्तर्गत सम्पादित होने वाले विभिन्न क्रियाकलापों के आर्थिक पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। इसीलिए इस विषय के अन्तर्गत औद्योगिक जगत के अन्तर्गत विद्यमान व्यवसायिक इकाईयों अर्थात् फर्मों के व्यवहार से सम्बन्धित विभिन्न सैद्धान्तिक विषयों जैसे- 'मांग विश्लेषण', 'उत्पादन विश्लेषण', 'लागत विश्लेषण', 'कीमत निर्धारण', 'उत्पाद विविधीकरण', 'औद्योगिक एकीकरण', 'नवप्रवर्तन की क्रियाएं', 'स्थानीयकरण विश्लेषण', 'फर्मों की संवृद्धि' इत्यादि विषयों को शामिल किया जाता है। चूँकि फर्मों के द्वारा सम्पादित किये जाने वाले विभिन्न व्यवहार औद्योगिक जगत में विद्यमान औद्योगिक वातावरण से प्रभावित हो सकते हैं इसलिए औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के अन्तर्गत औद्योगिक वातावरण से सम्बन्धित विभिन्न विषयों जैसे- 'बाजार संरचना', 'औद्योगिक संरचना', 'औद्योगिक नीति', 'औद्योगिक सम्बन्ध' इत्यादि विषयों को भी शामिल करना आवश्यक होता है। इतना ही नहीं बल्कि औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत उन विषयों को भी शामिल करना आवश्यक होता है जिनके द्वारा देश के औद्योगिक जगत एवं इसके अन्तर्गत विद्यमान फर्मों के स्थिति का आंकलन किया जा सके। अत: औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत कुछ अन्य विषयों जैसे- 'लाभदायिता', 'औद्योगिक कुशलता', 'औद्योगिक उत्पादकता', 'औद्योगिक विकास', 'औद्योगिक रुग्णता', 'औद्योगिक संकेन्द्रण', 'क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन' इत्यादि विषयों को भी शामिल किया जाना आवश्यक होता है।

1.6 औद्योगिक अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रकृति

जैसा कि इसके पहले स्पष्ट किया गया कि औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के अन्तर्गत अनेक विषयों को शामिल किया जाता है। इन विषयों के अन्तर्गत कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनके लिए सैद्धान्तिक विश्लेषण आवश्यक होता जबकि कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनके लिए तथ्यात्मक विवेचना आवश्यक होता है। इसीलिए इस विषय के अध्ययन के लिये दो दृष्टिकोण अपनाये जाते हैं- 'विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण' तथा 'विवेचनात्मक दृष्टिकोण'।

विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत औद्योगिक जगत के अन्तर्गत विद्यमान व्यवसायिक इकाईयों अर्थात् फर्मों के व्यवहार से सम्बन्धित विभिन्न सैद्धान्तिक विषयों जैसे- 'मांग विश्लेषण', 'उत्पादन विश्लेषण', 'लागत विश्लेषण', 'कीमत निर्धारण', 'उत्पाद विविधीकरण', 'औद्योगिक एकीकरण', 'नवप्रर्वतनन की क्रियाएं', 'स्थानीयकरण विश्लेषण', 'फर्मों की संवृद्धि' इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। स्पष्ट है कि विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत किसी एक देश की औद्योगिक जगत की स्थिति पर विचार नहीं किया जाता है बल्कि फर्म एवं उद्योग के सामान्य व्यवहार के सैद्धान्तिक पहलुओं पर विचार किया जाता है। यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी जान लेना आवश्यक है कि औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किये जाने वाले विश्लेषणात्मक अध्ययन भी दो पद्धतियों पर आधारित हो सकते हैं- 'निगमनात्मक पद्धति' एवं 'आगमनात्मक पद्धति'।

निगमनात्मक पद्धति के आधार पर जो विश्लेषण सम्पादित किये जाते हैं वे कुछ मान्यताओं तथा तर्कों पर आधारित होते हैं। दूसरी तरफ आगमनात्मक पद्धति के आधार पर जो विश्लेषण सम्पादित किये जाते हैं वे 'अनुभवप्रसिद्ध प्रमाणों' अर्थात् व्यावहारिक अध्ययनों पर आधारित होते हैं।

विवेचनात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत किसी एक देश विशेष के औद्योगिक जगत के स्थितियों एवं परिस्थितियों के अध्ययन को शामिल किया जाता है। जैसे यदि किसी देश के औद्योगिक विकास, औद्योगिक संरचना, औद्योगिक समस्याएं, औद्योगिक नीतियों इत्यादि के विषय में अध्ययन करना हो तो यह विवेचनात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत किया जायेगा।

1.7 औद्योगिक अर्थशास्त्र की आवश्यकता

आर्थिक साहित्य के अन्तर्गत एक यह प्रश्न यह उठता रहा है कि क्या यह विषय अर्थशास्त्र विषय के अन्तर्गत एक अलग शाखा के रुप में आवश्यक है कि नहीं? इस सन्दर्भ में अर्थशास्त्रियों में एक मत नहीं हैं। कुछ अर्थशास्त्री इसे अलग विषय के रुप में स्वीकार करते हैं जबकि कुछ अर्थशास्त्री इसे अलग विषय के रुप में स्वीकार नहीं करते हैं।

वस्तुत: औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत मुख्य रूप से एक उत्पादक अथवा एक फर्म के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत भी एक फर्म के व्यवहार का ही अध्ययन किया जाता है। इस आधार पर कुछ अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि दोनों विषय अलग नहीं है। इन अर्थशास्त्रियों का मत है कि औद्योगिक अर्थशास्त्र, व्यष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत फर्म के पारंपरिक सिद्धान्त का ही एक विकसित स्वरूप है। जैसे कि एक अर्थशास्त्री 'स्टिगलर' ने यह मत व्यक्त किया कि "औद्योगिक अर्थशास्त्र का अलग विषय के रूप में कोई अस्तित्व नहीं है बल्कि यह एक प्रकार से व्यष्टि अर्थशास्त्र का ही विकसित स्वरुप है।" दूसरी तरफ कुछ अर्थशास्त्रियों, जैसे- पी. डब्ल्यू. एन्ड्रयूज का यह मत है कि अध्ययन की प्रकृति, प्रवृति, विषय-वस्तु इत्यादि के आधार पर दोनों विषयों में काफी भिन्नताएं हैं। ये भिन्नताएं निम्नवत हैं-

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत जो सिद्धान्त विकसित किये जाते हैं वे ऐसे अमूर्त मान्यताओं पर आधारित होते हैं जो व्यवहारिक जगत में नहीं पाये जाते हैं जबकि औद्योगिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त सामान्य रुप से अनुभव प्रसिद्ध प्रमाणों पर आधारित होते हैं।
2. व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त निगमन प्रणाली पर आधारित होते हैं जबकि औद्योगिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त निगमन प्रणाली के साथ-साथ आगमन प्रणाली पर भी आधारित होते हैं।
3. व्यष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत प्राप्त निष्कर्षों का ठीक-ठीक परीक्षण नहीं किया जा सकता बल्कि केवल तर्कों के आधार पर ही मूल्यांकन किया जा सकता है। दूसरी तरफ औद्योगिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त चूँकि आगमन पद्धति पर आधारित होते हैं इसलिए औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत प्राप्त निष्कर्षों का परीक्षण किया जा सकता है।
4. व्यष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत विकसित फर्म के सिद्धान्त सामान्य रूप से 'लाभ-अधिकतम करने' के उद्देश्य पर आधारित होते हैं जबकि औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत विकसित फर्म के सिद्धान्त अन्य उद्देश्यों पर भी आधारित होते हैं।
5. व्यष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत फर्म के व्यवहार से सम्बन्धित व्यष्टिगत पहलुओं पर ही विचार किया जाता है जबकि औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत फर्म के व्यवहार का अध्ययन करते समय न केवल व्यष्टिगत बल्कि इससे सम्बन्धित अनेक समष्टिगत पहलुओं पर भी विचार किया जाता है।

इसी प्रकार कुछ अर्थशास्त्री 'औद्योगिक अर्थशास्त्र' एवं 'प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र' विषय के बीच कोई भेद नहीं करते और इसे प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का ही एक स्वरूप मानते हैं। वस्तुत: प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र विषय के अन्तर्गत जिन विषयों पर विचार किया जाता है उनमें प्रमुख हैं- मांग विश्लेषण, लागत विश्लेषण, लाभ विश्लेषण, कीमत निर्धारण, निवेश मूल्यांकन इत्यादि। ये सभी विषय औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत भी अध्ययन किये जाते हैं और इस आधार पर दोनों विषय एक दूसरे के समान प्रतीत होते हैं। परन्तु दोनों विषयों में समानता होने के साथ-साथ कुछ मूलभूत अन्तर भी होता है जो निम्नवत हैं-

1. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र 'आदर्शवादी दृष्टिकोण' पर आधारित होता है जबकि औद्योगिक अर्थशास्त्र 'व्यवहारवादी दृष्टिकोण' पर आधारित होता है। अर्थात प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के सिद्धान्त इस प्रश्न के समाधान को केन्द्रित करके विकसित किये जाते हैं कि "क्या होना चाहिए" जबकि औद्योगिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त इस प्रश्न के समाधान को केन्द्रित करके विकसित किये जाते हैं कि "क्या होता है"।
2. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत केवल एक उत्पादक के व्यवहार से सम्बन्धित पहलुओं का ही विश्लेषण किया जाता है जबकि औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत एक उत्पादक के व्यवहार के साथ-साथ सम्पूर्ण औद्योगिक जगत की कार्यशैली को समझने एवं उसके व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है।
3. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र विषय 'अन्र्तअनुशासनात्मक' प्रकृति का होता है जिसके अन्तर्गत फर्म के व्यवहार के अतिरिक्त कई अन्य विषयों जैसे एकाउन्टेन्सी, ऑपरेशन रिसर्च, इन्डस्ट्रियल साइकोलोजी इत्यादि विषयों को भी शामिल किया जाता है। जबकि औद्योगिक अर्थशास्त्र के अंतर्गत फर्म के व्यवहार से सम्बन्धित केवल आर्थिक विषयों को ही शामिल किया जाता है।

अत: उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि किसी देश के औद्योगिक जगत के अन्तर्गत सम्पादित होने वाले विभिन्न व्यवहारों तथा इनके कारण उत्पन्न होने वाले समस्त प्रभावों के आर्थिक पहलुओं का अध्ययन करना है तो इसके लिए न तो व्यष्टि अर्थशास्त्र और न ही प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अध्ययन पर्याप्त होगा। इसके लिए एक अलग विषय अर्थात् औद्योगिक अर्थशास्त्र को स्वीकारना होगा।

1.8 अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. औद्योगिक अर्थशास्त्र की प्रकृति अन्र्तनुशासनात्मक होती है।
2. व्यष्टि अर्थशास्त्र आगमनात्मक पद्धति पर आधारित होती है।
3. औद्योगिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त केवल अमूर्त मान्यताओं पर आधारित होते हैं।
4. औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत व्यष्टि के साथ-साथ समष्टिगत पहलुओं को भी शामिल किया जाता है।
5. औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत औद्योगिक नीतियों का भी अध्ययन किया जाता है।

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. औद्योगिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त अमूर्त मान्यताओं एवं ....पर आधारित होते हैं।

   (मान्यताओं **या** अनुभव प्रसिद्ध प्रमाणों)
2. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र विषय की विषय-वस्तु औद्योगिक अर्थशास्त्र से..............होती है।

   (समान **या** अलग)
3. औद्योगिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त निगमनात्मक एवं ....पद्धति पर आधारित होते हैं।

   (विश्लेषण **या** आगमनात्मक)
4. औद्योगिक अर्थशास्त्र के अध्ययन के अन्तर्गत विश्लेषणात्मक एवं ....दृष्टिकोण अपनायी जाती है।

   (विवेचनात्मक **या** निगमनात्मक)

5. औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय को सर्वप्रथम..............ने इस नाम से ही सम्बोधित किया था।
(अल्फ्रेड मार्शल **या** पी. डब्ल्यू. एन्ड्रयूज)

1.9 सारांश

सामान्य अर्थ में औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय का तात्पर्य अर्थशास्त्र विषय की उस शाखा से है जिसके अन्तर्गत औद्योगिक जगत के विभिन्न क्रियाकलापों के आर्थिक पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। इस विषय के अन्तर्गत औद्योगिक जगत के व्यवहारों के अध्ययन के लिये दो दृष्टिकोण अपनाये जाते हैं - विवेचनात्मक दृष्टिकोण तथा विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण। विवेचनात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत किसी एक देश विशेष के औद्योगिक जगत के स्थितियों एवं परिस्थितियों के अध्ययन को शामिल किया जाता है। जैसे यदि किसी देश के औद्योगिक विकास, औद्योगिक संरचना, औद्योगिक समस्याएं, औद्योगिक नीतियों इत्यादि के विषय में अध्ययन करना हो तो यह विवेचनात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत किया जायेगा। दूसरी तरफ विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत सामान्य रूप से औद्योगिक जगत के विभिन्न आर्थिक क्रियाकलापों एवं व्यवहारों के सैद्धान्तिक पहलुओं का विश्लेषण किया जाता है। जैसे मांग विश्लेषण, लागत विश्लेषण, कीमत निर्धारण, बाजार संरचना, उत्पाद विविधीकरण, नवप्रर्वतन की क्रियाएं इत्यादि। विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के अध्ययन दो पद्धतियों पर आधारित हो सकते हैं ये दो पद्धतियां हैं- निगमनात्मक एवं आगमनात्मक पद्धति।

आर्थिक साहित्य के अन्तर्गत औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय की एक अलग शाखा के रुप में आवश्यकता के सन्दर्भ में अर्थशास्त्रियों में एक मत नहीं रहा है। स्टिगलर जैसे अर्थशास्त्री इस विषय को अलग विषय के बजाय व्यष्टि अर्थशास्त्र का ही एक रूप मानते हैं। ठीक इसी प्रकार कुछ अर्थशास्त्री इस विषय को प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के रूप में स्वीकार करतें हैं। परन्तु अनेक अर्थशास्त्री इस विचार से सहमत नहीं हैं और औद्योगिक अर्थशास्त्र को इन दोनों विषयों से कई अर्थों में भिन्न मानते हुए एक अलग विषय के रुप में स्वीकार करते हैं।

1.10 शब्दावली

- **विवेचनात्मक** - इसका अभिप्राय अध्ययन की उस पद्धति से है जिसमें किसी विषय के बारे में तथ्यात्मक अध्ययन किया जाता है।
- **विश्लेषणात्मक-** इसका अभिप्राय अध्ययन की उस पद्धति से है जिसमें किसी विषय के बारे में सैद्धान्तिक रुप से अध्ययन किया जाता है।
- **निगमनात्मक-** इसका अभिप्राय अध्ययन की उस पद्धति से होता है जिसके अन्तर्गत विशिष्ट आधार पर प्राप्त किये गये निष्कर्षों का सामान्यीकरण किया जाता है।
- **आगमनात्मक-** इसका अभिप्राय अध्ययन की उस पद्धति से होता है जिसके अन्तर्गत सामान्य आधार पर प्राप्त किये गये निष्कर्षों का विशिष्टीकरण किया जाता है।
- **व्यष्टि-** इसका अभिप्राय सूक्ष्म अर्थात् छोटा होता है।
- **समष्टि-** इसका अभिप्राय व्यापक अर्थात् वृहत् होता है।
- **अर्न्तनुशासनात्मक-** इसका अर्थ किसी विषय का अध्ययन करने या किसी समस्या का समाधान करने के लिए दो या दो से अधिक शैक्षणिक, वैज्ञानिक या कलात्मक विषयों के संयोजन से है। किसी एक क्षेत्र से किसी विषय को देखने के बजाय, अर्न्तनुशासनात्मक दृष्टिकोण अधिक व्यापक समझ और समग्र समाधान के लिए कई क्षेत्रों के ज्ञान और विधियों का उपयोग करता है। उदाहरण के लिए एक अंत:विषयक परियोजना एक नई तकनीक विकसित करने के लिए इंजीनियरिंग, नैतिकता और कंप्यूटर विज्ञान को संयोजित कर सकती है। ।

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. असत्य
2. असत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. अनुभव प्रसिद्ध प्रमाणों 2. अलग 3. आगमनात्मक
4. विवेचनात्मक 5. पी. डब्ल्यू. एन्ड्रयूज

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डिवाइन, पी.जे. (एट अल) (1974) ***एन इंट्रोडक्शन टू इंडस्ट्रियल इकोनॉमिक्स***, औद्योगिक अर्थशास्त्र का एक परिचय, एलन एंड अनविन, लंदन, अध्याय 1।
- टी. विल्सन और पी.डब्ल्यू.एस. एंड्रयूज (1952) ***इंडस्ट्रियल इकोनॉमिक्स येस अ स्पेशलिस्ट सब्जेक्ट***, जर्नल ऑफ इंडस्ट्रियल इकोनॉमिक्स।
- स्टिगलर, जी.जे. (1968) ***दा आर्गेनाईजेशन ऑफ़ इंडस्ट्रीज***, आर.डी. इरविन निगमन, होमवुड, अध्याय 1।
- हॉफमैन, डब्ल्यू.जी. (1958) ***दा ग्रोथ ऑफ़ इंडस्ट्रियल इकोनॉमिक्स***, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

1.13 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- बर्थवाल, आर.आर. (2005) ***इंडस्ट्रियल इकोनॉमिक्स – एन इंट्रोडक्टरी टेक्स्टबुक***, न्यू ऐज इंटरनेशनल पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
- स्टीफन, मार्टिन (1989) ***इंडस्ट्रियल इकोनॉमिक्स- इकोनॉमिक एनालिसिस एंड पब्लिक पालिसी,*** मैकमिलन पब्लिशिंग कंपनी, न्यूयॉर्क।
- शर्मा, ए. के. (2009) ***इंडस्ट्रियल इकोनॉमिक्स***, अनमोल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस.(2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***", साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

1.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के आशय को स्पष्ट करते हुए इसके संक्षिप्त इतिहास पर प्रकाश डालिए।
2. औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के विषय वस्तु तथा अध्ययन की प्रकृति की विवेचना कीजिए।
3. क्या आप समझते हैं कि औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय का आर्थिक साहित्य में अलग औचित्य होना चाहिए ? अपने विचार को स्पष्ट कीजिए।
4. औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय की महत्ता को स्पष्ट कीजिए।
5. क्या आप समझाते हैं कि औद्योगिक अर्थशास्त्र, व्यष्टि अर्थशास्त्र एवं प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के बीच समानता होते हुए भी ये तीनों विषय एक दूसरे से भिन्न हैं ? अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिए।

इकाई-2 औद्योगिक संरचना के उद्योग: बड़े, मध्यम, लघु एवं ग्रामोद्योग

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 औद्योगिक संगठन का आशय
2.4 फर्म का संगठनात्मक स्वरुप
2.5 निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र
2.6 ग्रामोद्योग, लघु उद्योग, मध्यम उद्योग तथा बड़े उद्योग
2.7 अभ्यास प्रश्न
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.12 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस खण्ड की पिछली इकाई के अन्तर्गत हम लोगों ने यह समझा था कि औद्योगिक अर्थशास्त्र का तात्पर्य ऐसे विषय से होता है जिसके अन्तर्गत किसी एक देश के औद्योगिक जगत के विभिन्न प्रकार के व्यवहारों, घटनाओं, संरचना इत्यादि विषयों का अध्ययन किया जाता है। हालाँकि किसी देश के औद्योगिक परिदृश्य का अध्ययन करने के लिए, सबसे पहले उस देश में औद्योगिक संगठन की प्रकृति को समझना आवश्यक है। इस इकाई में इसी विषय पर चर्चा की गई है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ बता सकेंगे कि औद्योगिक संगठन का आशय क्या होता है।
- ✓ समझा सकेंगे कि फर्म के संगठन के विभिन्न स्वरुप क्या हाते हैं।
- ✓ सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के बीच के अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ✓ बता सकेंगे कि बड़े, लघु, मध्यम एवं ग्रामोद्योग इकाईयों की अवधारणा क्या होती है।

2.3 औद्योगिक संगठन का आशय

औद्योगिक संगठन का अभिप्राय इस बात से होता है किसी औद्योगिक जगत के अन्तर्गत औद्योगिक इकाईयों अर्थात् फर्मों का गठन किस प्रकार है। वस्तुत: औद्योगिक संगठन की अवधारणा को समझने के लिए सर्वप्रथम फर्म की अवधारणा को समझाना आवश्यक होगा। परम्परागत विचारधारा के अनुसार फर्म को एक तकनीकी इकाई के रुप में स्वीकार किया जाता था। इस विचारधारा के अनुसार फर्म का गठन लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी वस्तु के उत्पादन अथवा किसी सेवा की पूर्ति के लिए किया जाता है। इसका संचालन किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा किया जाता है तथा इसका स्वामित्व उसी व्यक्ति अथवा उन्हीं व्यक्तियों के समूह में निहित होता है। इस विचारधारा के अन्तर्गत फर्म के स्वामी तथा प्रबन्ध तन्त्र के बीच कोई भेद नहीं समझा जाता है। अर्थात् इस विचारधारा के अनुसार फर्म का निर्माण करने वाला व्यक्ति ही उसका स्वामी होता है तथा वही उसका प्रबन्धक भी होता है।

दूसरी तरफ, आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत फर्म की उपरोक्त अवधारणा को एक संकुचित अवधारणा के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस विचारधारा के अन्तर्गत फर्म की अवधारणा को व्यापक रुप में प्रस्तुत करते हुए इसे तकनीकी इकाई की अपेक्षा संगठनात्मक इकाई के रूप में स्वीकार किया जाता है। वस्तुत: आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत फर्म के स्वामी तथा प्रबन्ध-तन्त्र के बीच भेद को स्वीकार किया जाता है तथा यह विचार प्रस्तुत किया जाता है कि औद्योगिक जगत के अन्तर्गत फर्मों के स्वामित्व तथा प्रबन्ध-तन्त्र एक दूसरे से पृथक होते हैं।

उपरोक्त दोनों विचारधाराओं से स्पष्ट है कि यदि स्वामित्व एवं प्रबन्ध-तन्त्र की प्रकृति पर विचार किया जाए तो एक फर्म का गठनात्मक स्वरुप भिन्न-भिन्न हो सकता है। फर्म के गठनात्मक स्वरुप के विभिन्न रुपों को यहाँ स्पष्ट किया जा रहा है।

2.4 फर्म का संगठनात्मक स्वरुप

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया कि फर्म का संगठनात्मक स्वरुप इस बात से निर्धारित होता है कि फर्मों के 'स्वामित्व' एवं 'प्रबन्ध-तन्त्र' का स्वरुप क्या है। यदि स्वामित्व एवं प्रबन्धन के आधार पर देखा जाए तो औद्योगिक जगत के अन्तर्गत फर्मों के संगठनात्मक स्वरुप के प्रमुख रुप से चार स्वरुप देखने को मिलते हैं- 'एकल स्वामित्व', 'साझेदारी', 'संयुक्त स्कन्ध कम्पनी' अथवा 'निगम' तथा 'सहकारी समितियां'।

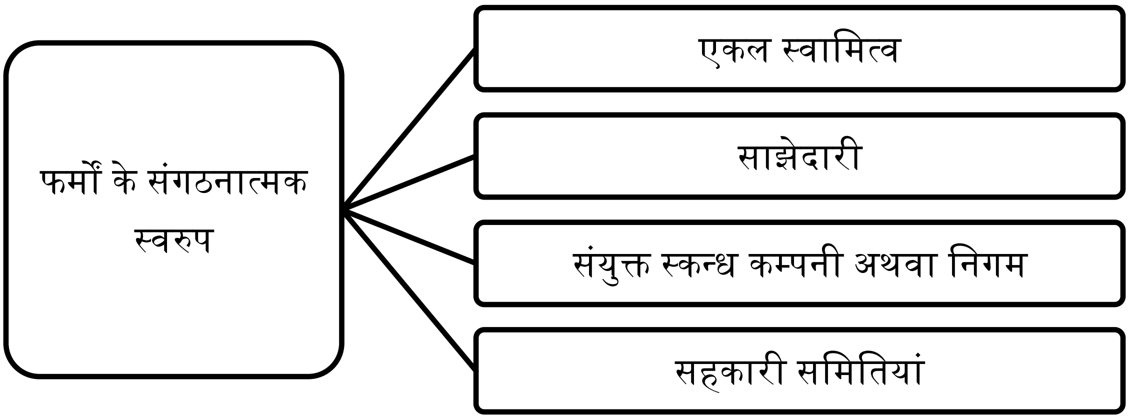

इन चारों स्वरुपों की प्रकृति एवं विशेषता इस प्रकार है-

1. **एकल स्वामित्व -** इस प्रकार की फर्मों का गठन एक व्यक्ति के प्रयास से किया जाता है तथा जो व्यक्ति इन्हें स्थापित करता है वही इनका स्वामी तथा वही प्रबन्धक होता है। कुछ बड़ी फर्मों में एकल व्यक्ति स्वयं तो कार्य करता ही है परन्तु उसकी सहायता उसके परिवार के कुछ सदस्य एवं आवश्यकतानुसार कुछ वेतनभोगी कर्मचारी भी करते हैं। ऐसी छोटी-बड़ी एकल स्वामित्व वाली फर्मों का सफल संचालन उस व्यक्ति की योग्यता एवं सूझबूझ पर निर्भर करता है जो इनका स्वामी एवं संगठनकर्ता होता है। फर्म के संगठन का यह एक अत्यन्त सरल स्वरूप होता है जो वर्तमान समय में भी सम्पूर्ण विश्व में व्यापक रुप से पाया जाता है। इस प्रकार के फर्मों के गठन में किसी विशेष प्रकार की औपचारिकता की आवश्यकता नहीं होती है। अधिकांश खुदरा व्यापारी, लघु एवं कुटीर उद्योग, विविध सेवाएं प्रदान करने वाले व्यावसायी जैसे - दर्जी, बढ़ई, लुहार, मोची, नाई, एक पेशेवर विशेषज्ञ इत्यादि फर्में एकल स्वामित्व वाली इकाईयां ही होती हैं।
2. **साझेदारी -** फर्म का यह संगठनात्मक स्वरूप वस्तुत: एकल-स्वामित्व वाली फर्म का ही एक विस्तृत रूप होता है। इसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक व्यक्ति लाभों में साझेदारी के लिए सहमत होकर स्वैच्छिक समझौते के आधार पर फर्म के व्यवसाय को सम्पादित करते हैं। इस प्रकार के संगठन में कोई आवश्यक नहीं है कि सभी साझेदार फर्म की पूंजी अथवा प्रबन्ध-तन्त्र में योगदान करें। कुछ साझेदार फर्म की पूंजी में योगदान करते हैं परन्तु प्रबन्ध में सक्रिय भाग नहीं लेते हैं। इसके विपरीत अन्य साझेदार फर्म की पूंजी में योगदान करते हैं साथ ही साथ फर्म के प्रबन्धन में भी सक्रिय भागीदारी का निर्वाह करते हैं। इस प्रकार के संगठन के सन्दर्भ में एक तथ्य उल्लेखनीय होता है कि फर्म के साझेदारों का लाभो में भागीदारी स्वैच्छिक समझौते की शर्तों में वर्णित पारस्परिक अनुपात के अनुसार होता है और यह अनुपात बराबर अथवा असमान भी हो सकता है।

   इस प्रकार के फर्मों के लिए स्वैच्छिक समझौते का पंजीकरण करवाना अनिवार्य नहीं होता है फिर भी पंजीकरण करा लेना कानूनी दृष्टि से वांछनीय माना जाता है जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर ऐसे समझौते में, यदि कोई विवाद उत्पन्न हो, वर्णित शर्तों के अनुसार न्यायिक सहायता प्राप्त की जा सके और समझौते की शर्तों का पालन करवाया जा सके। वर्तमान समय में भारत में पंजीकृत तथा अपंजीकृत दोनों प्रकार की साझेदारी फर्में कार्यरत हैं।

   इस प्रकार के फर्म में साझेदारों की संख्या न्यूनतम दो और अधिकतम बीस हो सकती है तथा साझेदारी के भी अनेक रुप हो सकते हैं जैसे - 'सक्रिय-साझेदार', 'निष्क्रिय' अथवा 'सुषुप्त साझेदार', 'गुप्त-साझेदार', 'नाबालिग-साझेदार' आदि। ***सक्रिय-साझेदार*** वह होता है जो फर्म में पूंजी का निवेश तो करता ही है साथ ही साथ फर्म के प्रबन्धन में भी सक्रिय भाग लेता है। ***सुषुप्त-साझेदार*** फर्म में पूंजी निवेश तो करता है किन्तु उसके प्रबन्धन में सक्रिय भाग नहीं लेता है। ***गुप्त-साझेदार*** केवल नाममात्र का साझेदार होता है। वस्तुत: वह अपना नाम एवं ख्याति का उपयोग

करने की अनुमति फर्म को प्रदान करता है किन्तु वह फर्म की पूंजी एवं प्रबन्धन में कोई योगदान नहीं करता है। वह फर्म में साझेदार भी है, इस तथ्य को सार्वजनिक रूप से कोई जान भी नहीं पाता है। ऐसे साझेदार प्राय: अपवादस्वरूप ही कुछ फर्मों में होते हैं। ***अवयस्क*** अथवा ***नाबालिग साझेदारी*** फर्म में साझेदार तो होता है और फर्म के लाभों में भी भागदीर होता है परन्तु फर्म की देनदारियों के प्रति उसका कोई व्यक्तिगत उत्तरदायित्व नहीं होता है।

3. **संयुक्त स्कन्ध कम्पनी अथवा निगम -** संयुक्त स्कन्ध कम्पनी अथवा निगम एक प्रकार कृत्रिम व्यक्ति होता है जिसका गठन वैधानिक नियमों के द्वारा किया जाता है। इसका गठन व्यक्तियों के एक समूह द्वारा किसी समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है। वस्तुत: इस प्रकार की फर्म एक ऐसे अदृश्य, अमूर्त एवं कृत्रिम व्यक्ति के रूप में कार्य करती है जिसका अस्तित्व केवल कानून की दृष्टि में ही होता है। 'कम्पनी' को भारतीय कम्पनी अधिनियम में परिभाषित करते हुए यह उल्लेख किया गया है- "कम्पनी का आशय ऐसी इकाई से है जिसका गठन एवं पंजीकरण कम्पनी अधिनियम के अधीन किया जाता है।" इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'कम्पनी' अथवा 'निगम' एक ऐसा न्यायायिक व्यक्ति होती है जिसका अस्तित्व उसके सदस्यों के अस्तित्व से पृथक् एवं स्वतन्त्र होती है। कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकरण से किसी कम्पनी को एक ऐसा निगमित व्यक्तित्व प्राप्त हो जाता है जो उन सदस्यों के व्यक्तित्व से सर्वथा पृथक् होता है जिनके द्वारा इनका गठन किया जाता है। इस प्रकार कोई कम्पनी अपनी सामान्य मुहर के द्वारा उन समस्त कार्यों को सम्पादित कर सकती है जो एक स्वाभाविक व्यक्ति द्वारा किए जाते है।

एक कम्पनी निवेश के लिए आवश्यक पूँजी को प्राप्त करने के लिए बाजार में अंशों को जारी करती है। ये अंश आम जनता द्वारा क्रय किये जाते हैं। ये आम जनता ही कम्पनी के अंशधारक होते हैं तथा कम्पनी के स्वामी एवं सदस्य होते हैं। एक कम्पनी में सदस्यों की न्यूनतम संख्या दो अथवा सात हो सकती है। अधिकतम सदस्यों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है। इसलिए इसकी सदस्यता का आकार अत्यन्त व्यापक हो सकता है। वस्तुत: एक कम्पनी में सदस्यों की अधिकतम संख्या कितनी हो सकती है यह इस बात पर निर्भर करता है कि कम्पनी का स्वरुप किस प्रकार का है।

एक कम्पनी की यह भी प्रकृति होती है कि इसका संचालन एक केन्द्रीयकृत प्रबन्धकीय व्यवस्था के द्वारा किया जाता है क्योंकि कम्पनी में सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होती है और वे सभी बिखरे हुए होते हैं। अत: कम्पनी के सभी सदस्य इसके प्रबन्धन में प्रत्यक्ष एवं सक्रिय भाग नहीं ले सकते हैं। इस कारण कम्पनी के प्रबन्धन का दायित्व कुछ चुने हुए कुशल पेशेवर प्रबन्धकों के हाथों में सौंप दिया जाता है जो समस्त अंशधारियों की ओर से कम्पनी का प्रबन्धन नियमानुसार कम्पनी के हित में करते हैं। साल में एक बार कम्पनी के अंशधारियों की सामान्य बैठक आवश्यक होती है जिसमें वे कम्पनी के निदेशक-मण्डल के सदस्यों का चुनाव करते हैं, जिन्हें निदेशक के नाम से सम्बोधित किया जाता है। निदेशकों में से ही एक सदस्य को अध्यक्ष एवं प्रबन्ध-निदेशक के रूप में चुना जाता है। निदेशक मण्डल की बैठक समय-समय पर होती रहती है जिसमें सभी प्रकार के नीतिगत सम्बन्धी मुद्दों पर विचार विमर्श होता है और तत्सम्बन्धी निर्णय लिए जाते हैं। रोजमर्रा कार्यों से सम्बन्धित मामलों पर निर्णय लेने का अधिकार प्रबन्धकों के हाथ में ही होता है। वस्तुत: फर्म के इस प्रकार के संगठनात्मक स्वरुप की उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही इस प्रकार की फर्मों को एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी वाली फर्मों से श्रेष्ठ माना जाता है।

कम्पनी का वर्गीकरण

अब तक हम लोगों ने सामान्य रुप से एक निगमित कम्पनी की प्रकृति, विशेषताओं तथा दोषों के बारे में विवेचना किया। वस्तुत: निगमित कम्पनी के भी विभिन्न स्वरुप होते हैं। सभी प्रकार के कम्पनियों को मुख्य रुप से दो संवर्गों में वर्गीकृत किया जाता है - वैधानिक कम्पनी तथा पंजीकृत कम्पनी। वैधानिक कम्पनी का अभिप्राय उन कम्पनियों से होता जिनका गठन देश की संसद अथवा राज्य की विधान परिषदों द्वारा विशेष अधिनियमों के द्वारा किया जाता है। इन

कम्पनियों का संचालन उन्हीं अधिनियमों के प्रावधानों के अनुसार किया जाता है जिनके द्वारा इनका गठन किया जाता है। इन कम्पनियों के सदस्यों के दायित्व तो सीमित होते हैं परन्तु इनको अपने नाम के आगे 'लिमिटेड' शब्द लिखने की अनिवार्यता नहीं होती है। इस प्रकार के कम्पनियों के उदाहरण हैं - भारतीय रिजर्व बैंक, औद्योगिक वित निगम, इण्डियन ऑयल कार्पोरेशन इत्यादि। दूसरी तरफ, पंजीकृत कम्पनी का अभिप्राय उन कम्पनियों से होता है जिनका गठन 'भारतीय कम्पनी अधिनियम' के द्वारा किया जाता है। पंजीकृत कम्पनियों के अन्तर्गत भी दो प्रकार की कम्पनियां होती हैं - ***पहली*** प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी तथा ***दूसरी*** पब्लिक लिमिटेड कम्पनी।

1. **प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी -** प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी का अभिप्राय उन कम्पनियों से होता है जिनमें अंशधारकों अर्थात् सदस्यों की संख्या सीमित होती है। वस्तुत: इस प्रकार के कम्पनियों में अंशधारकों की न्यूनतम संख्या 2 तथा अधिकतम संख्या (जिसमें वर्तमान एवं पुराने कर्मचारी शामिल नहीं हैं) 50 होती है। इस प्रकार के कम्पनियों के सदस्यों को अपने अंशों को सीमित रुप में हस्तानान्तरित करने का अधिकार प्राप्त होता है तथा इन कम्पनियों को आम जनता के लिए अंशों अथवा ऋण-पत्रों को जारी करने की भी अनुमति नहीं होती है।
2. **पब्लिक लिमिटेड कम्पनी -** पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के अन्तर्गत आने वाली कम्पनियों में सदस्यों की न्यूनतम संख्या 7 होती है। ये वे कम्पनियां होती हैं जिन पर वैसा कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है जैसा कि प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियों पर होता है। अर्थात् इन कम्पनियों में सदस्यों की अधिकतम संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है तथा इन कम्पनियों को आम जनता के लिए अंशों अथवा ऋण-पत्रों को जारी करने पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है।

यहाँ पर एक तथ्य उल्लेखनीय है कि लिमिटेड कम्पनियों के अन्तर्गत एक तीसरे संवर्ग की भी कम्पनी पायी जाती है और वह है ***डीम्ड पब्लिक लिमिटेड कम्पनी***। यदि कोई प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी किसी पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के कुल चुकता अंशपूंजी का 25 प्रतिशत या उससे अधिक हिस्से को धारित करती है अथवा उस प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के कुल चुकता अंशपूंजी के 25 प्रतिशत या उससे अधिक हिस्से को कोई पब्लिक लिमिटेड कम्पनी धारित करती हो अथवा जिसकी औसत वार्षिक बिक्री 5 करोड़ रूपयों से अधिक है तो ऐसी दशा में सम्बन्धित प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी डीम्ड पब्लिक लिमिटेड कम्पनी कहलाती है।

पब्लिक लिमिटेड कम्पनी एवं प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के बीच तुलना

एक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी में सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण कम्पनी के स्वामित्व में फैलाव होता है। इसलिए इस प्रकार की कम्पनियों में सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण की संभावना नहीं होती है। इसी कारण व्यावसायिक फर्मों का यह स्वरुप सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय नहीं होता है। इन कम्पनियों की वित्तीय क्षमता अपेक्षाकृत सुदृढ़ होती है इसलिए इनमें विस्तार की संभावना अपेक्षाकृत अधिक होती है। इन कम्पनियों में अंशों के हस्तानान्तरणीयता का गुण पाया जाता है जो इसका अत्यन्त महत्वपूर्ण गुण है। परन्तु ये कम्पनियां चूँकि लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित होती हैं तथा इनमें स्थापना के समय एवं व्यवसाय संचालन के बाद भी अनेक कानूनी औपचारिकताओं को पूरा करना होता है इसलिए इन कम्पनियों में प्रबन्धकों के लिए तत्काल निर्णय लेने में प्राय: अधिक समय लगता है।

दूसरी तरफ एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी में सदस्यों की संख्या सीमित होने के कारण सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण की संभावना बनी रहती है। इसीलिए व्यावसायिक फर्मों का यह स्वरुप सामाजिक दृष्टि से अपेक्षाकृत कम वांछनीय होता है। इन कम्पनियों की वित्तीय क्षमता अपेक्षाकृत कम सुदृढ़ होती है इसलिए इनमें विस्तार की संभावना अपेक्षाकृत कम होती है। इन कम्पनियों में अंशों के हस्तानान्तरणीयता पर कुछ सीमा तक प्रतिबन्ध होता है। परन्तु इन कम्पनियों में चूँकि निर्णय लेने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत कम लोकतान्त्रिक होता है तथा इनके स्थापना के समय एवं व्यवसाय

संचालन में अपेक्षाकृत कम कानूनी औपचारिकताओं को पूरा करना होता है इसलिए इन कम्पनियों की स्थापना करने मे अपेक्षाकृत कम समय लगता है और इनके प्रबन्धक तत्काल एवं त्वरित निर्णय लेने अपेक्षाकृत अधिक सक्षम होते हैं।

वस्तुत: यह कहा जा सकता है कि प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी, साझेदारी तथा पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के बीच की कड़ी होती है जो पारिवारिक एवं छोटे या लघु स्तर पर व्यवसाय के लिए उपयुक्त मानी जा सकती है।

4. **सहकारी समितियां** - स्वामित्व एवं प्रबन्ध के आधार पर व्यवसायिक संगठनों के उपर्युक्त स्वरूपों के अतिरिक्त एक अन्य स्वरुप भी पाया जाता है जिसे 'सहकारी समिति' के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार के संगठनों की स्थापना स्वैच्छिक सहकारिता की भावना के आधार पर व्यक्तियों के छोटे-छोटे समूह के द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के संगठनों की स्थापना का प्राथमिक उद्देश्य अपने समान हितों की पूर्ति करना होता है न कि लाभ प्राप्त करना। इस प्रकार के संगठनों के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं - उपभोक्ता क्रेडिट सहकारी समिति, सहकारी कृषि समिति, आवासी सहकारी समिति, उत्पादक सहकारी समिति इत्यादि। ऐसी समितियां अधिकांशत: ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है। किन्तु शहरी क्षेत्रो में भी अनेक उद्योग सहकारी ढंग से संचालित किए जाते हैं जैसे- डेयरी उद्योग, दुग्ध संकलन समितियां, गन्ना सहकारी समितियां, सहकारी चीनी मिलें इत्यादि। समाज के अपेक्षाकृत कम सम्पन्न एवं गरीब परिवारों को सहकारी संगठनों के द्वारा रोजगार के उत्तम अवसर प्रदान किए गए हैं।

इस प्रकार के समितियों का गठन व्यक्तियों के स्वैच्छिक सहयोग से किया जाता है और ये व्यक्ति ही इसके सदस्य होते हैं। इसके संचालन के लिए आवश्यक पूंजी प्रत्येक सदस्य के अपने हिस्से के रुप में किये गये योगदान से प्राप्त होता है। इन समितियों को राज्य सरकार की ओर से भी सहकारिता विभाग के माध्यम से धन उपलब्ध कराया जाता है। यह योगदान अंशत: सहायता एवं अंशत: ऋण के रुप में होता है। इन समितियों का प्रबन्धन इसके सदस्य स्वयं मिलकर करते हैं। बड़ी सहकारी समितियों में वेतनभोगी कर्मचारियों की नियुक्ति भी की जाती है। इन समितियों में जो कुछ भी लाभ प्राप्त होता है वह इसके सदस्यों को बोनस के रुप में वितरित कर दिया जाता है।

औद्योगिक अर्थशास्त्र की दृष्टिकोण से इन समितियों में जो महत्वपूर्ण स्वरुप होता है वह है- **उत्पादक सहकारी समिति**। इस प्रकार के समितियों का गठन छोटे-छोटे उत्पादकों द्वारा किया जाता है जिसका प्रमुख उद्देश्य बड़े पूँजीपतियों एवं उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा करना होता है। इस प्रकार की समितियां विपणन, वित्तीयन, कच्चे माल एवं अन्य साधनों की आपूर्ति इत्यादि के क्षेत्र में स्थापित की जाती हैं। यद्यपि कि ये समितियां भी 'संयुक्त स्कन्ध कम्पनियों' की तरह सदस्यों के अंशदान से संचालित होती हैं और इनका प्रबन्धन भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था पर आधारित होता है फिर दोनों की प्रकृति में काफी अन्तर होता है। एक प्रमुख अन्तर यह है कि संयुक्त स्कन्ध कम्पनियां लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से संचालित की जाती हैं जबकि सहकारी समितियां इसके सदस्यों के हितों के लिए संचालित की जाती हैं। एक अन्य अन्तर यह भी है कि 'संयुक्त स्कन्ध कम्पनियों' की तरह इन समितियों में सदस्यों के बीच अंशों को हस्तानान्तरित नहीं किया जा सकता है।

2.5 निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र

विभिन्न देशों मे औद्योगिक जगत के अन्तर्गत व्यावसायिक इकाईयों के कुछ अन्य विविध स्वरुप भी देखने को मिलते हैं। इस विविधता का एक आधार इन इकाईयों पर 'नियन्त्रण' की प्रकृति होती है। यदि फर्मों के संगठनात्मक स्वरुप को 'नियन्त्रण' के आधार पर देखा जाय तो फर्मों का वर्गीकरण मुख्य रुप से दो वर्गों में किया जा सकता हैं- निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र। 'निजी क्षेत्र' का अभिप्राय उन व्यावसायिक इकाईयों से होता है जिनका नियन्त्रण पूरी तरह से व्यक्तिगत हाथों में होता है। दूसरी तरफ 'सार्वजनिक क्षेत्र' के अन्तर्गत वे व्यावसायिक इकाईयां आती हैं जिनका नियन्त्रण पूरी तरह से सरकार (केन्द्रीय अथवा राज्य) के हाथ में होता है। इन दो रुपों के अलावा, नियन्त्रण के आधार पर, कुछ देशों में व्यावसायिक

इकाईयों का एक तीसरा रुप भी पाया जाता है और वह है- संयुक्त क्षेत्र। 'संयुक्त क्षेत्र' के अन्तर्गत वे व्यावसायिक इकाईयां आती हैं जिनका नियन्त्रण एवं संचालन सरकार तथा निजी निवेशक एक साथ मिलकर संयुक्त रुप से करते हैं। इस प्रकार के संगठन की स्थापना मिश्रित अर्थव्यवस्था (जैसा कि भारतीय अर्थव्यवस्था है) को मजबूती प्रदान करने के उद्देश्य से किया जाता है।

निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र के बीच एक मौलिक अन्तर यह होता है कि निजी क्षेत्र में स्थापित व्यावसायिक इकाईयों का उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना होता है जबकि सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित इकाईयों का उद्देश्य समाज का कल्याण करना होता है। इसीलिए सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयां, आश्यकता पड़ने पर, अपने लाभों को कम करके भी अथवा घाटे में रहकर भी संचालित होती रहती हैं। वस्तुत: एक विकासशील देश के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के जो मूलभूत उद्देश्य होते हैं उनमें प्रमुख हैं - औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करना, आधारभूत उद्योगों का विकास करना, आधारभूत सुविधाओं का विकास करना, पिछड़े क्षेत्रों का विकास करना इत्यादि।

निजी क्षेत्र के अन्तर्गत सभी प्रकार के 'एकल स्वामित्व' एवं 'साझेदारियों' वाली फर्में तो आते ही हैं जबकि 'कम्पनी अथवा निगम', निजी क्षेत्र के अन्तर्गत भी हो सकते हैं और सार्वजनिक एवं संयुक्त क्षेत्र के अन्तर्गत भी हो सकते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत संचालित होने वाले व्यावसायिक इकाईयों के भी विभिन्न स्वरुप हो सकते हैं। इनमें से प्रमुख स्वरुप हैं – 'विभागीय सार्वजनिक प्रतिष्ठान', 'सार्वजनिक निगम' तथा 'सरकारी कम्पनी'।

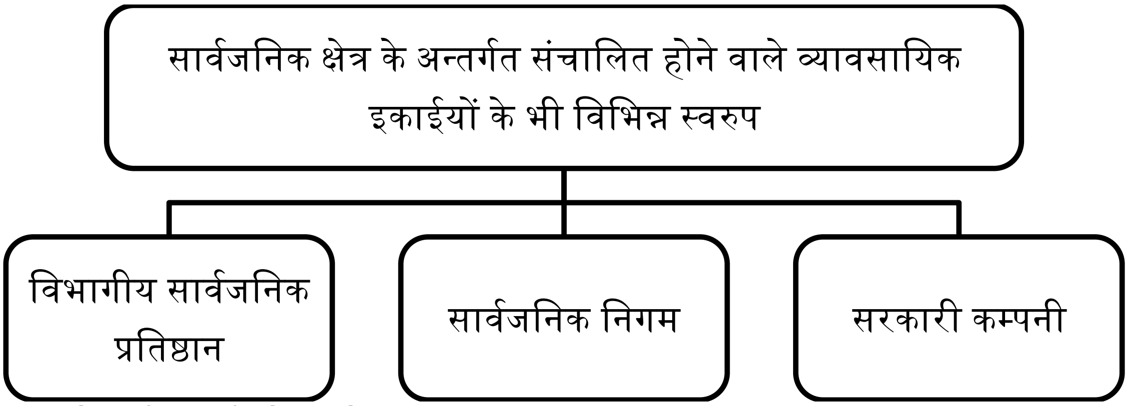

1. **विभागीय सार्वजनिक प्रतिष्ठान -** इस प्रकार के सार्वजनिक प्रतिष्ठान का स्वरुप उसी प्रकार का होता है जैसा कि एक 'सरकारी विभाग' का होता है। ऐसे उपक्रम सरकार के प्रत्यक्ष नियन्त्रण एवं प्रबन्ध के अन्तर्गत संचालित किए जाते है। वस्तुत: इन प्रतिष्ठानों के प्रबन्ध एवं नियन्त्रण का कार्यभार सम्बन्धित मन्त्रायलय के किसी उच्च अधिकारी को सौंप दिया जाता है। कुछ प्रतिष्ठानों के लिए 'अन्तर-मन्त्रालय बोर्डों' का गठन भी किया जाता है। भारत में इस तरह के जो प्रतिष्ठान कार्यरत हैं उनमें प्रमुख हैं – रेल परिवहन, पोस्ट एण्ड टेलीग्राफ, सूचना एवं प्रसारण, प्रतिरक्षा प्रतिष्ठान, इत्यादि।
2. **सार्वजनिक निगम -** इस प्रकार के प्रतिष्ठानों के अन्तर्गत उन कम्पनियों को शामिल किया जाता है जिनका गठन देश की संसद अथवा राज्य की विधान परिषदों द्वारा विशेष अधिनियमों के द्वारा किया जाता है। इन कम्पनियों का संचालन उन्हीं अधिनियमों के प्रावधानों के अनुसार किया जाता है जिनके द्वारा इनका गठन किया जाता है। इन कम्पनियों के सदस्यों के दायित्व तो सीमित होते हैं परन्तु इन्हें अपने नाम के अन्त में 'लिमिटेड' शब्द लगाने की अनिवार्यता से छूट प्राप्त होती है। इस प्रकार के कम्पनियों के उदाहरण हैं - भारतीय रिजर्व बैंक, औद्योगिक वित निगम, ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कारर्पोरेशन, इण्डियन ऑयल कार्पोरेशन, जीवन बीमा निगम इत्यादि।
3. **सरकारी कम्पनी -** सरकारी कम्पनी वह कम्पनी होती है जिसका पंजीकरण तो कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत ही किया जाता है परन्तु इसकी अंशपूंजी में भारत सरकार अथवा कोई राज्य सरकार 51 प्रतिशत या इससे अधिक हिस्से का धारक होती है। सार्वजनिक उपक्रमों का यह सबसे प्रचलित

स्वरुप होता है। ऐसी कम्पनियों का संचालन कम्पनी अधिनियम के अनुसार उसी प्रकार होता है जैसे कि एक 'संयुक्त स्कन्ध कम्पनी' का होता है। ऐसी कम्पनियां पब्लिक लिमिटेड अथवा प्राइवेट लिमिटेड दोनों प्रकार की हो सकती है। भारत में वर्तमान में, संख्या की दृष्टि से, सरकारी कम्पनियों में प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियों की ही प्रधानता है क्योंकि इनका गठन करना अधिक सुविधाजनक एवं सरल होता है। भारत में इस प्रकार की जो कम्पनियां कार्यरत हैं उनमें प्रमुख हैं - हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड, हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट लिमिटेड, हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड, स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड इत्यादि।

2.6 ग्रामोद्योग, लघु उद्योग, मध्यम उद्योग तथा बड़े उद्योग

इस इकाई के अन्तर्गत अभी तक हम लोगों ने एक औद्योगिक जगत के अन्तर्गत 'स्वामित्व एवं प्रबन्ध' तथा 'नियन्त्रण' के आधार पर व्यावसायिक इकाईयों के पाये जाने वाले विभिन्न स्वरुपों की विवेचना किया। एक औद्योगिक जगत के अन्तर्गत व्यावसायिक इकाईयों स्वरुपों में भिन्नता एक और आधार पर भी हो सकती है और वह है इकाईयों का 'आकार'। इस आधार पर व्यावसायिक इकाईयों को कुल चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है – ग्रामोद्योग, लघु उद्योग, मध्यम उद्योग तथा बड़े उद्योग। इन चारों प्रकार के व्यावसायिक इकाईयों के बीच जो प्रमुख अन्तर होता है वह है इनमें विनियोजित पूँजी एवं कार्यरत श्रमिकों के आधार पर होता है। आगे हम लोग इन विभिन्न स्वरुपों का विस्तृत रुप से विचार करेंगे।

1. **ग्रामोद्योग -** ग्रामोद्योग इकाईयों का अभिप्राय उन व्यावयायिक इकाईयों से होता है जिनमें उत्पादन की प्रक्रिया में पूँजी एवं मशीनों का प्रयोग नहीं किया जाता है। यदि पूँजी का प्रयोग किया भी जाता है तो वह नही के बराबर होता है। ये इकाईयां वस्तुत: परिवार के स्तर पर ही परिवार के सदस्यों के सहयोग से पूर्णकालिक अथवा अंशकालिक व्यवसाय के रुप में से संचालित की जाती हैं। इन इकाईयों में वेतनभोगी श्रमिकों का अस्तित्व नहीं होता है क्योंकि ये इकाईयां परिवार के सदस्यों द्वारा ही प्रमुख या सहायक उद्योग के रुप में चलाये जाते हैं। इन इकाईयों को कुटीर उद्योग के नाम से भी जाना जाता है।

   स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले भारत में इसी प्रकार के इकाईयों का बाहुल्य था। परन्तु ब्रिटिश शासन के दौरान कुछ ऐसी आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियां उत्पन्न हुई जिनके कारण इन उद्योगों का पतन होने लगा। फिर भी वर्तमान समय में ग्रामीण एवं शहरी, दोनों क्षेत्रों में अनेक व्यावसायिक इकाईयां इसी आधार पर संचालित की जाती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में ये इकाईयां कृषि के सहायक उद्योग के रुप में संचालित की जाती हैं। जैसे- दुग्धालय, मुर्गीपालन, कताई, रस्सी, टोकरी, मिट्टी के बर्तन, कपड़ा बुनना इत्यादि कार्यों में इसी प्रकार के उद्योग चलाये जाते हैं। शहरी क्षेत्रों में इन इकाईयों के द्वारा जो व्यवसाय संचालित किये जाते हैं उनमें प्रमुख हैं – मोमबत्ती, माचिस, साबुन, बीड़ी, चमड़ा, लकड़ी के सामान, हथकरघा इत्यादि।

2. **लघु उद्योग, मध्यम उद्योग तथा बड़े उद्योग -** परम्परागत रुप में लघु उद्योग, मध्यम उद्योग तथा बड़े उद्योग के बीच अन्तर को भी व्यावसायिक इकाईयों में विनियोजित पूँजी के आधार पर किया जाता था। इस आधार पर यदि सामान्य रुप में परिभाषित करना हो तो जिन व्यावसायिक इकाईयों में कम पूँजी का प्रयोग होता हो उन्हें 'लघु उद्योग' के अन्तर्गत शामिल किया जाता है जबकि जिन व्यावसायिक इकाईयों में ज्यादा पूँजी का प्रयोग होता हो उन्हें 'बड़े उद्योग' के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। जिन व्यावसायिक इकाईयों में लघु इकाईयों की अपेक्षा ज्यादा परन्तु बड़े इकाईयों की अपेक्षा कम पूँजी का प्रयोग होता है उन्हें 'मध्यम इकाईयों' के श्रेणी अन्तर्गत शामिल किया जाता है। विनियोजित पूँजी के अलावा इन इकाईयों के बीच के अन्तर को दो अन्य आधारों पर भी स्पष्ट किया जाता है - विनियोजित श्रमिकों की संख्या तथा मशीनों का प्रयोग। परन्तु 1967 से, बाद के दो मानदण्डों अर्थात् विनियोजित श्रमिकों की संख्या एवं मशीनों का प्रयोग को हटा दिया गया और अब केवल विनियोजित पूँजी के आधार पर ही इन इकाईयों को परिभाषित किया जाता

है। वस्तुत: भारत में सरकार द्वारा इन इकाईयों के निर्धारण के लिए विनियोजित पूँजी की एक सीमा निर्धारित की गयी है और समय-समय पर इनमें संशोधन होता रहा है।

वर्तमान समय में सरकार द्वारा जो परिभाषा निर्धारित की गयी है उसके अन्तर्गत 'लघु उद्योग' के अन्तर्गत निवेश और वार्षिक कारोबार के आधार पर तीन प्रकार का वर्गीकरण किया गया है। ये तीनों प्रकार हैं - सूक्ष्म उद्यम, लघु उद्यम और मध्यम उद्यम।

एम.एस.एम.ई. विकास अधिनियम 2006 में अस्तित्व में आने के 14 वर्षों के बाद, 13 मई, 2020 को आत्मनिर्भर भारत पैकेज में एम,एस,एम,ई, की परिभाषा में संशोधन की घोषणा की गई। इस घोषणा के अनुसार, सूक्ष्म विनिर्माण और सेवा इकाइयों की परिभाषा को बढ़ाकर 1 करोड़ रुपये का निवेश और 5 करोड़ रुपये का कारोबार कर दिया गया। लघु इकाई की सीमा को बढ़ाकर 10 करोड़ रुपये का निवेश और 50 करोड़ रुपये का कारोबार कर दिया गया। इसी प्रकार, मध्यम इकाई की सीमा को बढ़ाकर 20 करोड़ रुपये का निवेश और 100 करोड़ रुपये का कारोबार कर दिया गया। भारत सरकार ने 01 जून 2020 को एम.एस.एम.ई. की परिभाषा में और संशोधन का निर्णय लिया। मध्यम उद्यमों के लिए, अब यह 50 करोड़ रुपये का निवेश और 250 करोड़ रुपये का कारोबार होगा।

एम.एस.एम.ई. की परिभाषा का मौजूदा मानदंड एम.एस.एम.ई.डी. अधिनियम, 2006 पर आधारित है। यह विनिर्माण और सेवा इकाइयों के लिए अलग था। वित्तीय सीमा के संदर्भ में भी यह बहुत कम था। तब से, अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। 13 मई 2020 को घोषित पैकेज के बाद, कई लोगों ने कहा कि घोषित संशोधन अभी भी बाजार और मूल्य स्थितियों के अनुरूप नहीं है इसलिए इसे और संशोधित किया जाना चाहिए। इन मांगों को ध्यान में रखते हुए, प्रधानमंत्री ने मध्यम इकाइयों के लिए सीमा को और बढ़ाने का निर्णय लिया। समय के साथ यथार्थवादी होने, वर्गीकरण की एक वस्तुनिष्ठ प्रणाली स्थापित करने और व्यापार करने में आसानी प्रदान करने के लिए ऐसा किया गया है।

इसके अलावा, विनिर्माण और सेवा इकाइयों के वर्गीकरण का एक नया समग्र सूत्र भी अधिसूचित किया गया है। अब, विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों के बीच कोई अंतर नहीं रहेगा। साथ ही, कारोबार का एक नया मानदंड भी जोड़ा गया है।

मंत्रालय के अधिकारियों ने कहा कि नई परिभाषा एम.एस.एम.ई. के सुदृढ़ीकरण और विकास का मार्ग प्रशस्त करेगी। विशेष रूप से, कारोबार की गणना से निर्यात को बाहर रखने का प्रावधान एम.एस.एम.ई. को एम.एस.एम.ई. इकाई के लाभों को खोने के डर के बिना अधिक से अधिक निर्यात करने के लिए प्रोत्साहित करेगा। इससे देश से निर्यात में तेजी से वृद्धि होने की उम्मीद है जिससे विकास और आर्थिक गतिविधि में वृद्धि होगी और रोजगार सृजन होगा।

एक बड़ा उद्यम 249 से ज़्यादा कर्मचारियों वाला व्यवसाय होता है और इसे अक्सर उच्च वार्षिक राजस्व और महत्वपूर्ण पूंजी निवेश द्वारा भी परिभाषित किया जाता है। हालाँकि कर्मचारियों की संख्या एक सामान्य मानदंड है लेकिन विशिष्ट परिभाषाएँ देश, उद्योग या संगठन के अनुसार राजस्व, संपत्ति और कर्मचारियों की संख्या जैसे कारकों के संयोजन के आधार पर भिन्न हो सकती हैं।

अब तक हम लोगों ने तीनों प्रकार के इकाईयों अर्थात् लघु, मध्यम तथा बड़े इकाईयों की अवधारणा एवं परिभाषा को समझा। प्रश्न यह उठता है कि इन इकाईयों में श्रेष्ठ स्वरुप कौन सा होता है? इसके लिए हमें इनकी सापेक्षिक गुण तथा दोषों पर विचार करना होगा। वस्तुत: संगठनात्मक आधार पर इन उद्योगों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है क्योंकि बड़े इकाईयों की ही तरह लघु इकाईयां भी व्यावसायिक संगठन का कोई भी रुप, अर्थात् 'एकल स्वामित्व', 'साझेदारी', 'सहकारी' अथवा 'लिमिटेड कम्पनी' अपना सकती हैं। विशेषकर के हाल के वर्षों में लिमिटेड कम्पनी के रुप में लघु उद्योगों का संगठन अधिक प्रचलित हुआ है। फिर भी संचालन एवं क्षमता के

आधार पर इनकी अपनी-अपनी विशेषताएं तथा सीमाएं होती हैं जिनको आगे स्पष्ट किया जा रहा है-

लघु इकाईयों के गुण एवं दोष

लघु इकाईयों में अपेक्षाकृत कम पूँजी एवं सरल तकनीक की आवश्यकता होती है इसलिए इनकी स्थापना एवं संचालन करना अपेक्षाकृत सरल होता है। इनकी इस विशेषता के कारण ही इन इकाईयों को देश के दूर-दराज क्षेत्रों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित किया जा सकता है। साथ ही साथ इन इकाईयों के विकास के माध्यम से देश कोने-कोने में फैले हुए 'साहसियों' तथा 'श्रम शक्ति' को प्रयोग में लाया जा सकता है। अत: ये इकाईयां देश की बेरोजगारी, पिछड़ापन, आय की वितरण में विषमता इत्यादि को दूर करने में सहायक हो सकती हैं। इतना ही नहीं इस प्रकार की इकाईयां निर्यात की दृष्टि एवं बड़े उद्योगों की पूरकता की दृष्टि से भी काफी उपयोगी होती हैं।

परन्तु इन इकाईयों की वित्तीय क्षमता कमजोर होने के कारण अपने व्यवसाय संचालन में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है जैसे - कच्चे माल की आपूर्ति समय पर नहीं हो पाती है तथा विज्ञापन एवं विक्रय-क्रियाओं के अभाव में विपणन कार्यों में अवरोध उत्पन्न होता रहता है। इसके अलावा इन इकाईयों में अपेक्षाकृत अकुशल तकनीक एवं प्रशिक्षण सुविधाओं के अभाव के कारण इनके उत्पादों की गुणवत्ता पर प्रतिकूल असर पड़ता है जिससे इनकी कार्यकुशलता प्रभावित होती है।

बड़ी इकाईयों के गुण एवं दोष

बड़ी इकाईयों की स्वयं की वित्तीय क्षमता काफी मजबूत होती है साथ ही साथ बाजार में इनकी साख मजबूत होने के कारण इनको बाहरी श्रोतों से भी आसानी से वित्तीय संसाधन प्राप्त हो जाते हैं। इसके अलावा साख मजबूत होने के कारण इन इकाईयों को कच्चा माल तथा अन्य संसाधनों को प्राप्त करने में अपेक्षाकृत कम अवरोधों का सामना करना पड़ता है। इसलिए इन इकाईयों के संचालन में उतनी दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ता है। इसके अलावा इनकी प्रबन्ध-तन्त्र एवं तकनीकी काफी कुशल होती है तथा समय-समय पर प्रशिक्षण सुविधाएं भी उपलब्ध होती रहती हैं इसलिए इनकी निष्पादन एवं कार्यकुशलता भी अपेक्षाकृत उत्तम होती है।

परन्तु ये इकाईयां पूँजी-गहन तकनीक पर आधारित होने के कारण रोजगार उत्पन्न करने की दृष्टि से कम उपयोगी होती हैं। साथ ही साथ बड़े आकार का उत्पादन होने के कारण इन इकाईयों को व्यापक स्तर पर देश के प्रत्येक हिस्से में स्थापित नहीं किया जा सकता है। अत: इन इकाईयों के कारण औद्योगिक केन्द्रीयकरण तथा सम्पत्ति के संकेन्द्रण की संभावना बढ़ जाती है। इतना ही नहीं इन इकाईयों का आकार बड़ा होने के कारण एक सीमा के बाद इनका प्रबन्धन करना उतना आसान नहीं होता है और बड़ा संगठन होने के कारण इन इकाईयों को एक मजबूत श्रमिक संगठन का सामना करना पड़ता है जो इकाई के संचालन में अपने हितों का लेकर समय-समय पर अवरोध उत्पन्न करते रहते हैं। इन सबका इकाई के कार्यकुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न होता है।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि लघु एवं बड़ी इकाईयों में कोई सर्वश्रेष्ठ नहीं है। दोनों की अपनी विशेषताएं हैं तो दोष भी हैं। वस्तुत: ये दोनों प्रकार की इकाईयां एक दूसरे की पूरक होती हैं। इसीलिए भारत ही नहीं अपितु विश्व के लगभग सभी देशों, चाहे विकसित हो या अविकसित देश, में दोनों ही प्रकार के व्यावसायिक इकाईयां विद्यमान रहती हैं।

2.7 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. परम्परागत विचारधारा के अनुसार फर्म एक तकनीकी इकाई मानी जाती है।
2. आधुनिक विचारधारा के अनुसार फर्म के स्वामित्व और प्रबंधन में कोई अंतर नहीं होता है।
3. एकल स्वामित्व वाली फर्म का स्वामी ही उसका प्रबंधक भी होता है।
4. साझेदारी फर्म का पंजीकरण अनिवार्य होता है।
5. गुप्त साझेदार फर्म की पूंजी में योगदान करता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. परम्परागत विचारधारा के अनुसार फर्म का गठन ....प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है।
   (लाभ **या** हानि)
2. आधुनिक विचारधारा में फर्म को ....इकाई माना जाता है।
   (संगठनात्मक **या** एकल)
3. एकल स्वामित्व वाली फर्म का संचालन एक ....द्वारा किया जाता है।
   (जानवर **या** व्यक्ति)
4. साझेदारी में साझेदारों की न्यूनतम संख्या..............होती है।
   (एक **या** दो)
5. कंपनी एक ....व्यक्ति मानी जाती है।
   (प्राकृतिक **या** कृत्रिम)

2.8 सारांश

एक औद्योगिक जगत के अन्तर्गत फर्मों के संगठनात्मक स्वरुप विभिन्न रुप देखने को मिलते हैं जिनमें प्रमुख हैं -एकल स्वामित्व, साझेदारी, संयुक्त स्कन्ध कम्पनी तथा सहकारी समितियां। इन विभिन्न प्रकार के संगठनों, विशेषकर साझेदारी तथा कम्पनी के भी विभिन्न स्वरुप होते है। साझेदारी फर्मों के जो विभिन्न रुप हाते हैं उनमे प्रमुख हैं- सक्रिय-साझेदार, निष्क्रिय अथवा सुषुप्त साझेदार, गुप्त-साझेदार इत्यादि आदि। कम्पनियों को मुख्य रुप से दो संवर्गों में वर्गीकृत किया जाता है- वैधानिक कम्पनी तथा पंजीकृत कम्पनी। पंजीकृत कम्पनियों के अन्तर्गत भी तीने प्रकार की कम्पनियां होती हैं- प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी, पब्लिक लिमिटेड कम्पनी, तथा डीम्ड पब्लिक लिमिटेड कम्पनी।

स्वामित्व एवं प्रबन्ध के अलावा 'नियन्त्रण' के आधार पर भी व्यावसायिक इकाईयो के विभिन्न रुप देखने को मिलते हैं। इस आधार पर फर्मों को मुख्य रुप से दो वर्गो में वर्गीकृत किया जाता है -निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र। सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत संचालित होने वाले व्यावसायिक इकाईयों के भी विभिन्न स्वरुप हो सकते हैं। इनमें से प्रमुख स्वरुप हैं- विभागीय सार्वजनिक प्रतिष्ठान, सार्वजनिक निगम तथा सरकारी कम्पनी। निजी क्षेत्र के अन्तर्गत सभी प्रकार के 'एकल स्वामित्व' एवं 'साझेदारियों' वाली फर्में तो आते ही हैं जबकि 'कम्पनी अथवा निगम', निजी क्षेत्र के अन्तर्गत भी हो सकते हैं और सार्वजनिक एवं संयुक्त क्षेत्र के अन्तर्गत भी हो सकते हैं।

एक औद्योगिक जगत के अन्तर्गत व्यावसायिक इकाईयों स्वरुपों में भिन्नता एक और आधार पर भी होती है और वह है इकाईयों का 'आकार'। इस आधार पर व्यावसायिक इकाईयों को कुल चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है- ग्रामोद्योग, लघु उद्योग, मध्यम उद्योग तथा बड़े उद्योग। इन चारों प्रकार के व्यावसायिक इकाईयों के बीच जो प्रमुख अन्तर होता है वह है इनमें विनियोजित पूँजी एवं कार्यरत श्रमिकों के आधार पर होता है।

2.9 शब्दावली

- **स्कन्ध-** व्यवहार में इस शब्द के स्थान पर 'स्टॉक' शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका सम्बन्ध शेयर बाजार से होता है। जैसे शेयर बाजार के लिए 'स्टॉक मार्केट' शब्द प्रचलन में है।
- **स्वामी-** इसका अर्थ 'मालिक' होता है।
- **दायित्व-** इसका अभिप्राय 'देनदारी' अर्थात् जो धन चुकता करना होता है उसे दायित्व कहा जाता है।
- **अंश-** इसका अभिप्राय 'शेयर' से होता है।
- **शाश्वत-** यह शब्द 'निरन्तरता' शब्द के लिए प्रयोग किया गया है।
- **व्ययसाध्य-** इस शब्द का अभिप्राय होता है 'अधिक व्यय होने वाला'।
- **विच्छेद-** इस शब्द का अर्थ होता है 'अलगाव' अर्थात् 'भेद'।

- **प्रतिष्ठान-** यह शब्द व्यवहार में सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित 'इकाईयों' अथवा 'संस्थानों' के लिए किया जाता है।
- **विनियोजित पूँजी-** इस शब्द का तात्पर्य होता है 'निवेश की गयी पूँजी'।

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. लाभ 2. संगठनात्मक 3. व्यक्ति
4. दो (2) 5. कृत्रिम

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Barthwal, R.R. (2005): ***Industrial Economics – An Introductory Textbook***, New Age International Publishers, New Delhi, chapter 3.
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र,*** साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, अध्याय 2।
- Mishra and Puri (2010): ***Indian Economy***, Himalaya Publication, New Delhi, chapter 28.

2.12 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Barthwal, R.R. (2005): ***Industrial Economics – An Introductory Textbook***, New Age International Publishers, New Delhi.
- Stephen, Martin (1989): ***Industrial Economics*** - ***Economic Analysis and Public Policy***, MacMillan Publishing Co. New York.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, NewDelhi.
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वामित्व एवं प्रबन्ध के आधार पर फर्म के संगठनात्मक स्वरुप के विभिन्न रुपों की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. एक संयुक्त स्कन्ध कम्पनी की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं का भी उल्लेख कीजिए।
3. "यदि संचलन एवं प्रबन्धन के आधार पर देखा जाय तो 'एकल स्वामित्व' एवं 'साझेदारी' वाली इकाईयां ज्यादे उपयुक्त होती है। परन्तु यदि व्यवसाय के विस्तार की संभावना के आधार पर देखा जाय तो 'कम्पनी' जयादे उपयुक्त होती है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
4. निजी, सार्वजनिक तथा संयुक्त क्षेत्र के बीच के अन्तर को स्पष्ट करते हुए सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के इकाईयों की विवेचना कीजिए।
5. लघु, मध्यम, बड़ी एवं ग्रामोद्योग इकाईयों को परिभाषित कीजिए। इन इकाईयों में किस प्रकार के इकाई को आप श्रेष्ठ समझते हैं? अपने उत्तर की व्याख्या कीजिए।

इकाई-3 सार्वजनिक क्षेत्र: निष्पादन और समस्याएं

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास
3.4 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका एवं योगदान
3.5 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का निष्पादन
3.6 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र की समस्याएं
3.7 अभ्यास प्रश्न
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.12 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त ही कमजोर थी। जहाँ एक तरफ देश में संसाधनों का अभाव था वहीं दूसरी तरफ माँग का स्तर भी इतना पर्याप्त नहीं था कि देश के विकास प्रक्रिया को पूरी तरह से निजी क्षेत्र के भरोसे छोड़ दिया जाए। इसलिए देश की विकास प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रारुप को अपनाते हुए निजी एवं सार्वजनिक, दोनों क्षेत्रों की सहभागिता को सुनिश्चित किया गया। वस्तुत: देश में औद्योगिकरण की प्रक्रिया में सार्वजनिक क्षेत्र को काफी अधिक महत्व दिया गया। अत: इस बात को समझना आवश्यक हो जाता है कि भारतीय अर्थव्यस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का किस प्रकार विकास एवं विस्तार हुआ तथा देश के विकास में इसका क्या योगदान रहा है। इतना ही नहीं, बल्कि यह भी समझ लेना आवश्यक होगा कि सार्वजनिक क्षेत्र की उपलब्धियां देश की आवश्यकता के अनुरुप रहीं हैं कि नहीं। इस अध्याय के अन्तर्गत इन्हीं मुद्दों को स्पष्ट किया जा रहा है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ बता सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार एवं विकास किस प्रकार हुआ है।
- ✓ समझा सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यस्था के विकास में सार्वजनिक क्षेत्र का क्या योगदान रहा है।
- ✓ भारतीय अर्थव्यस्था में सार्वजनिक क्षेत्र के निष्पादन को बता सकेंगे।
- ✓ भारतीय अर्थव्यस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की समस्याओं को समझा सकेंगे।

3.3 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास

स्वतंत्रता प्राप्त होने के समय भारत में सार्वजनिक क्षेत्र की क्रियाएं कुछ ही क्षेत्रों तक ही सीमित थीं। इनमें से प्रमुख क्षेत्र थे- सिंचाई, संचार, रेल-परिवहन, बन्दरगाह, प्रसारण, कुछ विभागीय प्रतिष्ठान इत्यादि। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्, 1948 तथा 1956 के औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्तावों में, स्पष्ट रुप से निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के दायरे को निर्धारित करते हुए अनेक औद्योगिक क्षेत्रों को सार्वजनिक क्षेत्र के लिए ही आरक्षित कर दिया गया। वस्तुत: 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में कुल 17 औद्योगिक क्षेत्रों को इस आरक्षित सूची में रख दिया गया। मोटे तौर पर, भारी एवं आधारभूत उद्योग जैसे कि इस्पात, भारी इंजीनियरिंग तथा इसी प्रकार के अन्य बुनियादी उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में रखा गया। कुछ उद्योगों को सरकारी क्षेत्र के साथ-साथ निजी क्षेत्र में भी स्थापित करने की व्यवस्था दी गयी। इस श्रेणी में एल्यूमीनियम, लघु औजार, औजारी इस्पात, उर्वरक, कृत्रिम रबर, सड़क यातायात इत्यादि। उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया।

सरकार के उपरोक्त नीति अपनाने के फलस्वरुप देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी के साथ विस्तार एवं विकास होता गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ होने के समय देश में सार्वजनिक क्षेत्र में केवल 5 सार्वजनिक उपक्रम ही कार्यरत थे जिनमे कुल पूँजी निवेश केवल 29 करोड़ रूपये थी। उदारीकरण और निजीकरण के प्रयासों के कारण 1990 के बाद भारत में केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (सीपीएसई) या सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) की संख्या में कमी आई लेकिन 31 मार्च 2010 तक इन उद्यमों की संख्या बढ़कर 249 हो गई और इनका कुल पूंजी निवेश 5,79,920 करोड़ रुपये हो गया। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम भारत के सबसे बड़े और सबसे अधिक लाभदायक संगठनों में से हैं। 30 नवंबर 2025 तक, कुल 389 केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (सीपीएसई) और केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की सहायक कंपनियों में से केवल 70 ही सूचीबद्ध हैं। इनमें से 67 बीएसई में सूचीबद्ध हैं, जो बीएसई में सूचीबद्ध 5059 कंपनियों के कुल बाजार पूंजीकरण का 7.62 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त 17 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक (पीएसबी) अपनी सहायक कंपनियों और 6 राज्य स्तरीय सार्वजनिक उद्यमों (एसएलपीई) के साथ बीएसई में कुल बाजार पूंजीकरण का 0.42 प्रतिशत हिस्सा रखते हैं। इस प्रकार सभी सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का सम्मिलित हिस्सा बीएसई के कुल बाजार पूंजीकरण का 8.04 प्रतिशत या 38.1 लाख करोड़ रुपये है।

3.4 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका एवं योगदान

इस इकाई के अन्तर्गत अब तक दो बातें स्पष्ट हो चुकी हैं। ***पहली*** तो यह कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सरकारी नीति के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र को अत्यधिक महत्व दिया गया तथा ***दूसरी*** बात यह कि इसके फलस्वरुप सार्वजनिक क्षेत्र का उल्लेखनीय रुप से विस्तार एवं विकास हुआ। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सार्वजनिक क्षेत्र का देश के आर्थिक विकास में अपेक्षित योगदान रहा है ? इसको समझने के लिए हमें देश के विकास में सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान पर विचार करना होगा। भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका एवं योगदानों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

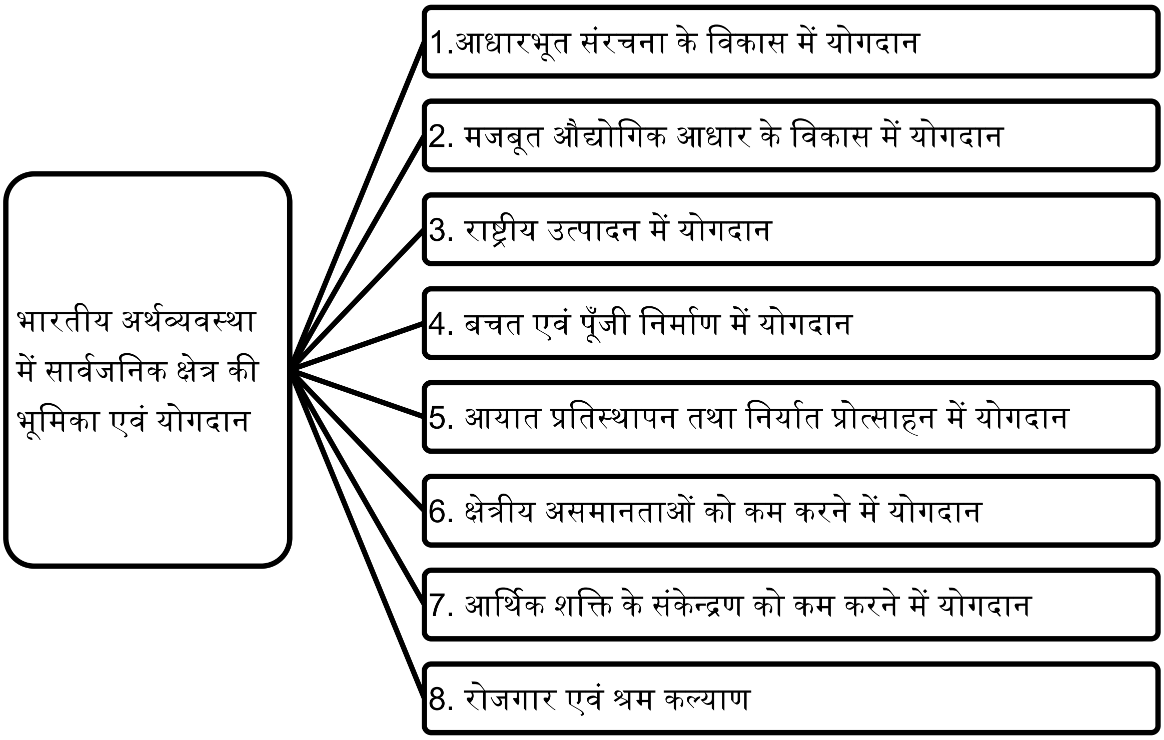

1. **आधारभूत संरचना के विकास में योगदान -** किसी भी अल्पविकसित देश के विकास की एक महत्वपूर्ण शर्त यह होती है कि उस देश में आधारभूत आर्थिक संरचना जैसे- सिंचाई के साधन, बिजली की उपलब्धता, यातायात एवं संचार के साधन, आधारभूत उद्योग इत्यादि का विकास तेजी के साथ होना चाहिए। सिंचाई के साधनों और बिजली की उपलब्धि के बिना कृषि के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसी प्रकार यातायात एवं संचार के साधनों तथा आधारभूत उद्योगों के विकास के बिना तेजी के साथ औद्योगिकरण सम्भव नहीं है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत में आधारभूत संरचना अत्यन्त ही अल्पविकसित अवस्था में थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इसके विकास में न तो निजी क्षेत्र ने रूचि दिखाई और न ही इस कार्य को कर सकने के लिए उसके पास पर्याप्त संसाधन उपलब्ध थे। अत: देश की विकास की प्राथमिकता की दृष्टि से सरकार के लिए यह आवश्यक था कि इन सुविधाओं के विकास की जिम्मेदारी खुद वहन करे। सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम से देश में सड़क, रेल, वायु तथा जल परिवहन की व्यवस्था में न केवल सुधार किया बल्कि इनका विकास भी किया। वस्तुत: सार्वजनिक क्षेत्र में किए गए प्रयत्नों से ही देश में औद्योगिक विकास के लिए मजबूत आधार तैयार हुआ जिसका लाभ देश के विकास को तो हुआ ही साथ ही साथ इससे निजी क्षेत्र के विकास को भी सहायता मिली।
2. **मजबूत औद्योगिक आधार के विकास में योगदान -** यदि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से तुलना किया जाए तो हम पाते हैं कि वर्तमान समय में देश का औद्योगिक आधार काफी मजबूत स्थिति में है। इतना ही नहीं पिछले छ: दशकों में प्रतिरक्षा और सामरिक महत्व के विविध उद्योगों का भी

उल्लेखनीय रुप से विकास हुआ है। वस्तुत: सरकार ने लोहा एवं इस्पात, भारी इंजीनियरिंग, कोयला, बिजली के भारी उपकरण, तेल एवं प्राकृतिक गैस, रसायन एवं औषधि, उर्वरक इत्यादि उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत स्थापित करके देश के औद्योगिक आधार को काफी मजबूती प्रदान किया है। ये उद्योग ऐसे उद्योग होते हैं जिनमें अल्पकाल में लाभ प्राप्त होने की सम्भावनाएं कम होने के कारण निजी क्षेत्र में स्थापित हाने की संभावना नहीं होती। लेकिन इनकी स्थापना के बिना निजी क्षेत्र में उपभोग पदार्थों का उत्पादन करने वाले उद्योग भी तेजी के साथ विकसित नहीं हो सकते। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उपभोग वस्तु उद्योगों का विकास भी काफी हद तक आधारभूत उद्योग उद्योगों पर निर्भर करता है। क्योकि इन उद्योगों के विकास करने में निजी क्षेत्र की कोई रूचि नहीं होती इसलिए राज्य को हस्तक्षेप करना पड़ता है और स्वयं इन उद्योगों का विकास करना पड़ता है।

3. **राष्ट्रीय उत्पादन में योगदान -** सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का राष्ट्रीय उत्पादन में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है क्योंकि योजना अवधि के दौरान राष्ट्रीय उत्पाद में इस क्षेत्र के अंशदान में भी लगातार वृद्धि होती गयी है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि चालू कीमतों पर 1950-51 में सकल घरेलू उत्पाद में सार्वजनिक क्षेत्र का अंशदान मात्र 15.1 प्रतिशत था जो बढ़कर 2009-10 में 28.1 प्रतिशत पर पहुंच गया। इस प्रकार वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र, राष्ट्रीय उत्पाद में लगभग चौथाई भाग से अधिक योगदान करता है।

4. **बचत एवं पूँजी निर्माण में योगदान -** नियोजन काल में निवेश तथा वित्तीय साधनों को एकत्र करने की दृष्टि से भी सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजनावधि में कुल निवेश का लगभग 54 प्रतिशत भाग सार्वजनिक क्षेत्र का था। इसी प्रकार तृतीय योजनावधि में किये गये कुल निवेश में सार्वजनिक क्षेत्र का भाग बढ़कर 60 प्रतिशत पर पहुंच गया। यद्यपि कि बाद की योजनों अवधिओं में कुल निवेश में सार्वजनिक क्षेत्र के भाग में गिरावट हुई फिर भी सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र का कुल निवेश में हिस्सा लगभ 46 प्रतिशत था। 1991 में उदारीकरण की नीति अपनाये जाने के कारण 1990 के दशक में सरकार द्वारा किये गये कुल निवेश में सार्वजनिक क्षेत्र के हिस्से में तेजी से गिरावट हुई। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि आठवीं एवं नौवीं योजना में यह प्रतिशत घटकर क्रमश: 34.3 तथा 29.5 हो गया।

   निवेश में योगदान के साथ-साथ वित्तीय साधनों के एकत्रण की दृष्टि से भी सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। इस दिशा में अनेक वित्तीय संस्थाओं जैसे- जीवन बीमा निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, औद्योगिक वित्त निगम, राज्य वित्त निगम, यूनिट ट्रस्ट बैंक तथा अन्य राष्ट्रीयकृत बैंको की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही हैं। जहां तक कुल घरेलू बचत में सार्वजनिक क्षेत्र के स्वयं के योगदान का प्रश्न है तो इस दृष्टि से इसका योगदान अधिक नहीं रहा है। वास्तव में योजना काल के दौरान कुल घरेलू बचत में सार्वजनिक क्षेत्र के हिस्से में लगातार कमी आती गयी है। छठीं योजना में कुल घरेलू बचत में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा लगभग 23 प्रतिशत था जो सातवीं योजना में कम होकर 15 प्रतिशत तथा आठवीं योजना में मात्र 9.2 प्रतिशत रह गया। नौवीं योजना के प्रथम वर्ष में इसमें और गिरावट दर्ज की गयी तथा मात्र 7.5 प्रतिशत था। दसवीं योजना के प्रथम वर्ष में सार्वजनिक क्षेत्र की बचत ऋणात्मक थी। परन्तु उसके बाद स्थिति में सुधार की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुयी। इसके परिणामस्वरूप कुल बचत में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा जो 2004-05 में 2.3 प्रतिशत था, वह 2007-08 में बढकर 5 प्रतिशत हो गया। परन्तु पुन: 2008-09 में कुल बचत में सार्वजनिक बचत का हिस्सा घटकर 0.5 प्रतिशत रह गया। 2009-10 में कुल बचत में सार्वजनिक क्षेत्र की बचत का हिस्सा 2.1 प्रतिशत था। 2023-24 में कुल सकल घरेलू बचत में सार्वजनिक क्षेत्र की बचत का हिस्सा नकारात्मक रहा और सामान्य सरकार को “बचत में कमी” का सामना करना पड़ा। यह मुख्यत: सरकार द्वारा निकासी में कमी के कारण था। जिससे

कुल सकल घरेलू बचत दर सकल राष्ट्रीय प्रयोज्य आय (GNDI) के 30.3 प्रतिशत पर स्थिर बनी रही।

जहां तक कुल घरेलू पूँजी निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान का प्रश्न है तो सकल घरेलू पूंजी निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र के अंशदान में यद्यपि कि योजनाअवधि में कमी होती गयी है फिर भी यह अंशदान महत्वपूर्ण रहा है। सकल घरेलू पूंजी निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा छठी योजना में 44.6 प्रतिशत था, आठवीं योजना में 31.7 प्रतिशत, नौवीं योजना में 27.3 प्रतिशत तथा दसवीं योजना में 22.2 प्रतिशत था। वर्ष 2009-10 में सकल पूंजी निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा 25.2 प्रतिशत रहा। 2020-21 में, भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का सकल स्थिर पूंजी निर्माण 13,17,456 करोड़ था, जो पिछले वर्ष की तुलना में 0.45 प्रतिशत की वृद्धि थी।

5. **आयात प्रतिस्थापन तथा निर्यात प्रोत्साहन में योगदान -** विदेशी विनियम की समस्या आर्थिक विकास में काफी अवरोध उत्पन्न कर सकती है विशेष कर के वैसी स्थिति में जो कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत की थी। वस्तुत: स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में निर्यात की स्थिति अत्यन्त असन्तोषजनक थी जबकि कुछ आवश्यक आवश्यकताओं जैसे- खद्यान्नों की आपूर्ति, रक्षा सामग्री, उच्च तकनीकी, पूँजीगत सामग्री इत्यादि वस्तुओं का आयात आवश्यक था। ऐसी स्थिति में देश के समक्ष जहाँ एक तरफ विदेशी विनिमय को प्राप्त करने के स्रोत का विस्तार करने की चुनौती थी तो दूसरी तरफ इसको संरक्षित करने की चुनौती भी थी। ऐसा करने के लिए यह आवश्यक था कि एक तरफ निर्यात सम्बन्धी उद्योगों का विकास किया जाए तथा साथ ही साथ उन सभी उद्योगों को भी विकासित किया जाए जिनके द्वारा आयात प्रतिस्थापन सम्भव हो सके। इस चुनौती को ध्यान में रखकर सार्वजनिक क्षेत्र में अनेक औद्योगिक इकाईयों को स्थापित किया गया जो देश के आयात प्रतिस्थापन की दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण रहीं। इन इकाईयों में प्रमुख इकाईयां हैं- भारत इलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड, हिन्दुस्तान ऐंटीबायोटिक्स लिमिटेड, इण्डियन आयल कारपोरेशन लिमिटेड, आयल एण्ड नेचुरल गैस कार्पोरेशन इत्यादि। सार्वजनिक उपक्रमों के इन क्रियाओं से जहां इससे एक ओर विदेशी मुद्रा की काफी बचत हुई वहीं दूसरी तरफ अर्थव्यवस्था पर अन्य देशों की कम्पनियों के प्रभुत्व को तोड़ने में भी सहायता मिली है।

आयात प्रतिस्थापन के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित अनेक प्रतिष्ठानों ने देश के निर्यातों को बढ़ाने एवं विदेशी मुद्रा अर्जन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। निर्यातों को बढ़ाने की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र में जिन प्रतिष्ठानों की भूमिका सराहनीय रही हैं उनमें प्रमुख हैं- हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड, भारत इलैक्ट्रोनिक्स, स्टेट ट्रेडिंग कारपोरशन तथा मिनरल एण्ड मैटल ट्रेडिंग कारपोरेशन। जहां तक विदेशी मुद्रा के अर्जन का सम्बन्ध है तो इस सन्दर्भ में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि सार्वजनिक उद्यमों में उत्पादित वस्तुओं के सीधे निर्यात से देश को भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती रही है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि 2009-10-10 में भारत की कुल निर्यात आय में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का हिस्सा 9.2 प्रतिशत था। इसके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों द्वारा निर्यात उद्योग में लगे निजी क्षेत्र की इकाईयों को दी गई व्यापारिक एवं विपणन सुविधाओं के माध्यम से भी विदेशी मुद्रा अर्जन में अप्रत्क्ष योगदान रहता है।

6. **क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने में योगदान -** सरकार ने क्षेत्रीय असमानताओं में कमी लाने के उद्देश्य से अनेक ऐसे सार्वजनिक इकाईयों की स्थापना किया जो पिछड़े क्षेत्रों से ही सम्बन्धित थे। उदाहरण के लिए सरकार ने देश में जिन चार प्रमुख स्टील प्लांटों- 'भिलाई स्टील प्लांट', 'राउरकेला स्टील प्लांट', 'दुर्गापुर स्टील प्लांट' तथा 'बोकारो स्टील प्लांट' की स्थापना किया वे पिछड़े हुए राज्यों में ही स्थापित किये गये। इसी प्रकार सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत अनेक मशीनरी उद्योग, मशीन टूल्स उद्योग, उवर्रक उद्योग, परिवहन उपकरण उद्योग इत्यादि भी पिछड़े क्षेत्रों में ही स्थापित किए गए। पिछड़े हुए राज्यों तथा क्षेत्रों में भारी निवेश के पीछे सरकार

का यह विश्वास था कि बड़े सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना से इन क्षेत्रों में औद्योगिक विकास होगा जिससे आर्थिक विकास की प्रक्रिया तेज हो सकेगी।

7. **आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण को कम करने में योगदान -** एक अर्थव्यवस्था में जब सार्वजनिक क्षेत्र नहीं के बराबर होता है तो विकास की प्रक्रिया में आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण की संभावना प्रबल हो जाती है और आय के वितरण में असमानताएं बढ़ने लगती हैं। योजनावधि के दौरान भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के समर्थन में प्राय: यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि इससे निजी क्षेत्र में आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण पर अंकुश लगाना सम्भव होगा। अर्थव्यवस्था में व्याप्त आर्थिक असमानताओं को कम करने में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका इस प्रकार हो सकती है - ***पहला*** सार्वजनिक क्षेत्र के लाभों का प्रयोग सरकार सीधे रूप से निर्धन वर्गों के कल्याण कार्यक्रमों पर कर सकती है; ***दूसरा*** सार्वजनिक क्षेत्र के एक विभेदात्मक नीति को अपना सकता है जिसके तहत छोटे उद्योगपतियों को माल कम कीमतों पर तथा बड़े उद्योगपतियों को माल ज्यादा कीमतों पर दिया जा सकता है; ***तीसरा*** सार्वजनिक क्षेत्र निजी क्षेत्र की तुलना में निचले स्टाफ को ज्यादा वेतनमान दे सकता है और श्रमिक कल्याण के कार्यक्रमों को अधिक कारगर ढंग से लागू कर सकता है; तथा ***चौथा*** सार्वजनिक क्षेत्र उत्पादन-मशीनरी में परिवर्तन के द्वारा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की वस्तुओं का ज्यादा उत्पादन कर सकता है।
8. **रोजगार एवं श्रम कल्याण -** सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का देश की रोजगार की स्थिति में सुधार लाने में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मार्च, 2010 तक सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या 14.90 लाख थी। जोकि मार्च 2020 तक सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या लगभग 22.832 मिलियन हो गयी। इतना ही नहीं सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम श्रमिकों के कल्याण की दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण रहीं हैं क्योंकि इस क्षेत्र में श्रमिकों को निजी क्षेत्र की तुलना में बेहतर मजदूरी एवं अन्य सुविधाएं भी प्रदान की जाती हैं। इसके अलावा अनेक सार्वजनिक उपक्रम अपने कर्मचारियों को आवास की सुविधा प्रदान करतें हैं। इस उद्देश्य के लिए फैक्ट्री के आसपास रहने की बस्तियों का विकास किया गया है जिनमें सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराई गई हैं। उदाहरण के लिए इन बस्तियों में स्कूल, अस्पताल, बाजार इत्यादि की पूरी व्यवस्था होती है। प्रत्येक वर्ष इन बस्तियों के रख-रखाव पर काफी संसाधन व्यय किये जाते हैं। सार्वजनिक उद्यमों के कर्मचारियों को चिकित्सा सुविधाएं, रियायती कैन्टीन सेवाएं, नि:शुल्क अथवा रियायती दर पर शैक्षिक सुविधाएं एवं परिवहन सुविधाएं भी उपलब्ध कराई जाती हैं।

3.5 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का निष्पादन

अब तक की विवेचना से स्पष्ट हो चुका है कि योजनावधि के अन्तर्गत देश में सार्वजनिक क्षेत्र का उल्लेखनीय रुप से विस्तार एवं विकास हुआ तथा देश के आर्थिक विकास में इस क्षेत्र का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है।। अब प्रश्न यह उठता है कि सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत स्थापित इकाईयों का निष्पादन किस प्रकार रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत स्थापित इकाईयों के निष्पादन का आंकलन मुख्य रुप से दो आधारों पर किया जाता है- 'लाभदायिता'' तथा 'दक्षता'।

1. **लाभदायिता के आधार पर आंकलन -** सार्वजनिक उपक्रमों के लाभदायिता के सन्दर्भ में अर्थशास्त्रियों में एक मत नहीं है। इस सन्दर्भ में एक मत यह है कि इन इकाईयों में निवेश किये गये कुल पूँजी में निवल लाभ का अनुपात, अर्थात् लाभदायिता, बहुत समय तक अपर्याप्त रहा है खासतौर पर यदि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि सार्वजनिक उद्यमों में सरकार ने हजारों करोड़ रूपए का निवेश किया है। वस्तुत: कई वर्षों में कुल पूंजी से निवल लाभ का अनुपात 2 से 2.5 प्रतिशत के बीच रहा है। इसी आधार पर एक अर्थशास्त्री **बिमल जालान** यह मत व्यक्त करते हैं कि सार्वजनिक उद्यमों में 'निवेश पर कम प्रतिफल' ही सरकार के राजकोषीय संकट के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है।

इसके विपरीत दूसरे मत के अर्थशास्त्रियों का यह तर्क है कि निजी क्षेत्र के उद्यमों का एकमात्र उद्देश्य लाभ कमाना होता है इसलिए इनका आंकलन तो लाभदायिता आधार किया जाना उचित होता है परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र के लिए इस कसौटी का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसके समर्थन में यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि सामान्य रुप से सार्वजनिक उपक्रम उन क्षेत्रों में स्थापित किए जाते हैं जिनमें लाभोत्पादकता कम होती है और लाभ काफी समय के बाद मिलने की आशा होती है। उदाहरण के लिए अधोसंरचना में तथा आधारभूत उद्योगों जैसे- इस्पात उद्योग, उर्वरक उद्योग, बिजली उत्पादन, रसायन उद्योग इत्यादि में किये गये निवेश से जल्द प्रतिफल प्राप्त होने की प्रत्याशा नहीं किया जा सकता। इसलिए आरम्भ में लाभ काफी कम होते हैं और कभी-कभी तो ऋणात्मक भी हो सकते हैं। परन्तु इन उपक्रमों में किये गये निवेश महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि ये उपक्रम भविष्य में ऑद्योगिक गतिविधियों के विस्तार का आधार विकसित करती हैं। इसके अलावा कुछ सार्वजनिक उद्यम जैसे- लोहा एवं इस्पात उद्योग, मशीन निर्माण उद्योग, मशीन टूल्स, ऑटोमोबाइल उद्योग इत्यादि निजी क्षेत्र को आगत भी उपलब्ध कराते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किये गये ये उद्योग अगर अपनी कीमतों को बढ़ा देते तो बड़ी आसानी से अधिक लाभ कमा सकते थे। परन्तु इनकी इस नीति का देश के औद्योगिक विकास की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता था और सामान्य कीमत स्तर में भी वृद्धि हो सकती थी। इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र की उपक्रमों में कीमतों को जान-बूझकर कम रखना पडा।

सार्वजनिक उपक्रमों के लाभदायिता के सन्दर्भ में एक तथ्य यह भी उल्लेखनीय है कि सार्वजनिक क्षेत्र को जो हानि उठानी पड़ी है उसका काफी हिस्सा उन बीमार निजी क्षेत्र की इकाइयों की देन है जिन्हें सार्वजनिक क्षेत्र ने अपना लिया ताकि श्रमिकों को बेरोजगार होने से तथा उत्पादन में गिरावट होने से बचाया जा सके। उदाहरण के लिए 1991-92 में 102 सार्वजनिक इकाइयों को हानि उठानी पड़ी थी इनमें से 40 प्रतिशत इकाइयां वे थी जिन्हें निजी क्षेत्र से लिया गया था। इस प्रकार निजी क्षेत्र की हानियां भी सार्वजनिक क्षेत्र में शामिल हो गई।

2. दक्षता के आधार पर - सार्वजनिक क्षेत्र की देश के आर्थिक विकास में भूमिका के महत्व पर बहुत विवाद नहीं है परन्तु इन इकाइयों के बारे में आमधारणा यह है कि इनके द्वारा अर्जित लाभ की दर या तो नीची रही है या अपने कार्यकाल में ये इकाईयां घाटे में रही हैं। कुछ विश्लेषकों का यह मत है कि इन इकाईयों के इस स्थिति का यह कारण यह है कि इनकी कार्यकुशलता का स्तर नीचा है। दूसरी तरफ कुछ विश्लेषकों का यह मत है कि सार्वजनिक इकाइयों की कार्यकुशलता का आंकलन इतना आसानी से नहीं किया जा सकता जितना कि सार्वजनिक क्षेत्र के आलोचक समझते हैं। इनके अनुसार लाभ की दर निजी कम्पनियों की कार्यकुशलता का मापदण्ड तो हो सकती है परन्तु उसे सार्वजनिक उपक्रमों की कार्यकुशलता का मापदण्ड मानना उपयुक्त नहीं होगा। वस्तुत: इस सन्दर्भ में विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न मापदण्ड का उल्लेख किया है। **ए.ई. काहन** तथा **होलिस चेनरी** ने 'सामाजिक सीमांत उत्पादकता' का आधार ठीक माना है। **चेनरी** के अनुसार किसी भी परियोजना और निवेश की उपयोगिता उसके राष्ट्रीय आय, भुगतान-संतुलन और आय के वितरण पर प्रभाव के रूप में देखी जानी चाहिए। ठीक इसी प्रकार **गेलेंसन** तथा **लाइबेंस्टीन** ने यह मत व्यक्त किया कि सार्वजनिक निवेश का मूल्यांकन 'सीमांत प्रति व्यक्ति पुनर्निवेश भागफल' के आधार पर किया जाना चाहिए।

एक अर्थशास्त्री शिरोकोव ने इस सन्दर्भ में तो यह मत व्यक्त किया कि सार्वजनिक उद्यमों की लाभप्रदता उनकी कार्यकुशलता की एकमात्र कसौटी नहीं हो सकती। सार्वजनिक क्षेत्र के किसी भी उपक्रम की कार्यकुशलता उसकी औद्योगिक ढांचे को बदल सकने की क्षमता, आधुनिकीकरण, देशव्यापी स्तर पर श्रम की उत्पादकता में सुधार इत्यादि पर निर्भर होती है। सच तो यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित उद्योगों द्वारा उत्पादित मूल्य का एक बड़ा भाग तो इस क्षेत्र के बाहर प्राप्त होता है। इसलिए लागत और लाभप्रदता के आधार पर सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यकुशलता का अनुमान लगा सकना बहुत कठिन है।

निष्कर्ष के रुप में यह बात सामने आती है कि किसी भी सार्वजनिक उपक्रम का मूल्यांकन उसके सामाजिक लाभ और सामाजिक लागत की तुलना के द्वारा होना चाहिए न कि उसके लाभ की दर के आधार पर। भारत में प्राय: सामाजिक लाभ के पहलू के आधार पर इन उपक्रमों की कार्यकुशलता का आकलन नहीं किया जाता बल्कि इनमें लाभ के नीचे स्तर के आधार पर ही इनकी आलोचना की जाती है।

3.6 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र की समस्याएं

उपरोक्त विवेचना से एक बात तो स्पष्ट हो गयी कि सार्वजनिक उपक्रमों में लाभ का स्तर अपेक्षाकृत नीचा रहता है तथा अनेकों इकाईयां अकुशलता से ग्रस्त रहती हैं। प्रश्न यह उठता है कि ऐसी कौन सी समस्याएं हैं जिनके कारण ये इकाईयां अकुशलता का शिकार हो जाती हैं। वस्तुत: सार्वजनिक इकाईयों के संचालन में निम्न समस्याएं विद्यमान रहती हैं-

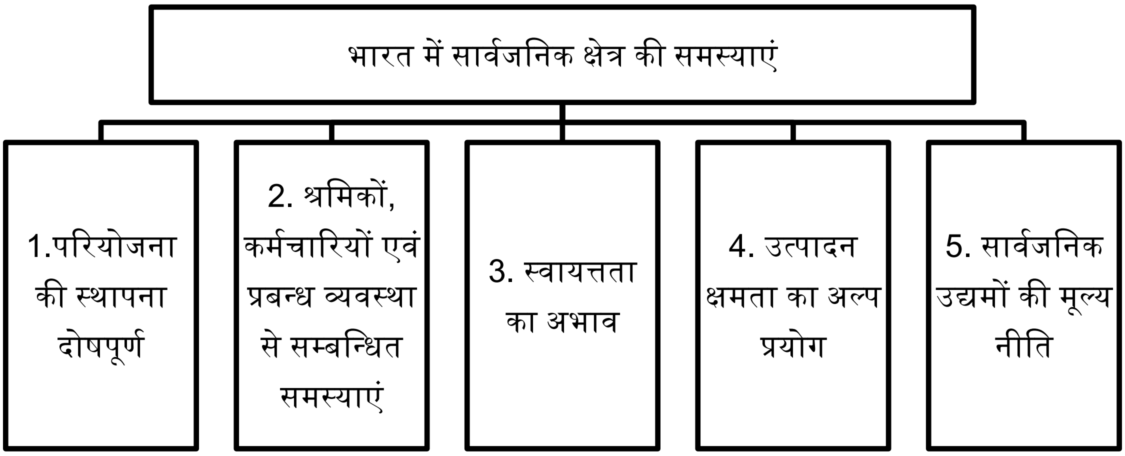

1. **परियोजना की स्थापना दोषपूर्ण -** सार्वजनिक उपक्रमों के सन्दर्भ में एक दोष यह रहा है कि अनेक परियोजनाओं के स्थान का चुनाव करते समय सावधानी नहीं बरती गई जिससे कभी-कभी अनुपयुक्त स्थान पर उद्योग स्थापित कर दिए गए। इसके अलावा, अनेक परियोजनाएं ऐसी रहीं जिनमें लागत का गलत अनुमान लगाया गया जिसके फलस्वरुप वास्तविक लागतें अनुमानित लागतों से बहुत ज्यादा निकली। अनेक परियोजनाएं ऐसी भी रहीं जिनको पूरा करने में अनुमानित समय से ज्यादा समय लग गया। कुछ परियोजनाएं अनुपयुक्त तकनीकी के आधार पर स्थापित की गयीं। जैसे कि **भगवती** एवं **देसाई** ने अपने एक अध्ययन में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि कई परियोजनाओं को सम्पूर्ण तकनीकी पहलुओं को ध्यान में रखकर नहीं स्थापित किया गया और न ही आर्थिक लागतों व लाभों का ठीक-ठीक आकलन किया गया। इस अध्ययन में यह भी तथ्य पाया गया कि कई परियोजनाएं निर्धारित समय से 18 महीने या 2 वर्ष बाद पूरे हुए तथा वास्तविक लागत, अनुमानित लागत की तुलना में 10-15 से लेकर 80-90 प्रतिशत तक अधिक पायी गयी। इन परियोजनाओं के अन्तर्गत एक यह भी दोष रहा कि अनेक परियोजनाओं को पिछड़े हुए क्षेत्रों में स्थापित करने के निर्णय के कारण, इन क्षेत्रों में आधारभूत संरचना जैसे – परिवहन, संचार, आवास इत्यादि की व्यवस्था के निर्माण पर काफी संसाधन व्यय करना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि ऐसी परियोजनाओं की लागतें बढ़ गई।
2. **श्रमिकों, कर्मचारियों एवं प्रबन्ध व्यवस्था से सम्बन्धित समस्याएं -** सार्वजनिक उपक्रमों में एक प्रमुख दोष यह पाया जाता है कि इनके रोजमर्रा के कामकाज में अक्सर राजनैतिक हस्तक्षेप होता रहता है जिसके कारण इनके प्रबन्धकों व कर्मचारियों के मनोबल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इतना ही नहीं इन इकाईयों के प्रबन्कों एवं संचालकों का चुनाव कुशलता व अनुभव के आधार पर न होकर राजनैतिक कारकों से प्रेरित होता है। आमतौर पर भारतीय प्रशासनिक सेवा के प्रशासकों को इन

औद्योगिक प्रतिष्ठानों के प्रबन्धकों के रूप में नियुक्त कर दिया जाता है जिनमें से कई प्रबन्धक योग्य सिद्ध नहीं होते। जैसा कि **भगवती** एवं **देसाई** ने कहा है, ये अधिकारी बहुत सतर्कता से तथा बहुत समय बाद निर्णय ले पाते हैं। इनमें प्रबन्धन व्यवस्था के लिए आवश्यक 'साहस' नहीं होता और ये परिवर्तन एवं प्रयोग अर्थात् उत्पादन प्रक्रिया में नवप्रवर्तन को अपनाने से हिचकिचाते हैं।

इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक उपक्रमों में राजनैतिक कारकों के प्रभाव में आकर आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों को काम पर नियुक्त कर दिया जाता है और उन्हें निजी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक मजदूरी भी दी जाती है। इसके परिणामस्वरुप अनेक उपक्रमों में 'अतिरिक्त श्रम शक्ति (ओवर-स्टाफिंग)' की समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा इसके परिणामस्वरुप इनकी संचालन लागत बढ़ जाती है।

3. **स्वायत्तता का अभाव -** किसी भी व्यावसायिक इकाई के कुशल संचालन के लिए यह आवश्यक होता है कि उसे अपेक्षित स्वायत्ता प्राप्त हो जिसका यह अभिप्राय होता है कि इन इकाईयों को बिना बाहरी हस्तक्षेप के काम करने दिया जाए। विशेषकर, कम से कम, दैनिक कामकाज में स्वायत्तता बहुत जरूरी है। इसका कारण यह है कि एक व्यावसायिक इकाई को कई बार कुछ समस्याओं के सन्दर्भ में त्वरित निर्णय लेने की आवश्यकता पड़ती है। सार्वजनिक उपक्रमों में एक यह भी दोष पाया जाता रहा है कि इन उपक्रमों में अपेक्षित स्वायत्ता का अभाव रहा है। वस्तुत: भारत में सार्वजनिक उपक्रम, सम्बन्धित मन्त्रालयों अथवा संसद के नियन्त्रण में होते हैं। इन नियन्त्रणों का यह परिणाम रहा कि सरकारी प्रतिष्ठानों के उस कुशलता का अभाव रहा जो एक व्यावसायिक इकाई के अन्तर्गत होनी चाहिए।
4. **उत्पादन क्षमता का अल्प प्रयोग -** सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में अनेक उपक्रम ऐसे रहे हैं जिनमें कई वर्षो तक 50 प्रतिशत से भी कम उत्पादन क्षमता का प्रयोग होता रहा है। इन उपक्रमों की कम लाभदायिता एवं अकुशलता का यह एक महत्वपूर्ण कारण रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में निहित इस दोष के कारणों के सन्दर्भ में अनेक अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग विचार प्रस्तुत किया है। जैसे कि एक अर्थशास्त्री विजय केलकर ने इस सन्दर्भ में जिन कारणों का उल्लेख किया उनमें प्रमुख हैं - पिछड़े क्षेत्रों के आर्थिक विकास करने की जिम्मेदारी, स्थानीय तौर पर उपलब्ध होने वाले कच्चे माल का प्रयोग करना भले ही उनकी गुणवत्ता निकृष्ट ही क्यों न हो, निजी क्षेत्र के बहुत से बीमार इकाईयों को सार्वजनिक क्षेत्र में शामिल करना इत्यादि। वस्तुत: इन उपक्रमों में क्षमता के अल्प-प्रयोग के कुछ अन्य कारण भी रहे हैं जैसे - उपक्रमों के संचालन एवं प्रबन्ध में दोष, राजनैतिक हस्तक्षेप अर्थात् स्वायत्तता का अभाव, श्रम-असन्तोष इत्यादि।
5. **सार्वजनिक उद्यमों की मूल्य नीति -** सार्वजनिक उपक्रमों के सन्दर्भ में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इनकी की मूल्य नीति निजी क्षेत्र की इकाईयों की मूल्य नीति से अक्सर भिन्न होती हैं। सामान्य रुप से निजी क्षेत्र में कार्यरत व्यावसायिक इकाईयां अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य के आधार पर अपने उत्पादों के मूल्य को निर्धारित करती हैं। इसलिए वे अपने उत्पादों का ऐसा मूल्य निर्धारित करती है कि उसका निजी लाभ अधिकतम हो जाए। सार्वजनिक उपक्रमों का दृष्टिकोण और नीति ऐसा नहीं होता बल्कि ये इकाईयां सामाजिक हित को प्राप्त करने के उद्देश्य के आधार पर संचालित होती हैं। इसलिए इनकी मूल्य नीति इस व्यापक लक्ष्य को ध्यान में रख कर ही निर्धारित किया जाता है। इस नीति के परिणामस्वरुप इन इकाईयों को कम लाभदायिता (अथवा घाटा) प्राप्त होता है तथा अकुशलता का शिकार होना पड़ता है।

3.7 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश में सार्वजनिक उपक्रमों का बाहुल्य था।

2. स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के औद्योगिक विकास में सार्वजनिक उपक्रमों को अत्यधिक महत्व दिया गया।
3. सार्वजनिक उपक्रमों का देश के विकास में महत्पूर्ण योगदान रहा है।
4. भारत में सार्वजनिक उपक्रमों का निष्पादन निर्विवाद रुप से असंतोषजनक रहा है।
5. भारत में सभी सार्वजनिक उपक्रमों की लाभदायिता अत्यन्त निम्न रही है।

3.8 सारांश

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त कमजोर थी। देश के आर्थिक विकास की प्रक्रिया को निजी क्षेत्र के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता था। अत: सरकार ने देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रारुप को अपनाते हुए विकास की प्रक्रिया में निजी एवं सार्वजनिक, दोनों क्षेत्रों की सहभागिता को स्वीकार किया। विशेषकर देश के औद्योगिक आधार को विकसित करने की जिम्मेदारी सार्वजनिक क्षेत्र को ही प्रदान किया गया। इसके परिणामस्वरुप देश में सार्वजनिक उपक्रमों का न केवल उल्लेखनीय रुप से विस्तार हुआ बल्कि इन उपक्रमों ने देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। इसके बावजूद इन उपक्रमों का इस आधार पर आलोचना किया जाता रहा है कि इन इकाईयों में जितनी भारी मात्रा में सरकार ने निवेश किया इसकी अपेक्षा इन इकाईयों का निष्पादन अत्यन्त असन्तोषजनक रहा है। विशेषकर इन इकाईयों में अनेक इकाईयों में लाभ प्राप्ति की दर या तो निम्न स्तर पर होता है या ये घाटे में संचालित होती हैं तथा अकुशलता से ग्रस्त रहती हैं। सार्वजनिक उपक्रमों के इस असन्तोषजनक निष्पादन के पीछे कारण यह है कि ये इकाईयां अनेक ऐसी समस्यायों से ग्रसित रहती हैं जिससे कि इनका संचालन कुशल रुप से नहीं हो पाता। इन समस्याओं में प्रमुख समस्यायें हैं- परियोजना की स्थापना सम्बन्धी समस्या, श्रमिकों एवं अकुशल प्रबन्धन की समस्या, स्वायत्तता का अभाव, उत्पादन क्षमता का अल्प-उपयोग तथा अनुपयुक्त कीमत-नीति इत्यादि।

3.9 शब्दावली

- **आधारभूत उद्योग-** इसका अभिप्राय ऐसे उद्योगों से होता है जो औद्योगक विकास के आधार होते हैं जैसे- कोयला, लोहा, इस्पात, सीमेण्ट, भारी रसायन इत्यादि।
- **अधोसंरचना-** इसका अभिप्राय उन आधारभूत सुविधाओं से होता है जिनके अभाव मे आर्थिक विकास संभव नही होता जैसे- रेलपरिवहन, सड़क, बन्दरगाह, विद्युत, संचार इत्यादि।
- **सामरिक-** इसका अभिप्राय 'रक्षा एवं प्रतिरक्षा' से सम्बन्धित होता है।
- **आयात प्रतिस्थापन उद्योग-** इसका अभिप्राय ऐसे उद्योंगों से होता है जिनमें उन वस्तुओं का उत्पादन होता है जिनको आयात किये जाने वाले वस्तुओं के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है।
- **उपक्रम-** इसका अभिप्राय 'इकाई' होता है। वस्तुत: यह शब्द सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों के लिए प्रयोग किया जाता है।
- **निष्पादन-** इस शब्द का सामान्य अर्थ 'उपलब्धियां' अथवा 'परिणाम' होता है।
- **दक्षता-** इसका अभिप्राय 'कुशलता' से होता है।
- **रुग्ण-** यह शब्द 'बीमार' इकाईयों के लिए प्रयोग किया जाता है।

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. असत्य   2. सत्य   3. सत्य
4. असत्य   5. असत्य

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Government of India: ***Economic Survey (2010-11),*** New Delhi.
- Government of India (2010): ***Public Sector Enterprises Report,*** New Delhi.
- Nagaraj, R. (2006): ***Public Sector Performance Since 1950—A Fresh Look,*** Economic and Political, June 24.
- Kelkar, Vijay (1991): ***Public Sector – Measures to Impart Efficiency,*** The Economic Times, January 3.
- Shirokov, G.K. (1973): ***Industrialisation of India,*** Moscow.
- Bhagwati, J.N. and Padma Desai (1970): ***India - Planning for Industrialisation,*** London.
- Hazari, R.K. and A.N. Ozha (1970): ***The Public Sector in India***, in E.A.G. Robinson and M. Kidron ***Economic Development in South Asia,*** London.
- Hanson, A.H. (1965): ***Public Enterprises and Economic Development,*** London.

3.12 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Mishra and Puri (2010): ***Indian Economy***, Himalaya Publication, New Delhi.
- Dutt and Sundaram (2010): ***Indian Economy***, S. Chand Publication, New Delhi.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, NewDelhi.
- मिश्रा एवं पुरी (2010) ***भारतीय अर्थव्यवस्था***, हिमालया पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।
- दत्त एवं सुन्दरम (2010) ***भारतीय अर्थव्यवस्था***, एस. चॉंद पब्लिकेशन, नयी दिल्ली
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. “स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का उल्लेखनीय रुप से विस्तार एवं विकास हुआ।” इस कथन की विवेचना कीजिए।
2. भारत के आथिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र के क्या-क्या योगदान रहे हैं? अपने उत्तर को विस्तार से समझाइए।
3. “भारत का औद्योगिक विकास बहुत हद तक सार्वजनिक क्षेत्र की देन है।” इस कथन से क्या आप सहमत है? अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिए।
4. भारत में सार्वजकि उपक्रमों के असंतोषजनक निष्पादन के विचार से आप किस हद तक सहमत है? अपने विचार की व्याख्या कीजिए।
5. भारत में सार्वजकि उपक्रमों के असंतोषजनक निष्पादन के लिए उत्तरदायी कारणों की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

इकाई- 4 विनिवेश: अर्थ, नीतियाँ एवं मूल्यांकन

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति सरकार की नीति
4.4 भारत में निजीकरण की नीति
4.5 विनिवेश का अर्थ एवं विधियां
4.6 भारत में विनिवेश प्रक्रिया की प्रगति
4.7 भारत में विनिवेश प्रक्रिया का मूल्यांकन
4.8 अभ्यास प्रश्न
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.13 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम लोगों ने यह पाया कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकारी नीति के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र को देश के विकास प्रक्रिया में अत्यधिक महत्व मिलने के परिणामस्वरुप देश में सार्वजनिक उपक्रमों का न केवल उल्लेखनीय रुप से विस्तार हुआ बल्कि देश के आर्थिक विकास में इन उपक्रमों ने महत्वपूर्ण योगदान भी प्रदान किया। इसके बावजूद इन उपक्रमों का इस आधार पर आलोचना किया जाता रहा है कि इन इकाईयों में जितनी भारी मात्रा में सरकार ने निवेश किया गया उसकी अपेक्षा इन इकाईयों का निष्पादन सन्तोषजनक नहीं रहा। विशेषकर के इन इकाईयों में अनेक इकाईयां ऐसी हैं जिनमें लाभ प्राप्ति की दर या तो निम्न स्तर पर रही या ये घाटे में संचालित हो रही और अकुशलता से ग्रस्त हैं। इसका कारण यह है कि ये इकाईयां अनेक ऐसी समस्यायों से ग्रसित रहती हैं जिससे कि इनका संचालन कुशल रुप से नहीं हो पाया। अब प्रश्न यह उठता है कि सरकार ने इन समस्याओं के निराकरण के लिए क्या नीति अपनाया। इस इकाई के अन्तर्गत इस सन्दर्भ में उन समस्त नीतियों की विवेचना किया जा रहा जो सरकार द्वारा समय-समय पर अपनाये जाते रहे हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ बता सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यस्था में सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति किस प्रकार की नीतियों को अपनाया।
- ✓ समझा सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यस्था में निजीकरण की नीति को किस प्रकार लागू किया गया।
- ✓ समझा सकेंगे कि विनिवेश प्रक्रिया का अभिप्राय क्या होता है।
- ✓ भारतीय अर्थव्यस्था में विनिवेश प्रक्रिया की प्रगति को बता सकेंगे।
- ✓ भारतीय अर्थव्यस्था में विनिवेश प्रक्रिया की समीक्षा कर सकेंगे।

4.3 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति सरकार की नीति

सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न उपाय अपनाये जाते रहे हैं। नियोजन के प्रारम्भिक अवधियों में जहाँ सरकार द्वारा इस क्षेत्र को देश के विकास प्रक्रिया में अत्यधिक महत्व दिया गया वहीं दूसरी तरफ बाद की अवधियों में, विशेषकर 1991 के बाद की अवधि में, इस क्षेत्र के प्रति सरकार के दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। 1991 में घोषित नई औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के 'सुधार' के लिए सरकार ने विभिन्न उपायों की घोषणा की। इन उपायों में प्रमुख उपाय हैं- आरक्षण की नीति में परिवर्तन, रुग्ण इकाईयों के सन्दर्भ में परिवर्तन, समझौता ज्ञापन की नीति, नवरत्न, मिनीरत्न एवं महारत्न की नीति तथा निजीकरण की नीति।

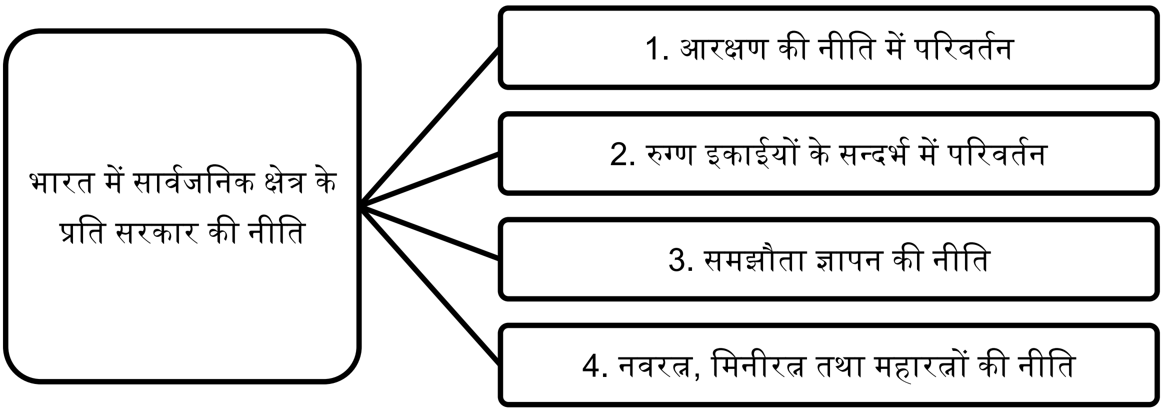

आगे इन उपायों के बारे में विस्तारपूर्वक विवेचना किया जा रहा है।

1. **आरक्षण की नीति में परिवर्तन -** जैसाकि पिछली इकाई के अन्तर्गत उल्लेख किया गया कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने अनेक औद्योगिक क्षेत्रों को सार्वजनिक क्षेत्र के लिए ही आरक्षित कर दिया था। इन औद्योगिक क्षेत्रों की कुल संख्या 17 थी। इसका तात्पर्य यह है कि इन औद्योंगिक क्षेत्रों में निजी क्षेत्र के निवेशकों को निवेश करने की अनुमति नहीं थी। 1991 की औद्योगिक नीति में इस आरक्षण की नीति में परिवर्तन करते हुए 8 औद्योगिक क्षेत्रों को आरक्षित सूची से बाहर करते हुए निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया। बाद के वर्षों में 6 अन्य औद्योगिक क्षेत्रों को आरक्षित सूची में से निकाल दिया गया। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 1956 की औद्योगिक नीति में आरक्षित 17 उद्योगों में से 14 उद्योगों को आरक्षण से मुक्त कर दिया गया और वर्तमान में केवल 3 औद्योगिक क्षेत्र ही सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित रह गए हैं। ये तीन उद्योग हैं- परमाणू ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा से सम्बन्धित खनिज तथा रेल परिवहन।
2. **रुग्ण इकाईयों के सन्दर्भ में परिवर्तन -** रुग्ण अर्थात् बीमार इकाईयों के सन्दर्भ सरकार ने 1980 के दशक में एक परिषद- 'बोर्ड फॉर इण्डस्टियल फाइनेन्स एण्ड रिकन्सट्रक्शन (बी.आई.एफ.आर.)' का गठन किया था। इस परिषद को यह जिम्मेदारी दी गयी थी कि यह परिषद रुग्ण इकाईयों की जाँच करेगा तथा यह सुझाव देगा कि रुग्ण इकाइयों का पुनर्गठन संभव है कि नहीं। परिषद को यह भी जिम्मेदारी दी गयी थी कि यदि परिषद अपनी जाँच प्रक्रिया में इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि किसी रुग्ण इकाई का पुनर्गठन संभव नहीं है तो वह इन इकाईयों को बंद करने की संस्तुति कर सकता था। परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों को इस परिषद के दायरे से बाहर रखा गया था।

   1991 की घोषित औद्योगिक नीति में इस नीति में परिवर्तन करते हुए सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को निजी क्षेत्र की इकाईयों के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया गया तथा सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों को भी उक्त परिषद के दायरे में शामिल कर दिया गया। परिषद को यह निर्धारित करने की जिम्मेदारी दे दी गयी कि वह निर्धारित कर सकता है कि कौन सी रुग्ण सार्वजनिक इकाई का पुनर्गठन संभव है और किस इकाई को बन्द किया जाना है। इतना ही नहीं, रुग्ण एवं हानि उठा रहे सार्वजनिक उपक्रमों की पुन: संरचना के प्रयास में सरकार ने 'स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना' को और उदार बना दिया ताकि केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम 'अतिरिक्त श्रम शक्ति की समस्या' से छुटकारा पा सकें।
3. **समझौता ज्ञापन की नीति -** समझौता ज्ञापन नीति की शुरूआत भारत में 1988 में हुई थी। इस नीति के अन्तर्गत सार्वजनिक उपक्रमों के प्रबन्ध तन्त्र तथा सरकार के बीच समझौता ज्ञापन तैयार किया जाता है। इस नीति का उद्देश्य सार्वजनिक उपक्रमों पर से सरकारी नियंत्रणों को कम करना और इनको स्वायत्तता प्रदान करना है तथा इन उपक्रमों को अपने निष्पादन के लिए अधिक उत्तरदायी बनाना है। इन ज्ञापनों के माध्यम से सार्वजनिक उपक्रमों को निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित भी किया जाता है और उनके दैनिक कामकाज में हस्तक्षेप कम किया जाता है। 1987-88 में चार सार्वजनिक उपक्रमों के साथ समझौता ज्ञापन तैयार किए गए थे। बाद के वर्षों में समय के साथ इस प्रकार के ज्ञापनों की संख्या में वृद्धि होती गयी। 2010-11 में कुल 202 सार्वजनिक उपक्रमों के साथ समझौता ज्ञापन तैयार किए गए। सरकार ने अब यह निर्णय लिया है कि सभी सार्वजनिक उपक्रम, जिसमें रुग्ण, हानि उठा रहे तथा निर्माणाधीन उपक्रम भी शामिल हैं, सरकार के साथ समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर करेंगे।
4. **नवरत्न, मिनीरत्न तथा महारत्नों की नीति -** सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत ऐसा नहीं है कि सभी इकाईयों का निष्पादन असन्तोषजनक रहा है। कुछ इकाईयां ऐसी भी रही हैं जिनके लाभ एवं कुशलता का स्तर इतना उत्तम रहा है कि इनसे निजी क्षेत्र की इकाईयां भी प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकती हैं। सरकार ने इन इकाईयों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से अलग श्रेणियां- नवरत्न,

मिनीरत्न एवं महारत्न, निर्धारित किया और इनके लिए अलग से नीति निर्धारित किया है। सरकार ने 16 सार्वजनिक उपक्रमों को 'नवरत्नों' की श्रेणी में शामिल किया है। इन नवरत्न ईकाइयों को संपूर्ण वित्तीय और प्रबन्धकीय स्वायत्तता की घोषणा की गई है ताकि ये उद्यम वैश्विक स्तर के बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा कर सकें और अपने आपको एक बड़े उपक्रम के रुप में प्रतिस्थापित कर सकें। सरकार ने इन उपक्रमों के लिए एक 'स्वायत्तता पैकेज' की भी घोषणा की है। इस स्वायत्तता पैकेज के अन्तर्गत इन उपक्रमों को जो सुविधाएं दी गई हैं उनमें प्रमुख हैं- ये उद्यम जितनी पूंजी व्यय करना चाहें कर सकते हैं अर्थात् इन पर मौद्रिक व्यय की कोई सीमा नहीं है घरेलू या अंतर्राष्ट्रीय बाजार से पूंजी एकत्रित कर सकते है, प्रौद्योगिकी संयुक्त परियोजनाओं तथा पूर्ण स्वामित्व वाले सहायक उद्यमों में 200 करोड़ रूपए तक का ईक्विटी निवेश कर सकते हैं, अपने बोर्ड में बाहर से विशेषज्ञों को पार्ट-टाइम आधार पर नियुक्ति कर सकते हैं, संगठनात्मक पुनगर्ठन कर सकते हैं जिसमें लाभ-केन्द्रों की स्थापना तथा देश व विदेश में कार्यालय खोलना शामिल है तथा मानव संसाधन प्रबंधन व कर्मचारियों से संबंधित योजनाओं को लागू कर सकते हैं।

सरकार ने दिसम्बर 2009 में केन्द्रीय सार्वजनिक उद्यमों के लिए एक नई श्रेणी 'मिनीरत्न' की घोषणा की। इनके प्रदर्शन के आधार पर इन उपक्रमों को दो वर्गों में बांटा गया है। पहले वर्ग में उन उपक्रमों को शामिल किया गया जिन्होंने पिछले तीन वर्षों में लगातार लाभ कमाया है। इन उपक्रमों में कम-से-कम एक वर्ष में 30 करोड़ रूपए का निबल लाभ होना आवश्यक है तथा जिनकी धनात्मक मालियत है। दूसरे वर्ग में उन उपक्रमों को शामिल किया गया जिन्होंने पिछले तीन वर्षों में लगातार लाभ कमाया है तथा जिनकी धनात्मक मालियत है। इन उपक्रमों को और पूंजी व्यय करने की, संयुक्त परियोजनाओं में हिस्सा लेने की तथा मानव-शक्ति संबंधी अपनी नीतियां बनानें की स्वायत्तता प्रदान की गयी है।

सरकार ने दिसम्बर 2009 में ही केन्द्रीय सार्वजनिक उद्यमों के लिए एक अन्य श्रेणी- 'महारत्न' की घोषणा की। इस नए श्रेणी को बनाने का उद्देश्य सुयोग्य केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों को ऐसी शक्तियां प्रदान करना है जिससे वे अपने प्रचालन क्षेत्र का विस्तार कर सके तथा वैश्विक स्तर पर प्रभावी रूप से काम कर सकें। 'महारत्न' सार्वजनिक उपक्रमों के बोर्ड को वे सारे अधिकार प्रदान किये गये हैं जो नवरत्न सार्वजनिक उपक्रमों के बोर्डो को हैं। इसके अलावा इनको संयुक्त उपक्रम एवं सहयोगी उपक्रमों में व्यापक निवेश करने में भी स्वायत्तता प्रदान की गयी है। मई 2010 में सरकार ने चार सार्वजनिक उपक्रमों को 'महारत्न' घोषित किया। ये उपक्रम हैं- 'स्टील अथारिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड', 'नेशनल थर्मल पॉवर कार्पोरेशन', 'इण्डियन ऑयल कार्पोरेशन' तथा 'ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कार्पोरेशन'।

4.4 भारत में निजीकरण की नीति

निजीकरण का अभिप्राय उस प्रक्रिया से होता है जिसके अन्तर्गत किसी देश की सरकार उत्पादक साधनों को सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र की तरफ हस्तानान्तरित करती है तथा सार्वजनिक उपक्रमों में लगे पूँजी में अपनी हिस्सेदारी को निजी हाथों में हस्तानान्तरित करती है। नयी औद्योगिक नीति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र से पीछे हटने का निर्णय लिया जिसके अनुसार सरकार वह सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का चरणबद्ध तरीके से निजीकरण करने की प्रक्रिया को लागू कर रही है। इस सम्बन्ध में सरकार का मुख्य दृष्टिकोण यह है कि सभी प्रकार के गैर-सामरिक सार्वजनिक उपक्रमों में सरकार के हिस्से को 26 प्रतिशत तक या उससे भी कम कर दिया जाए तथा उन इकाइयों को बन्द कर दिया जाए जिन्हें पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। निजीकरण की प्रक्रिया को लागू करने के लिए सरकार ने विनिवेश की नीति को लागू किया है।

विनिवेश प्रक्रिया को लागू करने के लिए सरकार ने प्रारम्भिक अवधियों में किसी स्पष्ट नीति को नहीं अपनाया। बाद की अवधि में इसके लिए कुछ उपाय अपनाया गया। जैसे प्रक्रिया के निर्धारण के लिए 1993 में एक समिति - 'रंगराजन समिति' गठित किया गया। इसी प्रकार 1996 में एक आयोग - 'विनिवेश आयोग' गठित किया गया जिसकी मुख्य जिम्मेदारी विनिवेश के लिए सार्वजनिक उपक्रमों की सिफारिश करना था। इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण कदम उठाते हुए सरकार ने दिसम्बर 2004 में सार्वजनिक क्षेत्र के

उद्यमों के पुनर्निर्माण के लिए एक परिषद - 'बोर्ड फॉर रिकान्सट्रक्शन ऑफ पब्लिक सेक्टर एन्टरप्राइजेज' (बी.आर.पी.एस.इ.) का गठन किया। इस परिषद का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की पुन:-संरचना एवं पुनर्निमाण के लिए आवश्यक सुझाव देना है। साथ ही साथ यह परिषद उन स्थितियों पर भी विचार करता है तथा अपना सुझाव देता है कि किन उपक्रमों में विनिवेश करना उचित है तथा किन उपक्रमों को बन्द करना सही है। दिसम्बर 2010 तक इस परिषद ने कुल 62 उपक्रमों के लिए अपने सुझाव दिये हैं।

4.5 विनिवेश का अर्थ एवं विधियां

जैसा कि ऊपर की पंक्तियों में उल्लेख किया गया कि निजीकरण की प्रक्रिया को लागू करने के लिए सरकार ने विनिवेश की नीति को लागू किया। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि विनिवेश प्रक्रिया का अर्थ क्या होता है तथा इसको लागू करने के लिए कौन सी विधियां अपनायी जा सकती हैं? वस्तुत: विनिवेश का अभिप्राय 'निवेश' क्रिया के उल्टी क्रिया से होता है। अर्थात् विनिवेश का अभिप्राय उस प्रक्रिया से होता है जिसमें किसी व्यावसायिक इकाई में निवेश किये गये पूँजी को वापस प्राप्त किया जाता है। यदि इस प्रक्रिया को सार्वजनिक उपक्रमों के सन्दर्भ में प्रयोग किया जाए तो इसका तात्पर्य यह होता है कि सरकार सार्वजनिक उपक्रमों में निवेश किये गये अपनी पूँजी को निकाल लेती है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरुप सम्बन्धित उपक्रम से स्वामित्व का आंशिक अथवा पूर्ण रुप से निजी हाथों में हस्तानान्तरण हो सकता है। अत: यह कहा जा सकता है कि विनिवेश प्रक्रिया निजीकरण को लागू करने का एक उपाय है।

विश्व के विभिन्न देशों में विनिवेश अर्थात् निजीकरण की प्रक्रिया को लागू करने के लिए कई विधियों का उल्लेख मिलता है। इन विधियों में प्रमुख रुप से चार विधियां प्रचलित रही हैं- 'आई.पी.ओ. विधि', 'स्ट्रेट्जिक सेल विधि', 'इक्वेल एक्सेस वाउचर विधि' तथा 'सम्बन्धित उपक्रमों के प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों को पूँजी में हिस्सेदारी देना'। 'आई.पी.ओ. विधि' के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के अंशों अर्थात् शेयरों को सरकार निजी निवेशकों, संस्थाओं इत्याकि के हाथों बेचकर अपनी पूँजी को निकालती है। इस विधि के अन्तर्गत सार्वजनिक उपक्रम के स्वामित्व का प्रसार तो होता है परन्तु स्वामित्व एवं प्रबन्ध तन्त्र पर जहाँ तक नियन्त्रण का प्रश्न है तो यह विनिवेश प्रक्रिया के बाद भी सार्वजनिक क्षेत्र अर्थात् सरकार के हाथ में ही बना रहता है। अतः निजीकरण की इस विधि में सार्वजनिक उपक्रमों के कर्मचारियों में असन्तोष उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती है। परन्तु इस प्रकार के विनिवेश के लिए यह आवश्यक होता है कि सम्बन्धित देश में पूँजी बाजार अत्यन्त कुशल होना चाहिए जिससे कि सरकार को अपनी पूँजी का उचित मूल्य मिल सके।

'स्ट्रेट्जिक सेल विधि' के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के इकाइयों को निजी क्षेत्र के उद्यमियों के हाथों बेचकर सरकार अपनी पूँजी को निकालती है। इस प्रकार की विनिवेश प्रक्रिया के बाद सम्बन्धित उपक्रम का स्वामित्व निजी हाथों में हस्तानान्तरित हो जाता है। अत: स्पष्ट है कि इस प्रकार के निजीकरण की विधि में सार्वजनिक उपक्रमों के कर्मचारियों में असन्तोष उत्पन्न होने का भय बना रहता है। परन्तु इस प्रकार के विनिवेश ऐसे देश में भी लागू किया जा सकता है जिसमें पूँजी बाजार कुशल नहीं होता।

'इक्वेल एक्सेस वाउचर विधि' के अन्तर्गत एक देश की सरकार देश की जनता के हाथों में वाउचर वितरित करके निजीकरण की प्रक्रिया को अपनाती है। इन वाउचरों पर सार्वजनिक उपक्रमों के पूँजी का एक समान रुप से आबंटन किया जाता है। इस प्रकार के निजीकरण प्रक्रिया में स्वामित्व का तो हस्नान्तरण हो जाता है परन्तु सरकार को कोई पूँजी नहीं प्राप्त होती है। इस प्रकार की निजीकरण की प्रक्रिया समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में देखने को मिलता है।

चौथी विधि ऐसी विधि होती है जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक उपक्रमों के पूँजी को अंश पूँजी के रुप में कुछ हिस्से को 'सम्बन्धित इकाईयों के प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों के हाथों में बेच दिया जाता है'। इस प्रकार के निजीकरण प्रक्रिया की विशेषता यह होती है कि सरकार को आवश्यक पूँजी भी प्राप्त हो जाती है तथा सम्बन्धित इकाई का नियन्त्रण सरकार के हाथ में ही बना रहता है साथ ही साथ प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों में असन्तोष उत्पन्न होने का भय भी नहीं रहता है।

4.6 भारत में विनिवेश प्रक्रिया की प्रगति

भारत में विनिवेश प्रक्रिया की पृष्ठिभूमि 1991 के आर्थिक संकट का उत्पन्न होना था जिसमें देश अन्य समस्यायों के साथ-साथ भारी मात्रा में राजकोषीय घाटे की समस्या से जूझ रहा था। अनेक अर्थशास्त्रियों तथा विश्लेषकों ने इस राजकोषीय संकट के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के अपर्याप्त प्रतिफल के दर को जिम्मेदार ठहराया। इतना ही नहीं बदली परिस्थिति में सरकार के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ। अत: सरकार ने आर्थिक सुधार के कार्यक्रमों के अन्तर्गत 1991 में विनिवेश प्रक्रिया को प्रारम्भ किया।

1991-92 से 1998-99 के दौरान सरकार ने विनिवेश प्रक्रिया के लिए आई.पी.ओ. विधि को अपनाया। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के शेयरों की बिक्री विभिन्न रीतियों के द्वारा किया गया। जैसे ‘कुछ कंपनियों में इकट्ठा एक साथ अपने आंशिक शेयरों की बिक्री’, ‘प्रत्येक कंपनी के शेयरों की अलग-अलग बोली लगाकर बिक्री’, ‘अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में शेयरों की बिक्री’, ‘अनिवासी भारतीयों तथा विदेशी संस्थागत निवेशकों को बोली में हिस्सा लेने की अनुमति’ इत्यादि रीतियों को अपनाकर सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेश किया गया। 1991-92 में विनिवेश की प्रक्रिया शुरू होने पर सरकार ने अच्छा व खराब निष्पादन करने वाले सार्वजनिक उपक्रमों के शेयर इकट्ठा ‘समूह’ में बेचे। परन्तु इससे लाभ होने के बजाए सरकार को हानि हुई क्योंकि ‘समूह’ में शेयरों की बिक्री से काफी कम औसत कीमत प्राप्त हो पाई। इसके परिणामस्वरूप बहुत अच्छी कंपनियों के शेयर भी बहुत सस्ते में बिक गए। इसलिए सरकार ने 1992-93 में ‘समूह’ में शेयर बेचने की नीति छोड़ दी और नीलामी द्वारा प्रत्येक कंपनी के शेयर अलग-अलग बेचने शुरू किए। 1994-95 में अनिवासी भारतीयों तथा अन्य लोगों को भी नीलामी में हिस्सा लेने की अनुमति दे दी गई। 1991-92 से 19908-89 की अवधि के दौरान जिन सार्वजनिक इकाईयों में विनिवेश किया गया उनमें प्रमुख थीं- विदेश संचार निगम लिमिटेड (व्ही.एस.एन.एल.), महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड (एम.टी.एन.एल.), सीएमसी लिमिटेड, आई.टी.डी.सी. के 13 होटल इत्यादि।

1999-2000 से 2003-04 की अवधि के दौरान विनिवेश प्रक्रिया के लिए ‘स्ट्रैटिजिक सेल विधि’ का सहारा लिया गया और सार्वजनिक उपक्रमों का नियंत्रण निजी क्षेत्र के उद्यमियों के हाथों सौंपा गया। विनिवेश की इस विधि को अपनाने के पीछे यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि शेयरों की बिक्री अल्पकालीन बाजार प्रत्याशाओं पर आधारित होती है जबकि स्ट्रैटजिक सेल कम्पनी की ‘दीर्घकालीन कीमत’ को परिलक्षित करती है। निजी क्रेता, कम्पनी पर नियन्त्रण पाने के बदले में कम्पनी की ज्यादा कीमत देने को तैयार हो जाते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के जिन उपक्रमों में स्ट्रैटिजिक सेल विधि से विनिवेश किया गया उनमें प्रमुख हैं- माडर्न फूड इण्डिया लिमिटेड, विदेश संचार निगम लिमिटेड, भारत एल्यूमिनियम कम्पनी (बाल्को), हिन्तुस्तान जिन्क लिमिटेड (एच.जे.एल.), मारुती उद्योग लिमिटेड (एम.यू.एल.) इत्यादि। 2004-05 के बाद से विनिवेश प्रक्रिया को पुन: शेयरों की बिक्री के रीति के द्वारा सम्पादित किया गया।

1991-92 से 2010-11 तक विनिवेश प्रक्रिया से सरकार को वास्तविक रुप में 99070 करोड़ रूपए की प्राप्ति हुई। भारत में विनिवेश प्रक्रिया की प्रगति को सारणी- 4.1 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी-4.1 भारत में विनिवेश प्रक्रिया की प्रगति

अवधि	निर्धारित लक्ष्य (करोड़ रुपये में)	वास्तविक प्राप्तियां (करोड़ रुपये में)	अवधि	निर्धारित लक्ष्य (करोड़ रुपये में)	वास्तविक प्राप्तियां (करोड़ रुपये में)
1991-92	2500	3038	2000-01	10000	1871
1992-93	2500	1913	2001-02	12000	5658
1993-94	3500	शून्य	2002-03	12000	3348

1994-95	4000	4843	2003-04	14500	15547
1995-96	7000	168	2004-05	4000	2765
1996-97	5000	380	2005-06	कोई लक्ष्य नहीं	1570
1997-98	4800	910	2006-07	कोई लक्ष्य नहीं	शून्य
1998-99	5000	5371	2007-08	कोई लक्ष्य नहीं	4181
1999-2000	10000	1860	2008-09	कोई लक्ष्य नहीं	--
			2009-10	कोई लक्ष्य नहीं	23552
			2010-11	40000	22144
कुल योग					99070

स्रोतः "*White Paper on Disinvestment of CPSUs*", विनिवेश विभाग, भारत सरकार।

Economic Survey 2007-08, 2008-09, 2009-10 and 2010-11 Issues.

4.7 भारत में विनिवेश प्रक्रिया का मूल्यांकन

1991 में उदारीकरण नीति के अन्तर्गत विनिवेश प्रक्रिया के माध्यम से जिस निजीकरण प्रक्रिया को प्रारम्भ किया गया उसकी सराहना भी की जाती रही है तथा इसे आलोचना का भी सामना करना पड़ा है। इसके प्रशंसक यह मत व्यक्त करते रहे हैं कि विनिवेश की प्रक्रिया के माध्यम से एक तरफ सरकार को संसाधन प्राप्त होंगें तो दूसरी तरफ सरकार का राजकोषीय भार कुछ हद तक कम होगा। साथ ही साथ, जैसा कि प्रसंशकों का तर्क है, विनिवेश प्रक्रिया के फलस्वरुप सार्वजनिक उपक्रमों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध तन्त्र निजी हाथों में हस्तानान्तरित होने के परिणामस्वरुप इन इकाईयों के कार्यकुलता एवं निष्पादन में सुधार होगा। परन्तु दूसरी तरफ देश के अन्तर्गत एक वर्ग ऐसा भी विद्यमान है जो विनिवेश प्रक्रिया की अनेक आधार पर आलोचना करता है।

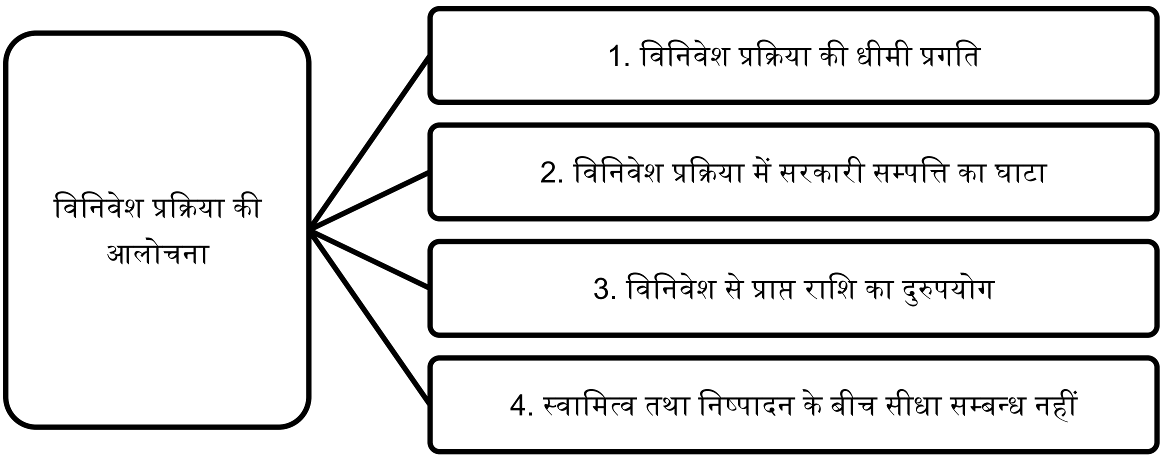

इनमें से प्रमुख आलाचनायें निम्नवत् हैं-

1. **विनिवेश प्रक्रिया की धीमी प्रगति -** भारत में विनिवेश प्रक्रिया की एक प्रमुख आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इसकी प्रगति अत्यन्त धीमी रही है जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि जब से यह प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी तब से लेकर अब तक के सभी वर्षों में कुछ एक-दो वर्षों को यदि छोड़ दिया जाए तो बाकी सभी वर्षो में विनिवेश प्रक्रिया से प्राप्त होने वाली वास्तविक प्राप्तियां, निर्धारित लक्ष्यों की तुलना में काफी कम रहीं हैं। यह तथ्य सारणी 4.1 से स्पष्ट है।

2. **विनिवेश प्रक्रिया में सरकारी सम्पत्ति का घाटा -** भारत में विनिवेश प्रक्रिया की एक प्रमुख आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि सरकार ने विनिवेश की प्रक्रिया का सम्पादन सुनियोजित ढंग से नहीं किया। इसलिए इस प्रक्रिया से सरकार को प्राप्त होने वाली न केवल 'वास्तविक प्राप्तियां' कम रही अपितु विनिवेश के अन्य उद्देश्य भी प्राप्त नहीं हो सके। यह प्रक्रिया अत्यन्त जल्दबाजी में बिना किसी उपयुक्त तैयारी किए लागू कर दिया गया। सरकार ने सार्वजनिक इकाइयों के शेयरों का स्टॉक एक्स्चैंज पर सूचियन तक नहीं किया और न ही इन इकाइयों तथा पूंजी बाजार के बीच कोई सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि इनकी शेयरों के संभावित कीमत के बारे में कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिल पाई। इसके अलावा इस प्रक्रिया में यह भी कमी रही कि इस प्रक्रिया की देख-रेख की कोई उचित व्यवस्था नहीं की गई।

सार्वजनिक उपक्रमों से सम्बन्धित विभाग तथा वित्त मन्त्रालय ने शेयरों की जो कीमत निर्धारित की तथा उन्हें बेचने की जो विधियां अपनायी वे दोषपूर्ण थीं इसलिए शेयरों की बिक्री से जो राशि सरकार को प्राप्त हुई वह बहुत कम थी। यह तथ्य भारत के काम्पट्रोलर और ऑडिटर जनरल (सी.ए.जी.) द्वारा पेश की गई विभिन्न रिपोर्टों से स्पष्ट होता है। सी.ए.जी. ने पहली रिपोर्ट 1993 में प्रकाशित किया जिसके अनुसार निविवेश प्रक्रिया के पहले दो दौर में विभिन्न कम्पनियों के शेयरों पर होने वाला घाटा 127 प्रतिशत से लेकर 616 प्रतिशत तक था तथा औसत रुप से यह घाटा लगभग 256 प्रतिशत रहा। यदि इस औसतन घाटे के आधार पर अनुमान लगाया जाए तो सार्वजनिक इकाईयों के शेयरों की सम्भावित विक्रय राशि 12,554 करोड़ रूपए बनती है जबकि वास्तविक विक्रय से सरकार को केवल 4,951 करोड़ रूपए प्राप्त हुए। सी.ए.जी. की दूसरी रिपोर्ट 2005 में प्रकाशित हुई जिसमें दो सरकारी होटलों के बिक्री नीति की समीक्षा की गई थी। इस रिपोर्ट का निष्कर्ष यह था कि बिक्री केवल 'एक बोली'' के आधार पर कर दी गई और परिसम्पत्तियों के मूल्यांकन की नीति दोषपूर्ण थी जिसके अन्तर्गत 'न्यूनतम बिक्री मूल्य' (रिजर्व प्राईस) बहुत कम रखा गया। सी.ए.जी. की तीसरी रिपोर्ट 2006 में प्रकाशित हुई। इसमें नौ ऐसे सार्वजनिक उपक्रमों की समीक्षा की गई जिनकी बागडोर सरकार ने स्ट्रैट्जिक सेल के माध्यम से निजी क्षेत्र को सौंप दी। इस रिपोर्ट के अनुसार, अधिकतर स्थितियों में मूल्यांकन की पद्धति दोषपूर्ण थी और न्यूनतम बिक्री मूल्य निर्धारित करते समय सरकार ने प्लांट एवं मशीनरी, आवासी गृहों, भूमि तथा अन्य सम्पत्तियों की कीमतों को शामिल नहीं किया। इस रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया कि प्रतिस्पर्धा का सहारा न लेते हुए केवल एक ही बोली को स्वीकार कर लिया और कई बार यह निर्णय लेते समय अन्य बोलियों को बिना कोई उचित कारण बताए अस्वीकार कर दिया गया तथा स्ट्रैटिजिक पार्टनर को निजीकृत सरकारी उपक्रम की बची हुई शेयरों को खरीदने का अधिकार दे दिया गया। इसके परिणामस्वरूप 'हिन्दुस्तान जिन्क लिमिटेड' के स्ट्रैट्जिक पार्टनर ने लगभग आठ करोड़ शेयरों को 40.51 रूपए प्रति शेयर की कीमत से खरीदा जबकि उनकी बाजार में वास्तविक कीमत 119.10 रूपए प्रति शेयर थी। इसी प्रकार की नीति भारत एल्यूमिनियम कम्पनी बाल्को के विनिवेश प्रक्रिया में भी अपनायी गयी।

3. **विनिवेश से प्राप्त राशि का दुरुपयोग -** कुछ अर्थशास्त्रियों ने विनिवेश प्रक्रिया की आलोचना इससे प्राप्त राशि के प्रयोग के आधार पर की है। क्योंकि सरकार ने इस पूंजीगत प्राप्तियों का उपयोग राजस्व प्राप्ति में घाटे को पूरा करने के लिए अर्थात् राजकोषीय घाटे को पूरा करने के लिए किया है। जबकि लाभकारी सार्वजनिक उपक्रमों की परिसम्पत्तियां बेच कर प्राप्त की गई राशि का प्रयोग वर्तमान उपयोग के लिए करना उचित नही है। वस्तुत: होना यह चाहिए था कि विनिवेश प्रक्रिया से प्राप्त साधनों का प्रयोग या तो स्वयं सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विकास कार्यक्रमों के लिए किया जाता या देश के विकास कार्यों पर व्यय किया जाता।

4. **स्वामित्व तथा निष्पादन के बीच सीधा सम्बन्ध नहीं -** विनिवेश प्रक्रिया के प्रशंसकों के इस तर्क की भी आलोचना की जाती है कि इस प्रक्रिया के कारण सार्वजनिक उपक्रमों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध

तन्त्र निजी हाथों में हस्तानान्तरित होने के परिणामस्वरुप इन इकाईयों के कार्यकुलता एवं निष्पादन में सुधार होगा। इसका आधार यह है कि हाल के वर्षो में किए गए कुछ अध्ययनों में यह निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं कि यह कोई आवश्यक नहीं है कि निजीकरण के कारण निष्पादन में अनिवार्य रूप से सुधार होता है। इन अध्ययनों में कहा गया है कि इकाई के स्वामित्व स्वरूप तथा निष्पादन के बीच कोई सीधा व धनात्मक सम्बन्ध नहीं होता है। उदाहरण के लिए, प्रणब बर्धन तथा जान ई. रोईमर के अनुसार, “हमारा विश्वास है कि दक्ष व प्रभावी अर्थव्यवस्था के लिए प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों का होना आवश्यक है परन्तु निजी स्वामित्व ही प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों को जन्म दे सकता है, यह सोचना गलत है। हमारे इस विश्वास को अभी तक न तो इतिहास ने और न ही आर्थिक सिद्धांतों ने गलत सिद्ध किया है।” ठीक इसी प्रकार बिमल जालान लिखते हैं कि “सार्वजनिक उपक्रमों की बिक्री से तब तक कोई फायदा नहीं होगा जब तक कि समग्र-आर्थिक वातावरण में सुधार न हों और यदि आर्थिक नीति ठीक से चलाकर इस वातावरण में सुधार कर लिया जाता है तो फिर बिक्री की जरूरत ही नहीं रह जाती है।” वास्तविकता तो यह है कि जिस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र में कुशल एवं अकुशल दोनों ही तरह की इकाईयां हैं उसी प्रकार निजी क्षेत्र में भी कुशल एवं अकुशल दोनों ही तरह की इकाईयां हैं। अकुशल इकाईयों की कुशलता में सुधार लाने के लिए प्रतियोगी बाजार व्यवस्था का होना जरूरी है न कि स्वामित्व में परिवर्तन।

4.8 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. उदारीकरण की नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के दायरे में वृद्धि की गयी।
2. विनिवेश प्रक्रिया से सम्बन्धित इकाईयों के स्वामित्व का निश्चित रुप से हस्तानान्तरण होता है।
3. विनिवेश की आइ.पी.ओ. विधि एक विकसित पूँजी बाजार वाले देश में लागू करना ज्यादे उपयुक्त होता है।
4. भारत में सार्वजनिक उपक्रमों के विनिवेश के लिए सदैव एक समान विधि को अपनाया गया है।
5. भारत में विनिवेश प्रक्रिया की प्रगति असंतोषजनक रही है।

4.9 सारांश

1991 मे आर्थिक उदारीकरण नीति को अपनाने के पश्चात् सार्वजनिक क्षेत्र के दायरे को कम करते हुए इसके लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या, जो पहले 17 थी, को कम करके केवल 3 तक सीमित कर दिया गया। इतना ही नहीं इस परिवर्तित नीति के अन्तर्गत इन इकाईयों को भी बी.आई.एफ.आर. के दायरे में शामिल करते हुए निजी क्षेत्र की इकाईयों के समकक्ष ला दिया गया। नयी नीति के अन्तर्गत कुछ उपाय ऐसे भी अपनाए गये जिनका उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के इकाईयों में सुधार करना था। इसके लिए एक प्रमुख उपाय- समझौता ज्ञापन की नीति को लागू किया गया। इतना ही नहीं, जो सार्वजनिक इकाईयां बेहतर निष्पादन दे रहीं थीं उन्हे प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से एक अलग नीति- नवरत्न, मिनीरत्न एवं महारत्न की नीति को अपनाया गया। इस नीति के माध्यम से इन इकाईयों को अधिक से अधिक स्वायत्तता तथा विशेष सुविधाएं देने की घोषणा की गयी।

उदारीकरण नीति के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति एक सबसे प्रमुख परिवर्तन यह हुआ कि सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण की प्रक्रिया को प्रारम्भ किया गया। इसके लिए विनिवेश की प्रक्रिया को अपनाया गया। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत सार्वजनिक उपक्रमों के पूँजी को निजी संस्थाओं के हाथों में बेचा गया। इस प्रक्रिया को अपनाने के पीछे सरकार का यह विश्वास था कि इससे जहाँ एक तरफ उसे संसाधन प्राप्त होगें दूसरी तरफ राजकोषीय भार में कमी आयेगी। परन्तु भारत में विनिवेश प्रक्रिया के सन्दर्भ में एक चिन्तनीय पहलू यह रहा कि इसकी प्रगति संतोषजनक नहीं रही है। इतना ही नही जिन इकाईयों के विनिवेश किये गये उनमें सरकार को काफी घाटा उठाना पड़ा।

4.10 शब्दावली

- **आरक्षित सूची-** इसका अभिप्राय उन 17 उद्योगों की सूची से है जो सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 1956 की औद्योगिक नीति में आरक्षित कर दिये गये थे।
- **बी.आई.एफ.आर.-** यह एक ऐसी परिषद होती है जिसे व्यावसायिक इकाईयों के रुग्णता की जॉच एवं उनके लिए आवश्यक उपाय अपनाने के लिए संस्तुत करने के सन्दर्भ में एक हद तक न्यायायिक अधिकार प्राप्त होते हैं।
- **संस्तुति-** इसका अभिप्राय होता है सिफारिश करना अर्थात् राय देना।
- **स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना-** यह एक ऐसी योजना है जिसमें सरकार अपने कर्मचारियों को समय से पहले ही 'अवकाश' प्राप्त करने अर्थात् रिटायर होने के लिए प्रोत्साहित करती है और बदले में कुछ क्षतिपूर्ति का भी प्रावधान करती है।
- **अतिरिक्त श्रम शक्ति की समस्या -** इसका अभिप्राय आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों की समस्या से होता है।
- **निबल लाभ-** व्यावसायिक इकाईयों के कुल प्राप्तियों में से विभिन्न देनदारियों (जैसे- कर का भुगतान) को निकालने के बाद बचे प्राप्तियों को निबल लाभ कहा जाता है।
- **मालियत-** इसका अभिप्राय परिसम्पत्तियों के मूल्य से होता है।
- **समाजवादी अर्थव्यवस्था-** इसका अभिप्राय ऐसी अर्थव्यवस्था से होता है जिसमें सभी प्रकार की आर्थिक क्रयाएं सरकार के नियन्त्रण में होती हैं तथा निजी लाभ का कोई अस्तित्व नहीं होता है।
- **अनिवासी भारतीय-** इसका अभिप्राय ऐसे भारतीय नागरिकों से होता है जो विदेश में निवास करते हैं तथा वहीं अपने व्यवसाय का सम्पादन करते हैं।
- **स्टॉक एक्सचेंज पर सूचियन-** शेयर बाजार की क्रयाओं में शामिल होने के लिए व्ययवसायिक इकाईयों को आधिकारिक औपचारिकताओं के माध्यम से सूचीबद्ध होना पड़ता है। इस प्रक्रिया को ही स्टॉक एक्सचेंज पर सूचियन कहा जाता है।
- **काम्पट्रोलर और ऑडिटर जनरल-** इसका अभिप्राय एक ऐसी संस्था से होता है जो सरकार द्वारा किये गये सभी प्रकार के परिसम्पत्तियों के क्रय-विक्रय का वित्तीय अनुशासन की दृष्टि से जाँच करना अर्थात् 'ऑडिट' करना होता है।
- **न्यूनतम बिक्री मूल्य-** सामान्य रुप से इस शब्द का अभिप्राय उस न्यूनतम कीमत से होता है जो किसी भी 'नीलामी' प्रक्रिया में पहली बोली के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।
- **निजीकृत सरकारी उपक्रम-** इसका अभिप्राय इन सार्वजनिक इकाईयों से है जिनमें पहले से ही निजीकरण अर्थात् विनिवेश की प्रक्रिया प्रारम्भ की जा चुकी हो।

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. असत्य	2. असत्य	3. सत्य
4. असत्य	5. सत्य	

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भारत सरकार: ***पब्लिक एन्टरप्राइजेज रिपोर्ट***, 2008-09।
- भारत सरकार: ***आर्थिक सर्वेक्षण*** 2010।
- Mishra and Puri (2011): ***Indian Economy*** *(29th edition) pp 414*, Himalaya Publication, New Delhi.

- B.P. Mathur (2006): *Audit Repors on Disinvestment,* Economic and Political Weekly, December 16.
- Anil K. Mukhija (2006): ***Privatisation in India,*** Economic and Political Weekly, May 20.
- C.P. Chanrashekhar and Jayanti Ghosh (2002): ***A Decade of Neoliberal Economic Reforms in India,*** New Delhi.
- Bimal Jalan (1996): ***India's Economic Policy,*** New Delhi.
- Sunil Mani (1995): ***Economic Liberalisation and Industrial Sector,*** Economic and Political Weekly, May 27.
- I.J. Singh, G Jefferson and Thomas Rawski (1994): ***Competition is the Key,*** The Economic Times, August 1.

4.13 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Mishra and Puri (2011): ***Indian Economy***, Himalaya Publication, New Delhi.
- Dutt and Sundaram (2010): ***Indian Economy***, S. Chand Publication, New Delhi.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, NewDelhi.
- मिश्रा एवं पुरी (2011) ***भारतीय अर्थव्यवस्था***, हिमालया पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।
- दत्त एवं सुन्दरम (2010) ***भारतीय अर्थव्यवस्था***, एस. चांद पब्लिकेशन, नयी दिल्ली

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति किए गए नीतिगत परिवर्तनों की विवेचना कीजिए।
2. निजीकरण की नीति से आप क्या समझते हैं? भारत में अपनाए गए निजीकरण प्रक्रिया की प्रगति को स्पष्ट कीजिए।
3. विनिवेश से आपका क्या अभिप्राय है? इस प्रक्रिया के लिए अपनायी जाने वाली विभिन्न विधियों की विवेचना करते हुए इस सन्दर्भ में भारत में अपनायी गया विधियों का उल्लेख कीजिए।
4. विनिवेश प्रक्रिया के अर्थ को स्पष्ट करते हुए भारत में इसकी प्रगति की विवेचना कीजिए। क्या आप इस प्रगति से संतुष्ट हैं? अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिए।
5. भारत में विनिवेश प्रक्रिया के संचालन एवं औचित्य पर एक समीक्षात्मक विवेचना प्रस्तुत काजिए।

इकाई-5 औद्योगिक एकीकरण एवं गठजोड़ - विलय और समायोजन, औद्योगिक एकीकरण के प्रभाव

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 औद्योगिक संयोजन का आशय एवं स्वरुप
5.4 औद्योगिक एकीकरण, संविलयन तथा अधिग्रहण
5.5 औद्योगिक एकीकरण एवं संविलयन के प्रकार
5.6 औद्योगिक संयोजन के कारण
5.7 औद्योगिक संयोजन के प्रभाव
5.8 अभ्यास प्रश्न
5.9 सारांश
5.10 शब्दावली
5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.13 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

एक औद्योगिक जगत के अन्तर्गत व्यावसायिक इकाईयां अर्थात् फर्में अपने उद्धेश्यों की प्राप्ति हेतु अनेक क्रियाकलापों का संपादन करती रहती हैं। विशेषकर फर्में अपने दीर्घकालीन उद्धेश्यों के प्राप्ति हेतु कुछ विशेष क्रियाकलापों को संपादित करती हैं। इन्हीं क्रियाकलापों में से एक क्रिया है औद्योगिक संयोजन की क्रिया। इसलिए औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत औद्योगिक संयोजन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं के बारे में अध्ययन करना आवश्यक होता है। इस इकाई के अन्तर्गत इन्हीं पहलुओं को स्पष्ट किया जा रहा है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ बता सकेंगे कि औद्योगिक संयोजन का आशय क्या होता है।
- ✓ समझा सकेंगे कि औद्योगिक संयोजन की क्रिया कितने प्रकार की होती है।
- ✓ औद्योगिक एकीकरण, संविलयन तथा अधिग्रहण की क्रियाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ✓ औद्योगिक एकीकरण, संविलयन तथा अधिग्रहण के विभिन्न स्वरुपों को समझा सकेंगे।
- ✓ औद्योगिक संयोजन के उत्पन्न होने वाले प्रभावों को समझा सकेंगे।

5.3 औद्योगिक संयोजन का आशय एवं स्वरुप

औद्योगिक संयोजन का अभिप्राय फर्मों की उस क्रिया से होता है जिसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक फर्में अपने व्यासायिक क्रियाओं, परिसम्पत्तियों, प्रबन्धतन्त्र एवं संसाधनों को परस्पर मिलाकर व्यवसाय के आकार का विस्तार करती है। वस्तुत: एक औद्योगिक जगत के अन्तर्गत संपादित होने वाली इस क्रिया के विभिन्न स्वरुप हो सकते हैं। इन विभिन्न स्वरुपों में प्रमुख रुप हैं - औद्योगिक एकीकरण, संविलयन तथा अधिग्रहण। आगे इन विभिन्न स्वरुपों को विस्तार से स्पष्ट किया जा रहा है।

5.4 औद्योगिक एकीकरण, संविलयन तथा अधिग्रहण

औद्योगिक संयोजन की वह क्रिया जिसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक फर्में परस्पर मिलकर एक नयी फर्म का सृजन करती हैं तो इस क्रिया को औद्योगिक एकीकरण के नाम से जाना जाता है। औद्योगिक जगत के अन्तर्गत यह क्रिया एक दूसरे नाम से भी जानी जाती है और यह है ‘समेकन’। इस प्रक्रिया के परणामस्वरुप एकीकरण की प्रक्रिया में शामिल फर्में अपना मूल अस्तित्व खो देती हैं तथा उनका अस्तित्व एक ऐसी फर्म में समावेशित हो जाता है जो पहले अस्तित्व में थी ही नही। उदाहरण के लिए यदि ‘क’ एवं ‘ख’ फर्मों द्वारा औद्योगिक संयोजन की क्रिया को इस प्रकार से संपादित किया जाए कि इस प्रक्रिया के परिणामस्वरुप ‘क’ एवं ‘ख’ फर्मों का अस्तित्व समाप्त हो जाए और एक नई फर्म ‘ग’ की स्थापना हो जाए तो यह प्रक्रिया ‘एकीकरण’ अर्थात् ‘समेकन’ कहलाएगी।

संविलयन की प्रक्रिया भी औद्योगिक संयोजन का ही एक रुप होता है क्योंकि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत भी दो या दो से अधिक फर्में आपस में एकीकृत होती हैं। परन्तु इस प्रकार की प्रक्रिया के अन्तर्गत सम्बन्धित फर्मों में से कोई एक फर्म अपना अस्तित्व बनाए रखती है जबकि अन्य फर्म उसमें विलीन हो जाती है। उदाहरण के लिए यदि दो फर्मों ‘ख’ एवं ‘ग’ फर्में एक तीसरी फर्म ‘क’ से इस प्रकार मिलती हैं कि फर्म ‘क’ का तो अस्तित्व बना रहता है परन्तु ‘ख’ एवं ‘ग’ फर्मों का अस्तित्व पूर्णत: समाप्त हो जाता है तो ऐसी दशा में फर्मों की संयोजन की यह प्रक्रिया ‘संविलयन’ कहलायेगी। संयोजन के इस स्वरुप की एक प्रमुख विशेषता यह भी होती है कि विलीन होने वाली फर्मों की कुल सम्पत्तियां एवं देनदारियां विलय करने वाली फर्म को हस्तानान्तरित हो जाती हैं। जैसे कि उपरोक्त उदाहरण में ‘ख’ एवं ‘ग’ फर्मों की कुल परिसम्पत्तियां तथा देनदारियां ‘क’ फर्म को हस्तान्तरित हो जाएंगी। वस्तुत: व्यापक रुप से देखा जाए तो संविलयन की प्रक्रिया कम्पनी की पुनर्गठन क्रिया का ही एक रूप होता है।

अधिग्रहण का अभिप्राय फर्मों के संयोजन की उस क्रिया से होता है जिसके अन्तर्गत किसी एक फर्म द्वारा किसी अन्य फर्म के इतने अधिक अंशों को खरीद लिया जाए कि क्रेता फर्म को दूसरी फर्म पर पर्याप्त

नियन्त्रण प्राप्त हो जाए। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत अधिग्रहीत फर्म अपना पृथक् अस्तित्व भी बनाए रखती है और उसके प्रबन्धतन्त्र का ढांचा भी लगभग पहले जैसा ही रहता है। इस प्रकार के संयोजन के फलस्वरुप केवल इतना परिवर्तन होता है कि अधिग्रहीत फर्म के संचालक मण्डल में क्रेता फर्म को यथोचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है। स्वामित्व में पर्याप्त भागीदारी प्राप्त हो जाने से क्रेता फर्म को अधिग्रहीत फर्म के प्रबन्धतन्त्र में अधिक भाग लेने का अवसर प्राप्त हो जाता है क्योंकि क्रेता फर्म के कुछ व्यक्ति अधिग्रहीत फर्म के संचालक मण्डल में शामिल हो जाते हैं और सामान्य तौर पर प्रबन्धतन्त्र में मुख्य संचालक के पद पर भी क्रेता फर्म का व्यक्ति ही नियुक्त या निर्वाचित हो जाता है।

वस्तुत: उपरोक्त तीनों प्रक्रियाएं अर्थात्- 'एकीकरण', 'संवियलन' तथा 'अधिग्रहण' औद्योगिक संयोजनों के अन्तिम रूप होते हैं तथा आर्थिक प्रभावों की दृष्टिकोण से तीनों स्वरुप समान होते हैं। इसीलिए ये तीनों प्रक्रियाएं सामान्य तौर पर एक ही अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं।

5.5 औद्योगिक एकीकरण एवं संविलयन के प्रकार

उपरोक्त पंक्तियों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि एकीकरण, संविलयन एवं अधिग्रहण औद्योगिक संयोजनों के अन्तिम रूप होते हैं तथा ये तीनों प्रक्रियाएं सामान्य तौर पर एक ही अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं। इसलिए जहाँ तक औद्योगिक संयोजन के प्रकार का प्रश्न है तो इसके लिए प्रमुखत: संविलयन तथा एकीकरण के विभिन्न स्वरुपों के माध्यम से समझा जा सकता है। संविलयन के मुख्य रुप से दो स्वरुप होते है - समतल संविलयन तथा लम्बीय संविलयन। इनके अतिरिक्त एकीकरण अर्थात् समेकन की क्रिया के तीन रुप होते हैं - पार्श्व समेकन, विकर्णीय समेकन तथा चक्रीय समेकन।

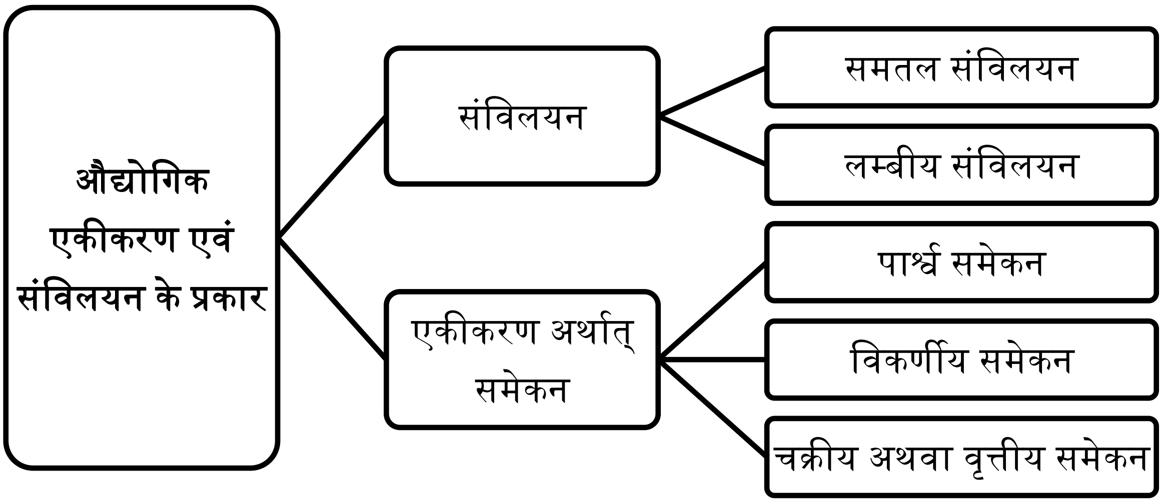

निम्न पंक्तियों में इन पाँचों प्रकार के स्वरुपों का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है।

1. **समतल संविलयन** - इस प्रकार के संविलयन का अभिप्राय उस प्रक्रिया से होता है जिसमें संविलयन की क्रिया में शामिल होने वाली सभी फर्में एक ही प्रकार के व्यवसाय अथवा एक ही प्रकार के उद्योग से संबन्धित होती हैं। उदाहरण के लिए, यदि विभिन्न औद्योगिक इकाईयां, जो स्टील का उत्पादन करती है, आपस में विलय कर लें तो इस प्रकार का संविलयन 'समतल संविलयन' कहा जायेगा। इसी प्रकार विभिन्न कपड़ा उद्योग से सम्बन्धित फर्मों के बीच संविलयन की क्रिया 'समतल संविलयन' कहलायेगी। औद्योगिक जगत के अन्तर्गत इस प्रकार के संविलयन कई अन्य नामों से भी प्रचलित हैं जिनमें प्रमुख हैं – 'क्षैतिज संविलयन' तथा 'व्यापारिक संविलयन'।
2. **लम्बीय संविलयन** - जब संविलयन की क्रिया में शामिल होने वाली विभिन्न फर्में भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवसाय अथवा उद्योग से संबन्धित होती हैं तो इस प्रकार के संविलयन को 'लम्बीय संविलयन' के नाम से जाना जाता है। उदाहरण के लिए यदि एक कच्चा लोहा बनाने वाली फर्म स्टील बनाने वाली फर्म के साथ विलय करती है तो इस प्रकार का संविलयन 'लम्बीय संविलयन' कहलायेगा।

वस्तुत: इस प्रकार का संविलयन ऐसी परिस्थिति में अपनाया जाता है जब संविलयन प्रक्रिया में शामिल होने वाली विभिन्न औद्योगिक इकाईयां इस प्रकार हों कि एक इकाई द्वारा उत्पादित माल उत्पादित दूसरी इकाई द्वारा कच्चे माल के रूप में प्रयोग में लायी जाती हो तथा दूसरी इकाई द्वारा निर्मित माल तीसरी इकाई द्वारा कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त किया जाता हो। औद्योगिक जगत के अन्तर्गत इस प्रकार के संविलयन को अन्य नामों से भी सम्बोधित किया जाता है जैसे- 'उदग्र संविलयन', 'शीर्ष संविलयन' अथवा 'क्रमिक संविलयन'।

वस्तुत: इस प्रकार के संविलयन के भी दो रूप हो सकते हैं- प्रतिगामी संविलयन तथा अग्रगामी संविलयन। जब एक ऐसी औद्योगिक इकाई जो उन इकाईयों के साथ संविलयन की स्थापना करती है जो उस इकाई के लिए आवश्यक कच्चे माल की आपूर्ति करता हो तो इस प्रकार के संविलयन की क्रिया को 'प्रतिगामी संविलयन' कहा जायेगा। वस्तुत: इस प्रकार के संविलयन आवश्यक कच्चे माल की आपूर्ति को सुविधाजनक एवं सुनिश्चित करने के उद्देश्य से अपनाया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि एक बेकरी का उत्पादन करने वाली फर्म आटे के मिल के साथ विलय करती है तो यह क्रिया प्रतिगामी संविलयन कहलायेगी।

दूसरी तरफ जब एक कच्चे माल अथवा अर्द्धनिर्मित माल का उत्पादन करने वाली औद्योगिक इकाईयां उस इकाई के साथ संविलयन की स्थापना करती है जो उन इकाईयों द्वारा निर्मित उत्पादों का प्रयोग एक निर्मित उत्पाद बनाने के लिए करता हो तो इस प्रकार के संविलयन की क्रिया को 'अग्रगामी संविलयन' कहा जायेगा। वस्तुत: अग्रगामी संविलयन का प्रमुख उद्देश्य बाजार पर नियन्त्रण स्थापित करना होता है जिससे कि उत्पादित माल की आपूर्ति सरलता से किया जा सके। उदाहरण के लिए यदि एक आटा बनाने वाली मिल बेकरी का उत्पादन करने वाली फर्म के साथ विलय करती है तो यह क्रिया अग्रगामी संविलयन कहलायेगी।

3. **पार्श्व-समेकन -** यदि विभिन्न वस्तुओं अथवा सेवाओं का उत्पादन करने वाली व्यावसायिक इकाईयों का समेकन इस आधार पर किया जाए कि इन विभिन्न इकाईयों के बीच परस्पर कोई प्रतिस्पर्द्धा न हो तथा इन विभिन्न इकाईयों के उत्पाद ऐसे हों जिनका उद्भव कोई एक स्रोत उत्पाद या एक स्रोत तकनीक हो तो इस प्रकार का समेकन 'पार्श्व समेकन' कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि चमड़े से निर्मित विभिन्न उत्पादों जैसे- जूता, पर्स, बैग, बेल्ट, जैकेट इत्यादि बनाने वाली विभिन्न फर्में आपस में संयोजित होती हैं तो इस प्रकार का समेकन पार्श्व समेकन कहलायेगा क्योंकि इन सभी उत्पादों का उद्भव एक ही स्रोत उत्पाद चमड़ा से होता है। इस प्रकार के समेकन अपने आप में दो रुपों में हो सकते है - 'केन्द्रीकृत पार्श्व समेकन' तथा 'विकेन्द्रीकृत पार्श्व समेकन'।

'केन्द्रीकृत पार्श्व समेकन' का तात्पर्य उस प्रक्रिया से होता है जिसमें समेकित करने वाली इकाईयां ऐसी हों जिनके उत्पाद किसी एक उत्पाद के उत्पादन में ही प्रयोग कर लिये जाए। जैसे यदि एक बियरिंग बनाने वाली इकाई तथा एक टायर बनाने वाली इकाई एक ऑटोमोबाइल बनाने वाली कम्पनी के साथ समेकन करें तो यह समेकन 'केन्द्रीकृत पार्श्व समेकन' कहलायेगा क्योंकि इस स्थिति में 'टायर' तथा 'बियरिंग' एक ही उत्पाद 'ऑटोमोबाइल' पर केन्द्रित हो रहे हैं।

दूसरी तरफ जब ऐसी अनेक इकाइयों को किसी ऐसी बड़ी उत्पादक इकाई के साथ समेकित किया जाता है जिसके द्वारा निर्मित माल उन अनेक इकाइयों में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन के लिए प्रमुख कच्चे माल के रूप में उपयोग में लाया जाए तो इस प्रकार का समेकन 'विकेन्द्रीकृत पार्श्व समेकन' कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी प्लास्टिक उत्पादक इकाई के साथ प्लास्टिक फर्नीचर, प्लास्टिक की बाल्टी, प्लास्टिक के जूते इत्यादि का उत्पादन करने वाली इकाइयों को समेकित कर लिया जाए तो इस प्रकार का समेकन 'विकेन्द्रीकृत पार्श्व समेकन' कहलायेगा।

4. **विकर्णीय समेकन -** जब विभिन्न फर्में किसी एक 'प्रमुख उत्पाद' बनाने वाली फर्म के साथ इस रुप में समेकित हों कि विभिन्न फर्मों के उत्पाद भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवसाय अथवा उद्योग से संबन्धित होती हों तथा इन विभिन्न इकाईयों के उत्पाद ऐसे हों जो किसी एक प्रमुख उत्पाद के लिए सहायक वस्तु अथवा सेवा के रुप में आवश्यक होती हों तो इस प्रकार के समेकन को 'विकर्णीय समेकन' कहा

जाता है। उदाहरण के लिए इस्पात की बड़ी उत्पादक इकाइयां कोयला एवं मैंगनीज का उत्पादन करने वाली कम्पनियों के साथ समेकन कर लेती हैं। इसी प्रकार कुछ बड़े निर्माता अपनी खुद की परिवहन सेवाएं तथा विद्युत सेवाएं भी सहायक इकाइयों के रूप में स्थापित कर लेते हैं। ये उदाहरण विकर्णीय समेकन के स्वरुप को व्यक्त करते हैं। औद्योगिक जगत के अन्तर्गत इसे एक और नाम- सेवा समेकन के नाम से भी जाना जाता है।

5. **चक्रीय अथवा वृत्तीय समेकन -** अभी तक संविलयनों अथवा समेकनों के जितने स्वरुपों की विवेचना की गयी उन सबकी यह विशेषता थी कि विलय होने वाले अथवा समेकित होने वाले इकाईयों के उत्पादों के बीच कोई न कोई सम्बन्ध होता है। परन्तु औद्योगिक जगत के अन्तर्गत इस प्रकार के भी संविलयन अथवा समेकन देखने को मिलते हैं जिसके अन्तर्गत समेकित होने वाले इकाईयों के उत्पाद एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं तथा इनके बीच किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता है। इस प्रकार के समेकन को ही 'चक्रीय' अथवा 'वृत्तीय समेकन' कहा जाता है। उदाहरण के लिए यदि एक सीमेण्ट फैक्टरी, चाय बागान, चीनी मिल, सूती वस्त्र मिल, वनस्पति तेल मिल एक सामान्य केन्द्रीय संगठन के साथ संयोजित हो जाती है तो इसे चक्रीय या वृत्तीय समेकन कहा जायेगा। इस प्रकार के समेकन को कई अन्य नामों से भी जाना जाता जैसे - 'एकीकृत समेकन' अथवा 'मिश्रित समेकन'।

5.6 औद्योगिक संयोजन के कारण

औद्योगिक जगत के अन्तर्गत औद्योगिक इकाईयों द्वारा विभिन्न प्रकार के औद्योगिक संयोजन की क्रियाओं को अपनाये जाने के पीछे व्यापक रुप में चार कारण होते है। ***पहला*** कारण है लाभदायिता की उच्च दर को प्राप्त करना, ***दूसरा*** कारण है स्थिरता को बनाये रखना; जिसका अभिप्राय है कि बाजार में जोखिम एवं अनिश्चितताओं को कम करना, ***तीसरा*** कारण है संवृद्धि की उच्च दर को प्राप्त करना तथा ***चौथा*** कारण यह होता है कि बाजार शक्ति में वृद्धि करना। यहाँ एक बात उल्लेख कर देना आवश्यक है कि यह कोई आवश्यक नहीं है कि हर प्रकार के संयोजन क्रियाओं में ये सभी उद्देश्य एक साथ लक्षित किये जाए। वस्तुत: प्रत्येक प्रकार के संयोजन क्रियाओं के अपने-अपने विशिष्ट उद्देश्य होते हैं जिनके माध्यम से औद्योगिक इकाईयां उपरोक्त व्यापक उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करती हैं। निम्न पंक्तियों में विभिन्न प्रकार के संयोजन क्रियाओं के पीछे निहित उद्देश्यों को स्पष्ट किया जा रहा है।

1. **समतल संविलयन के कारण -** इस प्रकार से संयोजन क्रिया को अपनाये जाने के पीछे निम्न कारण होते हैं -
   क. उत्पादन के बड़े पैमाने की बाह्य मितव्ययिताओं को प्राप्त करना जिससे कि लागतों में बचत किया जा सके और लाभदायिता में वृद्धि किया जा सके।
   ख. विभिन्न इकाइयों में परस्पर होने वाली निरर्थक प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करना जिससे कि बाजार शक्ति में वृद्धि किया जा सके।
   ग. उत्पादन की मात्रा पर नियन्त्रण करके मांग एवं पूर्ति में सामंजस्य स्थापित करना जिससे कि बाजार की अनिश्चितताओं को कम किया जा सके और व्यवसाय में स्थिरता बना रहे।
   घ. गुणवत्ता में सुधार एवं मूल्यों में कमी- इस प्रकार के संयोजन से औद्योगिक इकाईयां एक उत्पाद के उत्पादन की दुहरी व्यवस्थाओं को समाप्ति करके विभिन्न प्रकार के होने वाले अपव्ययों की रोक सकती हैं। ऐसी समेकित इकाईयां यदि चाहें तो उपने उत्पाद को कम मूल्य पर एवं परिष्कृत किस्म में उपभोक्ताओं के लिए आपूर्ति कर सकती हैं।
2. **लम्बीय संविलयन के कारण -** इस प्रकार से संयोजन क्रिया को अपनाये जाने के पीछे निम्न कारण हो सकते हैं-
   क. कच्चे माल की आपूर्ति को सुनिश्चित करना एवं कच्चे माल की आपूर्ति के संदर्भ में दूसरे फर्मों पर निर्भरता को समाप्त करना। वस्तुत: संयोजन का यह उद्देश्य 'प्रतिगामी संविलयन' के अन्तर्गत

प्राप्त होता है। इस प्रकार के संयोजन से समेकित इकाइयों को कच्चे माल की पूर्ति की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है।

ख. अपने उत्पाद के लिए बाजार को सुनिश्चित करना। वस्तुत: संयोजन का यह उद्देश्य 'अग्रगामी संविलयन' के अन्तर्गत निहित होता है। ऐसे संयोजन के अन्तर्गत सम्मिलित समस्त इकाइयों को उनके द्वारा निर्मित माल की खपत के लिए संगठन के अन्दर ही बाजार मिल जाता है। केवल अन्तिम छोर पर स्थित इकाई को ही अंतिम उत्पाद की खपत ही खुले बाजार में करनी पड़ती है।

ग. इस प्रकार के संयोजन को अपनाने के पीछे यह भी कारण हो सकता है कि अनेक प्रकार के उत्पादों का उत्पादन दुहरी व्यवस्थाओं के स्थान पर एक संयुक्त व्यवस्था के अन्तर्गत किया जाए जिससे कि अनेक प्रकार के उपरि-लागतों, जैसे- परिवहन लागत, विक्रय लागत, बिचौलियों पर व्यय, भण्डारण लागत इत्यादि में बचत किया जा सके और लाभदायिता में वृद्धि किया जा सके। वस्तुत: इस प्रकार के संयोजन के फलस्वरुप समेकित इकाईयों में अन्तिम इकाई को छोड़कर अन्य सभी इकाइयों के उपरि-लागतों में बचत प्राप्त होती जाती है।

घ. इस प्रकार के संयोजन को अपनाने के पीछे यह भी कारण हो सकता है कि 'व्यवसाय में होने वाले उतार-चढ़ाव' का सामना किया जा सके। व्यवहार में यह पाया जाता है कि आर्थिक मन्दी की दशा में इस प्रकार समेकित इकाइयां अन्य स्वतन्त्र इकाइयों की तुलना में अधिक कुशलता के साथ संकटों का सामना करने में सक्षम होती हैं।

ड. इस प्रकार के संयोजन को अपनाने के पीछे यह भी कारण हो सकता है कि उत्पादन की गुणवता में सुधार किया जा सके। इसका कारण यह है कि इस प्रकार के संयोजन में अन्तिम इकाई को छोड़कर अन्य सभी इकाईयां अपने संगठन में खपत के लिए ही माल तैयार करती है। अत: वे उत्पादन की गुणवत्ता की ओर विषेश ध्यान दे सकती हैं।

3. पार्श्व समेकन के कारण - इस प्रकार से संयोजन क्रिया को अपनाये जाने के पीछे निम्न कारण होते हैं-

क. उपलब्ध संसाधनों जैसे- प्रबन्धकीय क्षमता, अनुसन्धान क्षमता, विशिष्ट मशीनों इत्यादि का बेहतर प्रयोग करना। क्योकि इस प्रकार के संयोजन के अन्तर्गत उत्पादित की जाने वाली समस्त उत्पादों का उद्भव कोई एक स्रोत उत्पाद या तकनीक होता है इसलिए इस प्रकार के संयोजन मे उक्त उद्देश्य को प्राप्त करने की संभावना निहित होती है।

ख. बाजार माँग में होने वाले उतार-चढ़ाव का सामना करना।

ग. बाजार-शक्ति में वृद्धि करना तथा अपनी प्रतिस्पर्धा शक्ति में वृद्धि करना।

घ. संवृद्धि की उच्च दर को प्राप्त करना।

4. विकर्णीय समेकन के कारण - चूँकि इस प्रकार के संयोजन के अन्तर्गत समेकित इकाईयों के विभिन्न उत्पाद अथवा सेवा एक इकाई के प्रमुख उत्पाद के लिए सहायक वस्तु अथवा सेवा के रुप में प्रयोग की जाती है इसलिए इस प्रकार के संयोजन का मुख्य उद्देश्य विभिन्न उत्पादों एवं सेवाओं की आपूर्ति के सन्दर्भ दूसरे फर्मों पर निर्भरता को कम करना तथा बाजार अनिश्चितताओं को कम करना होता है।

5. चक्रीय अथवा वृत्तीय समेकन के कारण - चूँकि इस प्रकार के संयोजन में एक केन्द्रीय संगठन के अन्तर्गत अनेक भिन्न-भिन्न प्रकृति की वस्तुओं अथवा सेवाओं का उत्पादन किया जाता है इसलिए इस प्रकार के संयोजन के अन्तर्गत किसी एक उत्पाद में होने वाले घाटे को अन्य उत्पादों में प्राप्त होने वाले लाभों से पूरा किया जा सकता है। इसीलिए इस प्रकार के समेकन को अपनाने के पीछे प्रमुख कारण 'व्यवसाय में स्थिरता' को बनाये रखना होता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के संयोजन में कुछ अन्य कारण भी निहित हो सकते हैं जैसे- 'बाजार शक्ति' एवं 'व्यवसाय के आकार' में वृद्धि करना।

उपरोक्त वर्णित कारणों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के औद्योगिक संयोजनों को अपनाने के पीछे एक प्रमुख कारण- 'स्टॉक मार्केट' अर्थात् 'शेयर बाजार' में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना होता है। इस प्रकार के

कारण मुख्य रुप से 'संविलयन' तथा 'अधिग्रहण' की क्रियाओं की स्थिति में निहित होते हैं क्योंकि इस प्रकार के संयोजन के माध्यम से व्यावसायिक इकाईयां अपने अंशों अर्थात् शेयरों के कीमतों में सुधार कर सकती हैं तथा समेकित इकाईयों के परिसम्पत्तियों का ठीक-ठीक मूल्यांकन हो सकता है।

5.7 औद्योगिक संयोजन के प्रभाव

औद्योगिक इकाईयों के प्रत्येक क्रिया-कलाप का इन इकाईयों के निष्पादन पर तो प्रभाव उत्पन्न होता ही है साथ ही साथ सम्बन्धित उद्योग एवं सम्पूर्ण औद्योगिक जगत पर भी कुछ न कुछ प्रभाव उत्पन्न होता है। चूँकि 'संयोजन' की क्रिया भी औद्योगिक इकाईयों की एक क्रिया-कलाप होती है इसलिए प्रश्न यह उठता है कि औद्योगिक इकाईयों के इस क्रिया का क्या प्रभाव उत्पन्न होता है? वस्तुत: 'संयोजन' क्रिया के एक तरफ कुछ अनुकूल प्रभाव उत्पन्न होते हैं तो दूसरी तरफ प्रतिकुल प्रभाव भी उत्पन्न होते हैं। ये प्रभाव निम्नवत् हैं-

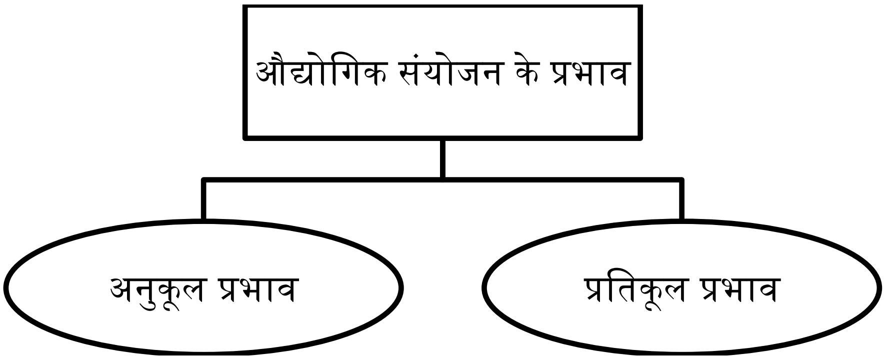

<u>अनुकूल प्रभाव</u> - औद्योगिक संयोजनों के फलस्वरुप समेकित इकाईयों के उत्पादन संरचना में परिवर्तन होने के साथ-साथ संगठनात्मक सुधार भी होता है जिससे अन्तत: इन इकाईयों के लाभ एवं लाभदायिता, कुशलता, प्रतिस्पर्धा शक्ति इत्यादि में भी सुधार हो सकता है। इसका कारण यह है कि औद्योगिक संयोजनों के निम्नलिखित अनुकूल प्रभाव उत्पन्न होते हैं -

1. उत्पादन का स्तर 'बड़े पैमाने' पर होने के कारण उत्पादन प्रक्रिया में 'विशिष्टीकरण' तथा 'श्रम का विभाजन' को अपनाया जाता है। इसके फलस्वरुप अनेक प्रकार की 'बाह्य मितव्ययिताएं' प्राप्त होती है जो समेकित इकाईयों के कार्यकुशलता तथा लाभदायिता में वृद्धि करती है।
2. संयोजन क्रिया के फलस्वरुप संगठन का आकार बड़ा होता है इसके परिणामस्वरुप समेकित इकाई को उच्चस्तीय प्रबन्ध कुशलता का लाभ मिलता है और अन्तत: इकाई के कार्य कुशलता में वृद्धि होती है।
3. विभिन्न औद्योगिक इकाईयों के समेकन के कारण वित्तीय संसाधनों को समन्वित रुप से प्राप्त करने के कारण भी मितव्ययिताएं प्राप्त होती हैं जिससें वित्तीय संसाधन प्राप्त करने की लागत में कमी आती है। इसके फलस्वरुप इन इकाईयों के लाभ एवं लाभदायिता पर अनुकूल प्रभाव उत्पन्न होता है।
4. समेकन के फलस्वरुप उत्पादन की दोहरी व्यवस्था समाप्त होने के कारण अनेक प्रकार की लागतों जैसे- परिवहन, विक्रय, विज्ञापन, भण्डारण इत्यादि लागतों में बचत प्राप्त होती है। इसके अलावा इसके कारण शोध एवं अनुसन्धान क्रियाओं पर होने वाले व्ययों में भी कमी होती है। इसके परिणामस्वरुप समेकित इकाईयों के लाभ एवं लाभदायिता पर अनुकूल प्रभाव उत्पन्न होता है।
5. संयोजन की क्रिया के फलस्वरुप समेकित फर्मों के बीच होने वाली निरर्थक प्रतिस्पर्धा की समाप्ति एवं पारस्परिक सहयोग की भावना का विकास होता है।
6. संयोजन की क्रिया के फलस्वरुप दुर्बल एवं छोटी इकाईयां एक संगठन के अधीन कार्य करती हैं इसलिए आर्थिक शिथिलता एवं मन्दी की अवधि में भी इन इकाइयों के लिए अपना अस्तित्व

बनाये रखना संभव हो जाता है जबकि संयोजन न होने की स्थिति में ऐसा करने में कठिनायी का सामना करना पड़ता है।

7. संगठन का आकार बड़ा होने के कारण बाजार की अनिश्चितताओं एवं जाखिमों का सामना करना आसान हो जाता है और व्यावसायिक अस्थिरता का सामना करना भी सरल हो जाता है।
8. समेकित इकाईयों के लिए संगठित एवं शक्तिशाली श्रम-संघों के अनुचित दबावों का मुकाबला करना आसान हो जाता है।
9. इन इकाईयों के लिए विदेशी पूँजी एवं तकनीकी प्राप्त करने में आसानी होती है।
10. संयोजन प्रक्रिया के कारण सम्पूर्ण औद्योगिक जगत में पूंजी विनियोग तथा आर्थिक संवृद्धि की संभावना बढ़ जाती है।
11. उत्पादन प्रक्रिया में विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन होने के कारण उत्पाद के गुणवत्ता में भी सुधार होता है जिससे देश के उपभोक्ताओं को या औद्योगिक जगत को अच्छे किस्म के उत्पाद प्राप्त होते हैं।

<u>प्रतिकूल प्रभाव</u> जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि औद्योगिक संयोजनों के अनुकूल प्रभावों के साथ-साथ अनेक प्रतिकूल प्रभाव भी उत्पन्न हो सकते हैं। संयोजन क्रिया के प्रतिकूल प्रभाव निम्नलिखित हो सकते हैं -

1. इन इकाईयों के व्यवसाय के आकार में वृद्धि होने के कारण एक निश्चित आकार, जिसे अनुकूलतम आकार कहा जाता है, के बाद आकार में और अधिक वृद्धि होने पर प्रबन्धन की कठिनाइयां एवं अमितव्ययिताओं की समस्या उत्पन्न होने लगती हैं जिससे इन इकाइयों की कुशलता में गिरावट होने की सम्भावनाएं उत्पन्न हो जाती हैं। इतना ही नहीं प्रतिस्पर्द्धा की समाप्ति के कारण इन इकाईयों में दक्षता में निरन्तर सुधार के प्रति उपेक्षा की प्रवृत्ति विकसित होने लगती है जिससे समय के साथ इन इकाईयों की कुशलता में कमी आ सकती है।
2. इस क्रिया के परिणामस्वरुप औद्योगिक जगत के अन्तर्गत एकाधिकारी प्रवृत्तियों के पनपने की संभवनाएं प्रबल हो जाती है।
3. वस्तुओं एवं कच्चे माल की आपूर्ति पर नियन्त्रण के कारण समेकित इकाईयां इन उत्पादों का कृत्रिम अभाव उत्पन्न कर सकती हैं जिससे उपभोक्ताओं के हित को नुकसान हो सकता है तथा औद्योगिक जगत के उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकता है।
4. आर्थिक क्रियायों एवं सम्पत्ति के केन्द्रीकरण की संभावना बढ़ जाती है।
5. औद्योगिक जगत में नये साहसियों एवं उद्योगपतियों के निवेश करने के मार्ग में अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं जिससे औद्योगिक विकास की प्रक्रिया बाधित होती है।
6. उपभोक्ताओं को साधारण किस्म की वस्तुओं को अधिक मूल्यों पर आपूर्ति होने की संभावना बढ़ जाती है।
7. इस प्रकार की औद्योगिक क्रियायें पूंजीवादी व्यवस्था को प्रोत्साहित करती हैं।

निष्कर्ष के रुप में यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक संयोजन की क्रिया एक सीमा तक ही किसी देश, विशेषकर भारत जैसे विकासशील देश, के हित के लिए उपयोगी हो सकती है। यही कारण है कि अनेक देशों के सरकारों द्वारा इस प्रकार की क्रियायों पर किसी-न-किसी रुप में नियन्त्रण लगाया जाता है। यहां तक कि अनेक देशों की सरकारों द्वारा इस प्रकार की शक्तिशाली इकाईयों के प्रतिकूल प्रभावों को रोकने के लिए राष्ट्रीयकरण जैसी नीति का सहारा भी लेना पड़ता है।

5.8 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. औद्योगिक एकीकरण तथा संविलयन की क्रियायों में पूर्ण रुप से समानता होती है।

2. औद्योगिक एकीकरण की क्रिया में शामिल होने वाली सभी इकाईयों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।
3. अधिग्रहण की क्रिया में शामिल होने वाली सभी इकाईयों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।
4. लम्बीय संविलयन के कारण कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित होती है।
5. औद्योगिक संयोजन के कारण इकाईयों के आकार में विस्तार होता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. पार्श्व समेकन में शामिल इकाईयों के उत्पाद के स्रोत ....होते हैं।
(एक **या** अनेक)
2. लम्बीय संविलयन में शामिल इकाईयों के उत्पादों अथवा सेवाओं में ....होती है।
(विविधता **या** समानता)
3. लम्बीय संविलयन को .... संविलयन के नाम से भी जाना जाता है।
(शीर्ष **या** विकर्णीय **या** चक्रीय)
4. औद्योगिक संयोजन के कारण एकाधिकारी प्रवृत्ति में ....होती है।
(वृद्धि **या** कमी **या** कोई अन्तर नहीं)
5. चक्रीय समेकन के अन्तर्गत समेकित इकाईयों के उत्पाद अथवा सेवा एक दूसरे ....होते हैं।
(से भिन्न **या** के सहायक)

5.9 सारांश

औद्योगिक संयोजन औद्योगिक इकाईयों की वह क्रिया होती है जिसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक अपने व्यासायिक क्रियाओ को परस्पर मिलाकर व्यवसाय का विस्तार करती है। एक औद्योगिक जगत के अन्तर्गत संपादित होने वाली इस क्रिया के विभिन्न स्वरुप हो सकते हैं जिनमें प्रमुख हैं- 'एकीकरण' अथवा 'समेकन', 'संविलयन' तथा 'अधिग्रहण'। वस्तुत: इन संयोजन की क्रियायों के भी विभिन्न रुप होते हैं जिनमें मुख्य हैं- समतल संविलयन, लम्बीय संविलयन, पार्श्व समेकन, विकर्णीय समेकन तथा चक्रीय समेकन। एक औद्योगिक जगत के अन्तर्गत औद्योगिक इकाईयों द्वारा विभिन्न प्रकार के औद्योगिक संयोजन की क्रियाओं को अपनाये जाने के पीछे वैसे तो अनेक कारण हो सकते हैं परन्तु व्यापक रुप में चार कारण होते हैं। ये कारण हैं- 'लाभदायिता की उच्च दर को प्राप्त करना', 'स्थिरता को बनाये रखना', 'संवृद्धि की उच्च दर को प्राप्त करना' तथा 'बाजार शक्ति में वृद्धि करना'।

औद्योगिक इकाईयों के इस क्रिया-कलाप का एक तरफ कुछ अनुकूल प्रभाव उत्पन्न होते हैं तो दूसरी तरफ प्रतिकुल प्रभाव भी उत्पन्न होते हैं। औद्योगिक संयोजनों के फलस्वरुप समेकित इकाईयों के उत्पादन संरचना में परिवर्तन एवं संगठनात्मक सुधार होने के कारण इन इकाईयों के लाभ एवं लाभदायिता, कुशलता, प्रतिस्पर्धा शक्ति इत्यादि में भी सुधार होता है। ये सभी प्रभाव संयोजन की क्रिया के अनुकूल प्रभाव होते हैं। इस क्रिया के फलस्वरुप जो प्रतिकूल प्रभाव भी उत्पन्न हो सकते हैं उनमें प्रमुख हैं - औद्योगिक जगत में एकाधिकारी प्रवृत्तियों का उत्पन्न होना, वस्तुओं एवं कच्चे माल का कृत्रिम अभाव उत्पन्न होना, उत्पादों के गुणवत्ता में गिरावट एवं कीमतों में वृद्धि होने की संभावना, उपभोक्ताओं का शोषण होने की संभावना, औद्योगिक विकास की प्रक्रिया बाधित होने की संभावना इत्यादि। वस्तुत: औद्योगिक संयोजन की क्रिया एक सीमा तक ही किसी देश के हित के लिए उपयोगी हो सकते हैं। इसीलिए अनेक देशों के सरकारों द्वारा इस प्रकार की क्रियायों पर किसी-न-किसी रुप में नियन्त्रण लगाया जाता है।

5.10 शब्दावली

- **सृजन-** इस शब्द का अर्थ होता है 'निर्माण' या 'उत्पन्न'। इस इकाई के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग इस रुप में किया गया है कि संयोजन की क्रिया, विशेषकर एकीकरण, के फलस्वरुप एक नयी कम्पनी का निर्माण अर्थातृ सृजन होता है।

- **समावेशित-** इस शब्द का अर्थ 'मिलना' होता है। इस इकाई के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग इस रुप में किया गया है कि एकीकरण की प्रक्रिया में शामिल होनी वाली इकाईयां एक नयी इकाई के अस्तित्व में मिल जाती हैं अर्थात् समावेशित हो जाती हैं।
- **अधिग्रहीत-** इस शब्द का अर्थ होता है 'धारित होने वाली'। इस इकाई के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग इस रुप में किया गया है कि अधिग्रहण की क्रिया में जिस इकाई के अंश क्रय किया जाता है उसे धारित होने वाली अर्थात् अधिग्रहीत इकाई कहा जाता है।
- **उद्भव-** इस शब्द का अर्थ 'उत्पत्ति' होता है। इस इकाई के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग इस रुप में किया गया है कि पार्श्व समेकन की प्रक्रिया में शामिल होनी वाली सभी इकाईयों के उत्पादों की उत्पत्ति अर्थात् उद्भव एक ही उत्पाद अथवा तकनीक से होता है।
- **संयोजित-** इस शब्द का अर्थ होता है 'जोड़ना'। इस इकाई के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग इस रुप में किया गया है कि पार्श्व समेकन की प्रक्रिया में शामिल होनी वाली इकाईयों को संयोजित अर्थात् 'जोड़ी' जाती हैं।
- **लक्षित-** इस शब्द का अर्थ होता है 'उद्देश्य निर्धारित करना'। इस इकाई के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग इस रुप में किया गया है कि संयोजन की क्रिया में यह कोई आवश्यक नहीं होता कि समेकित इकाई द्वारा विभिन्न उपलब्धियों को एक साथ प्राप्त करने का 'उद्देश्य निर्धारित किया' जाए अथवा 'लक्षित' किया जाए।
- **दोहरी व्यवस्था-** इस शब्द का अभिप्राय 'अनेक व्यवस्था' अथवा 'अलग-अलग व्यवस्था' से होता है। इस इकाई के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग इस रुप में किया गया है कि संयोजन की प्रक्रिया के परिणामस्वरुप उत्पादन की क्रिया 'अनेक व्यवस्था' अथवा 'अलग-अलग व्यवस्था' अर्थात् 'दोहरी व्यवस्था' के स्थान पर एक ही व्यवस्था के अधीन संचालित किया जाता है।
- **मितव्ययिता-** इस शब्द का अर्थ होता है 'अनावश्यक व्यय न होना'। इस इकाई के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग इस रुप में किया गया है कि संयोजन की प्रक्रिया के परिणामस्वरुप उत्पादन की क्रिया में होने वाली अनेक प्रकार की अनावश्यक व्यय या तो कम हो जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं।
- **निहित-** इस शब्द का अर्थ होता है 'छिपा हुआ'। इस इकाई के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग इस रुप में किया गया है कि संयोजन की क्रिया के अन्तर्गत अनेक ऐसे उद्देश्य 'छिपे होते है' जिनको समेकित इकाईयां ध्यान में रखकर इस क्रिया को अपनाती हैं।
- **कालपर्यन्त-** इस शब्द का अर्थ होता है 'कुछ समय के बाद'। इस इकाई के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग इस रुप में किया गया है कि संयोजन की क्रिया के अन्तर्गत ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं कि 'कुछ समय के बाद' अर्थात् 'कालपर्यन्त' समेकित इकाईयों के कुशलता में कमी होने लगती है।
- **अनुकूलतम आकार-** इसका अभिप्राय एक औद्योगिक इकाई के उत्पादन के उस स्तर से होता है जिस पर उत्पादन लागत न्यूनतम होती है।

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. असत्य	2. सत्य	3. असत्य
4. सत्य	5. सत्य	

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. एक	2. विविधता	3. शीर्ष
4. वृद्धि	5. से भिन्न	

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Stephen, Martin (1989): ***Industrial Economics* - *Economic Analysis and Public Policy***, MacMillan Publishing Co. New York, pp. 230-235.
- Gort, Michael (1969): ***An Economic Disturbance Theory of Mergers,*** Quarterly Journal of Economics, *Vol No.* 83.
- Coase, R.H. (1937): ***The Nature of the Firm,*** Economica, *Vol No.* 4.
- Stigler, G.J. (1955): ***Mergers and Preventive Antitrust Policy,*** University of Pennsylvania Law Review, *Vol No.* 104, pp. 178-184.

5.13 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Barthwal, R.R. (2005): ***Industrial Economics – An Introductory Textbook***, New Age International Publishers, New Delhi.
- Stephen, Martin (1989): ***Industrial* Economics - Economic Analysis and Public Policy**, MacMillan Publishing Co. New York.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, NewDelhi.
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक संयोजन के आशय को स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न स्वरुपों की विवेचना कीजिए।
2. “संविलयन तथा औद्योगिक एकीकरण की प्रक्रिया में समानता होते हुए भी ये दोनों क्रियायें एक दूसरे से थोड़ी भिन्न होती हैं।” इस वाक्यांश को स्पष्ट करते हुए औद्योगिक जगत के अन्तर्गत होने वाले संविलयनों के कारणों को स्पष्ट कीजिए।
3. संविलयन की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न स्वरुपों की विस्तृत विवेचना कीजिए।
4. पार्श्व समेकन की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न स्वरुपों का समझाइये। इस प्रकार के समेकन की क्रिया में कौन-कौन से कारण निहित हाते हैं।
5. संविलयन, एकीकरण तथा अधिग्रहण क्रियायों को समझाते हुए इनके बीच के अन्तर को भी स्पष्ट कीजिए।
6. पार्श्व समेकन, चक्रीय समेकन तथा विकर्णीय समेकन की क्रियायों को समझाते हुए इनके बीच के अन्तर को भी स्पष्ट कीजिए।
7. एक औद्योगिक जगत के अन्तर्गत होने वाले विभिन्न प्रकार के संयोजन क्रियाओं के पीछे निहित कारणों की विवेचना कीजिए।
8. एक औद्योगिक जगत के अन्तर्गत होने वाले संयोजन क्रियाओं के परिणामस्वरुप कौन-कौन से प्रभाव उत्पन्न हो सकते है? अपने उत्तर की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।
9. क्या आप समझते है कि औद्योगिक संयोजन की क्रिया औद्योगिक इकाईयों एवं अर्थव्यवस्था के लिए सर्वथा उपयोगी होते हैं? अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिए।

इकाई-6 औद्योगिक स्थानीयकरण के प्रभावी कारक

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 औद्योगिक स्थानीयकरण का आशय
6.4 औद्योगिक स्थानीयकरण विश्लेषण से अभिप्राय
6.5 औद्योगिक स्थानीयकरण के प्रभावी कारक
6.5.1. संसाधनों एवं सुविधाओं की उपलब्धता
6.5.2. संसाधनों एवं सुविधाओं की लागत
6.5.3. बाजार की स्थिति
6.5.4. औद्योगिक संरचना
6.5.5. सामाजिक एवं संस्थागत व्यवस्था
6.5.6. वैयक्तिक रुचियां
6.6 अभ्यास प्रश्न
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

औद्योगिक जगत के अन्तर्गत व्यावसायिक इकाईयों अर्थात् निवेशकों द्वारा व्यवसाय से सम्बन्धित जो विभिन्न निर्णय लिये जाते हैं उनमें से एक प्रमुख निर्णय औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सम्बन्ध में होता है। अत: औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के अन्तर्गत यह आवश्यक हो जाता है कि औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं के बारे में अध्ययन किया जाए। इन विभिन्न पहलुओं में प्रमुख रुप से तीन प्रकार के विचारणीय प्रश्न उठते हैं- पहला, औद्योगिक स्थानीयकरण का अभिप्राय क्या होता है, दूसरा यह कि औद्योगिक स्थानीयकरण के प्रभावी कारक अर्थात् निर्धारक घटक कौन-कौन से होते हैं, और तीसरा यह कि औद्योगिक स्थानीयकरण निर्धारण की प्रक्रिया का सैद्धान्तिक विश्लेषण किस प्रकार विकसित किया गया है। इस इकाई के अन्तर्गत पहले दो प्रश्नों के बारे में विवेचना प्रस्तुत किया जा रहा है। जहाँ तक तीसरे प्रश्न का सम्बन्ध है तो इसकी विवेचना अगली इकाई में प्रस्तुत की जायेगी।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रमुख रुप से निम्नलिखित बातों को समझने में सक्षम हो सकेंगे -

- ✓ वे कौन-कौन से घटक होते हैं जो औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।
- ✓ औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में संसाधनों की उपलब्धता तथा लागतों की क्या भूमिका होती है।
- ✓ बाजार की स्थिति एवं भौगोलिक क्षेत्र की औद्योगिक संरचना औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया को किस प्रकार से प्रभावित करते हैं।
- ✓ औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में सामाजिक एवं संस्थागत व्यवस्था की क्या भूमिका होती है।

6.3 औद्योगिक स्थानीयकरण का आशय

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया कि इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य उन कारकों को स्पष्ट करना है जो औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण को प्रभावित करते हैं। परन्तु इसके लिए यह आवश्यक होगा कि पहले यह समझ लिया जाए कि औद्योगिक स्थानीयकरण का आशय क्या होता है? इसके सन्दर्भ में सर्वप्रथम यह तथ्य उल्लेखनीय है कि यह व्यावसायिक इकाईयों अर्थात् उद्यमियों के द्वारा सम्पादित किये जाने वाले विभिन्न व्यावसायिक व्यवहारों में से एक व्यवहार को व्यक्त करता है। इसका अभिप्राय व्यावसायिक इकाईयों अर्थात् उद्यमियों के उस व्यवहार से होता है जिसके अन्तर्गत किसी औद्योगिक इकाई के स्थापना के लिये किसी स्थान विशेष के चुनाव के बारे में निर्णय लिया जाता है। दूसरे अर्थ में इसका अभिप्राय उस प्रवृत्ति से होता है जो यह व्यक्त करता है कि कोई उद्योग किस स्थान पर स्थापित होगी और किस स्थान पर नहीं। स्पष्ट है कि जिस स्थान पर अथवा जिस क्षेत्र विशेष का औद्योगिक स्थानीयकरण के लिये चयन किया जायेगा वहाँ पर औद्योगिक गतिविधियां सक्रिय होंगीं और जिन क्षेत्रों का चुनाव नहीं किया जायेगा उन क्षेत्रों में औद्योगिक गतिविधियां सुस्त होगी। इस सन्दर्भ में एक तथ्य यह भी स्पष्ट है कि औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए यदि किसी स्थान अथवा क्षेत्र विशेष का चुनाव अधिक से अधिक परियोजनाओं के लिए किया जाता है तो उस स्थान अथवा क्षेत्र विशेष में ही कुछ उद्योग बहुतायत में पाये जायेंगे। औद्योगिक क्षेत्रों की यह प्रवृत्ति ही 'औद्योगिक केन्द्रीयकरण' कहलाती है। दूसरी तरफ, औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए यदि किसी स्थान अथवा क्षेत्र विशेष का चुनाव सीमित परियोजनाओं के लिए किया जाता है तो उस स्थान अथवा क्षेत्र विशेष में सीमित संख्या में ही उद्योग पाये जायेंगे। औद्योगिक क्षेत्रों की यह प्रवृत्ति 'औद्योगिक विकेन्द्रीयकरण' कहलाती है।

6.4 औद्योगिक स्थानीयकरण विश्लेषण से अभिप्राय

प्रश्न यह उठता है कि इस बात को कैसे पता लगाया जाए कि किसी क्षेत्र विशेष अथवा स्थान विशेष पर औद्योगिक स्थानीयकरण की क्रिया सम्पादित होगी कि नहीं। इसके लिए इस बात का विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है कि औद्योगिक स्थानीयकरण का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है। व्यावसायिक इकाईयों के व्यवहार के सन्दर्भ में किये जाने वाले इस विश्लेषण को ही 'औद्योगिक स्थानीयकरण विश्लेषण' कहा जाता है। वस्तुत: औद्योगिक स्थानीयकरण विश्लेषण के अन्तर्गत दो प्रकार की समस्याओं पर विचार किया जाता है- एक तो यह कि औद्योगिक स्थानीयकरण के प्रभावी कारक अर्थात् निर्धारक घटक कौन-कौन से होते हैं, तथा दूसरा यह कि इन विभिन्न निर्धारक घटकों के आधार पर स्थानीयकरण के साम्य स्थिति का निर्धारण किस प्रकार होता है। चूँकि औद्योगिक स्थानीयकरण का एक आशय केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण के रुप में होता है अत: हम यह भी कह सकते हैं कि किसी क्षेत्र विशेष में उद्योगों के केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण के प्रवृत्ति का अध्ययन भी औद्योगिक स्थानीयकरण विश्लेषण के अन्र्तगत ही किया जाता है।

6.5 औद्योगिक स्थानीयकरण के प्रभावी कारक

औद्योगिक स्थानीयकरण की क्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों को समझने के लिए इस बात पर विचार करना आवश्यक होगा कि किसी स्थान विशेष अथवा क्षेत्र विशेष में औद्योगिक इकाई की स्थापना के लिए कौन-कौन से घटक महत्वपूर्ण होते हैं। यदि इस रुप में विचार किया जाए तो हम पाते हैं कि जब भी कोई उद्यमी अथवा निवेशक किसी स्थान विशेष अथवा क्षेत्र विशेष में औद्योगिक इकाई की स्थापना करने के बारे में विचार करता है तो उसके लिए इन तथ्यों का अवलोकन करना आवश्यक होता है कि सम्बन्धित क्षेत्र में 'संसाधनों एवं सुविधाओं' की उपलब्धता की स्थिति क्या है तथा इनकी 'लागतों की स्थिति' किस प्रकार है। ठीक इसी प्रकार उद्यमियों को इस बात का भी अवलोकन करना आवश्यक होता है कि सम्बन्धित औद्योगिक इकाई के लिए बाजार की स्थिति एवं सम्बन्धित उद्योग की औद्योगिक संरचना किस प्रकार की है। इतना ही नहीं, निवेशकों को सम्बन्धित क्षेत्र की सामाजिक एवं संस्थागत व्यवस्थाओं का भी अवलोकन करना आवश्यक होता है। इसका कारण यह है कि ये सभी घटक सम्बन्धित क्षेत्र में स्थापित किए जाने वाले उद्योग के लिए एक औद्योगिक वातावरण की निर्माण करते हैं। यदि एक क्षेत्र विशेष में औद्योगिक वातावरण अनुकूल है तब तो उस क्षेत्र में औद्योगिक स्थानीयकरण प्रोत्साहित होगी अन्यथा हतोत्साहित होगी।

अब प्रश्न यह उठता है उपरोक्त घटक किस प्रकार से किसी क्षेत्र विशेष के औद्योगिक वातावरण तथा उसमें औद्योगिक स्थानीयकरण की क्रिया को प्रभावित करतें है?

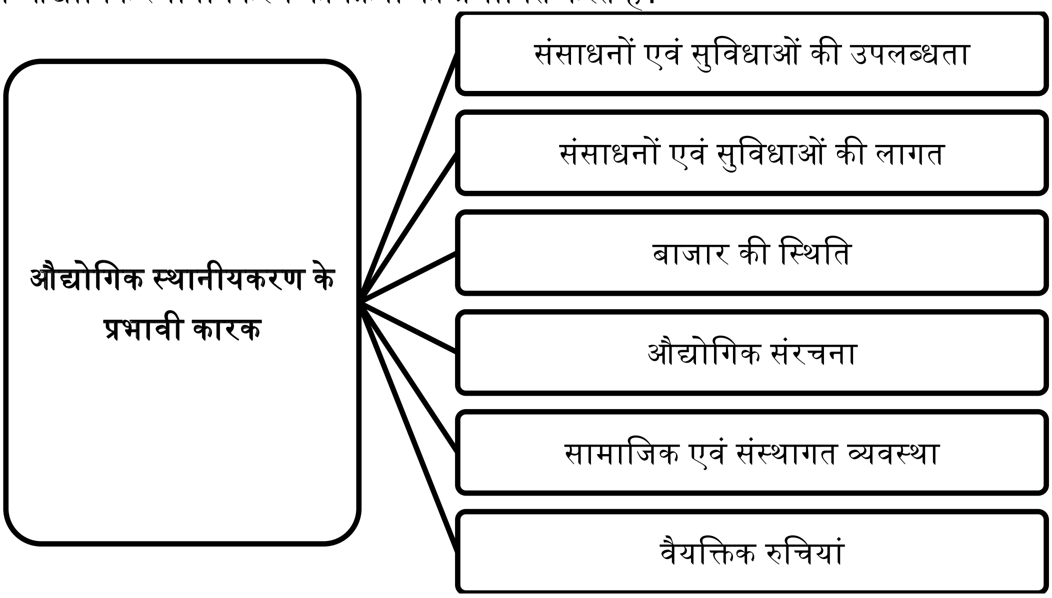

इस बात की विवेचना आगे विस्तार से किया जा रहा है।

6.5.1. संसाधनों एवं सुविधाओं की उपलब्धता

यह सर्वविदित तथ्य है कि किसी भी औद्योगिक इकाई की स्थापना एवं संचालन बिना संसाधनों के प्रयोग के संभव नहीं होता है। इतना ही नहीं एक औद्योगिक इकाई की स्थापना एवं संचालन में कुछ सुविधाओं की भी आवश्यकता होती है। अत: इस आधार पर यदि विचार किया जाए तो औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया में निम्नलिखित कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है-

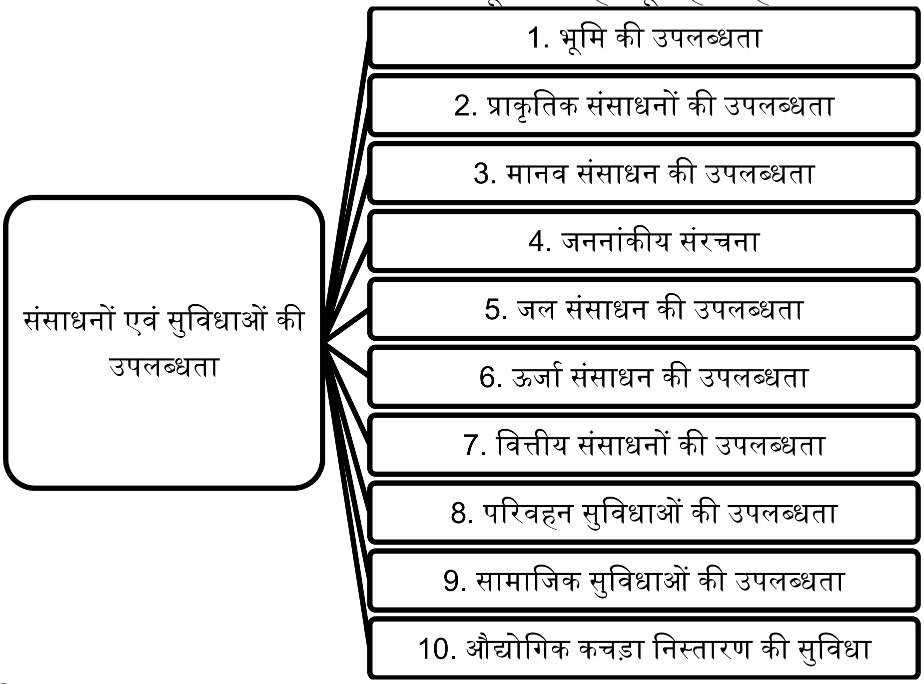

1. **भूमि की उपलब्धता -** किसी भी औद्योगिक इकाई के स्थापना के लिए सर्वप्रथम जिस संसाधन की आवश्यकता होती है वह है भूमि। इसका कारण यह है कि चाहे प्लाण्ट की स्थापना करना हो, मशीनों की स्थापना करना हो, गोदाम को स्थापित करना हो, औद्योगिक इकाई के लिए कार्यालय स्थापित करना हो या कर्मचारियों अथवा अधिकारियों के लिए आवास का निर्माण करना हो, इन सभी कार्यों के लिए भूमि संसाधन एक महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है। अत: स्पष्ट है कि जिस भौगोलिक क्षेत्र में भूमि की उपलब्धता जितनी ही अधिक होगी उस क्षेत्र में औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए उतनी ही अनुकूल परिस्थिति विद्यमान होगी और उस क्षेत्र में औद्योगिक स्थानीयकरण की संभावना भी उतनी ही अधिक होगी। दूसरी तरफ जिस भौगोलिक क्षेत्र में भूमि की उपलब्धता जितनी ही कम होगी उस क्षेत्र में औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए उतनी ही प्रतिकूल परिस्थिति विद्यमान होगी और उस क्षेत्र में औद्योगिक स्थानीयकरण की संभावना भी उतनी ही कम होगी।
2. **प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता -** एक औद्योगिक इकाई के स्थापना के लिए भूमि की उपलब्धता एवं इसका स्वरुप तो महत्वपूर्ण प्रभावी कारक होता ही है परन्तु इसके साथ ही साथ अनेक ऐसे प्राकृतिक संसाधन भी प्रभावी कारक के रुप में महत्वपूर्ण होते है जो भूमि से प्राप्त किये जाते हैं, जैसे- वन उत्पाद, कृषि उत्पाद, खनिज पदार्थ इत्यादि। उदाहरण के लिए फर्नीचर, खाद्य संवर्धन, लौह एवं इस्पात, कोयला, सीमेण्ट इत्यादि उद्योग इन्हीं संसाधनों पर आधारित होते हैं। अत: स्पष्ट है कि यदि किसी भौगोलिक क्षेत्र में उपरोक्त संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं तब तो उपरोक्त उद्योगों के स्थानीयकरण के लिए अनुकूल परिस्थिति विद्यमान होगी और उस क्षेत्र में ऐसे उद्योगों के स्थानीयकरण की संभावना अधिक होगी। वहीं दूसरी तरफ विपरीत परिस्थिति में, अर्थात् जब उक्त संसाधनों की उपलब्धता सीमित होगी तो औद्योगिक स्थानीयकरण की संभावना कम होगी।
3. **मानव संसाधन की उपलब्धता -** किसी भी औद्योगिक इकाई के संचालन के लिए एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण साधन की आवश्यकता होती है और वह है मानव संसाधन अर्थात् श्रम शक्ति। अत:

औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में श्रम शक्ति अर्थात् मानव संसाधन की उपलब्धता भी एक महत्वपूर्ण प्रभावी कारक के रुप में कार्य करती है। श्रम शक्ति के सन्दर्भ एक तथ्य यह उल्लेखनीय होता है कि इसकी आवश्यकता दो रुपों में हो सकती है - एक तो अकुशल श्रमिक, और दूसरा कुशल श्रमिक। विशेषकर एक औद्योगिक इकाई के प्रबन्धन एवं संचालन की दृष्टि से कुशल श्रमिकों की भूमिका ज्यादे महत्वपूर्ण होती है। इसलिए औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में मानव संसाधन की न केवल मात्रात्मक उपलब्धता बल्कि इसकी गुणवत्ता भी एक प्रभावी कारक के रुप में कार्य करती है। स्पष्ट है कि एक ऐसे भौगोलिक क्षेत्र में जहाँ मानव संसाधन की उपलब्धता, मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों रुप में, जितनी ही अधिक होगी वह क्षेत्र औद्योगिक स्थानीयकरण की दृष्टि से उतना ही उपयुक्त होगा जबकि विपरीत परिस्थित में अनुपयुक्त होगा।

4. **जनांकिकीय संरचना -** किसी भौगोलिक क्षेत्र के जनांकिकीय संरचना का अभिप्राय इस बात से होता है कि उस भौगोलिक क्षेत्र में जो उपलब्ध जनशक्ति अर्थात् मानव शक्ति है उसका स्वरुप किस प्रकार का है। वस्तुत: जनांकिकीय संरचना इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि कुल जनशक्ति में 'कार्यशील जनसंख्या', 'साक्षर एवं शिक्षित' लोगों का अनुपात क्या है, 'शिक्षा का स्तर' क्या है इत्यादि। स्पष्ट है कि यदि एक भौगोलिक क्षेत्र में जनांकिकीय संरचना इस प्रकार है कि कुल जनशक्ति में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात अधिक है तो यह इस बात का द्योतक होता है कि उस भौगालिक क्षेत्र में मानव संसाधन की उपलब्धता अनुकूल है। ठीक इसी प्रकार साक्षरता तथा शिक्षा का उच्च स्तर इस बात का द्योतक होता है कि उपलब्ध मानव संसाधन में गुणवत्ता वाले श्रमिकों अर्थात् कुशल श्रमिकों की उपलब्धता अनुकूल है। स्पष्ट है कि यदि किसी भौगोलिक क्षेत्र में जनांकिकीय संरचना की स्थिति मानव संसाधन की आपूर्ति की दृष्टि से अनुकूल है तो यह परिस्थिति उस क्षेत्र में औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए भी अनुकूल होगी अन्यथा प्रतिकूल होगी। इसलिए यह कहा जा सकता है कि यद्यपि कि औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में जनांकिकीय संरचना की कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं होती है फिर भी एक भौगालिक क्षेत्र में मानव संसाधन की उपलब्धता को प्रभावित करने के कारण यह कारक उस क्षेत्र में औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में भी एक प्रभावी कारक के रुप में कार्य कर सकती है।

5. **जल संसाधन की उपलब्धता -** औद्योगिक इकाईयों की स्थापना एवं संचालन दोनों की दृष्टि से जल संसाधन एक महत्वपूर्ण साधन होता है। इस संसाधन का प्रयोग दो रुपों में किया जाता है- एक तो पेयजल और दूसरा औद्योगिक उपयोग के लिए। पेयजल तो प्रत्येक औद्योगिक इकाई के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण संसाधन होता है। क्योंकि, यह संसाधन भले ही प्रत्यक्ष रुप में औद्योगिक उत्पादन में प्रयोग नहीं किया जाता है फिर भी जो मानव शक्ति उत्पादन प्रक्रिया को संचालित करता है उसके लिए पेयजल एक अति-आवश्यक आश्यकता होती है। यदि यह संसाधन सुगमता से उपलब्ध नहीं है इससे मानव संसाधन की कार्यकुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। दूसरी तरफ कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनमें औद्योगिक उपयोग के लिए ही जल संसाधन की आवश्यकता होती है जैसे- रसायन उद्योग, उर्वरक उद्योग, प्रिटिंग उद्योग इत्यादि। अत: औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में जल संसाधन की उपलब्धता भी एक महत्वपूर्ण प्रभावी कारक के रुप में अपनी भूमिका निभाती है। स्पष्ट है कि एक ऐसे भौगोलिक क्षेत्र में जहाँ जल संसाधन की उपलब्धता जितनी ही अधिक होगी वह क्षेत्र औद्योगिक स्थानीयकरण की दृष्टि से उतना ही अनुकूल होगा जबकि विपरीत परिस्थित में प्रतिकूल होगा।

6. **ऊर्जा संसाधन की उपलब्धता -** एक औद्योगिक इकाई के संचालन के लिए ऊर्जा संसाधन एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण साधन होता है। क्योंकि अनेको उद्योग ऐसे होते हैं जो पूर्ण रुप से इस संसाधन पर ही आधारित होते हैं जैसे- लोहा एवं इस्पात उद्योग, सीमेण्ट उद्योग, खनन उद्योग, रसायन उद्योग इत्यादि। इतना ही नहीं बल्कि आधुनिक औद्योगिक जगत का स्वरुप इस प्रकार विकसित हो चुका है कि किसी भी व्यावसायिक इकाई का संचालन बिना ऊर्जा संसाधन के प्रयोग के संभव नहीं है। अत: औद्योगिक स्थानीयकरण का निर्धारण इस बात से भी प्रभावित होता है कि स्थानीयकरण किये

जाने वाले क्षेत्र में ऊर्जा के संसाधन अर्थात् कोयला, पेट्रोलियम पदार्थ, विद्युत इत्यादि की उपलब्धता की क्या स्थिति है। स्पष्ट है कि एक ऐसा भौगोलिक क्षेत्र जहाँ इन संसाधनों की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में है वहाँ औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के लिए अनुकूल परिस्थिति प्रस्तुत करेगा जबकि विपरीत स्थित में प्रतिकूल परिस्थिति प्रस्तुत करेगा।

7. **वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता -** किसी भी औद्योगिक इकाई के स्थापना एवं संचालन दोनों के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण जो संसाधन है वह है वित्तीय संसाधन। इसका कारण यह है कि यद्यपि कि औद्योगिक इकाईयों के उत्पादन प्रक्रिया में इस संसाधन का प्रत्यक्ष रुप में प्रयोग नहीं किया जाता फिर भी उत्पादन के जितने भी साधन हैं, चाहे वह भूमि हो, भवन हो, श्रम हो, कच्चा माल हो, सभी को प्राप्त करने का माध्यम वित्तीय संसाधन ही होता है। अत: औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में वित्तीय संसाधन की उपलब्धता की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण होती है। स्पष्ट है कि यदि एक भौगोलिक क्षेत्र में बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थाओं की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में है तो ऐसा क्षेत्र औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के लिए अनुकूल परिस्थिति प्रस्तुत करेगा जबकि विपरीत स्थित में प्रतिकूल परिस्थिति प्रस्तुत करेगा।
8. **परिवहन सुविधाओं की उपलब्धता -** औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में परिवहन सुविधाओं की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। इसका कारण यह है कि औद्योगिक इकाईयों को जहाँ एक तरफ उत्पादित माल को बाजार में आपूर्ति करना पड़ता है वहीं दूसरी तरफ अपने माल को उत्पादित करने के लिए आवश्यक कच्चे माल तथा अन्य प्रकार के आगतों को इनके आपूर्ति केन्द्र से अपनी इकाई तक लाना पड़ता है। स्पष्ट है कि इन दोनों प्रकार की क्रियायों के लिए परिवहन सुविधाओं की आवश्यकता होगी। अत: औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया यह विचार करना आवश्यक होता है कि सम्बन्धित भौगोलिक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की 'परिवहन सुविधाएं', जैसे कि - सड़क, रेल, एवं वायु परिवहन की सुविधा उपलब्ध है कि नहीं। ठीक इसी प्रकार कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जो आयात-निर्यात पर आधारित होते हैं और ऐसे उद्योगों के लिए 'जल परिवहन' की सुविधा आवश्यक होती है जिसके लिए उपयुक्त बन्दरगाहों की आवश्यकता होती है। स्पष्ट है कि यदि एक भौगोलिक क्षेत्र में परिवहन सुविधाओं की उपलब्धता अनुकूल है तो इस क्षेत्र में औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के लिए अनुकूल परिस्थिति विद्यमान होगी अन्यथा प्रतिकूल।
9. **सामाजिक सुविधाओं की उपलब्धता -** औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में अनेक प्रकार की सामाजिक सुविधाओं, जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास एवं मनोरंजन इत्यादि सुविधाओं की उपलब्धता की स्थिति भी महत्वपूर्ण प्रभावी कारक हो सकती है। इसका कारण यह है कि मानव संसाधन के कुशल रुप से अपनी पूर्ण क्षमता का प्रयोग करते रहने के लिए उपरोक्त सुविधाएं आधारभूत आवश्यकताओं के रुप में आवश्यक होती हैं। यदि किसी भौगालिक क्षेत्र में इस प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं तो इसका प्रभाव यह होगा कि या तो श्रम शक्ति की गुणवत्ता प्रतिकूल रुप से प्रभावित होगी या उपलब्ध श्रम शक्ति अन्य क्षेत्रों की तरफ पलायित हो सकते हैं। ये दोनों ही प्रभाव औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया को प्रतिकूल रुप से प्रभावित कर सकते हैं। इसके विपरीत, उपरोक्त सुविधाओं की उपलब्धता सम्बन्धित भौगोलिक क्षेत्र के श्रम शक्ति की गुणवत्ता में तो वृद्धि कर ही सकते हैं साथ ही साथ अन्य क्षेत्रों से भी श्रम शक्ति को आकर्षित करने में सहायक हो सकते हैं और औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित कर सकते हैं।
10. **औद्योगिक कचड़ा निस्तारण की सुविधा -** औद्योगिक उत्पादन की प्रक्रिया का स्वरुप इस प्रकार का होता है कि इसके अन्तर्गत कुछ न कुछ कचड़ा अर्थात् कूड़ा उत्सर्जित होता है जो पर्यावरण की दृष्टि से वांछनीय नहीं होता है। विशेषकर कुछ उद्योगों, जैसे- रसायन, उर्वरक, चीनी इत्यादि उद्योगों के उत्पादन प्रक्रिया में भारी मात्रा में कचड़ा उत्सर्जित होता है। अत: इस प्रकार के उद्योगों की स्थापना करते समय यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि जिस स्थान पर औद्योगिक इकाई स्थापित की जानी है वहाँ कचड़े के निस्तारण की सुविधा की उपलब्धता किस प्रकार की है। इस कारक पर विचार करना वर्तमान परिवेश में तो और महत्पूर्ण हो जाता है क्योंकि प्रदूषण नियन्त्रण

के प्रति पिछले कुछ वर्षों में वैश्विक स्तर पर सजगता उत्पन्न हुई है। अत: किसी भौगोलिक क्षेत्र में एक औद्योगिक इकाई के स्थानीयकरण का निर्धारण इस कारक से प्रभावित हो सकता है कि उस क्षेत्र में औद्योगिक इकाईयों से निकलने वाले कचड़े के निस्तारण की सुविधा उपलब्ध है या नहीं।

6.5.2. संसाधनों एवं सुविधाओं की लागत

उपरोक्त वर्णित विभिन्न कारक औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में केवल संसाधनों एवं सुविधाओं की उपलब्धता अथवा अनुपलब्धता की भूमिका को ही स्पष्ट करते हैं जबकि औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में संसाधनों एवं सुविधाओं की उपलब्धता अथवा अनुपलब्धता के साथ-साथ इनकी लागतों की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो सकती है। यदि औद्योगिक स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले कारकों पर इस दृष्टिकोण से विचार किया जाए तो औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में निम्नलिखित कारकों पर विचार करना आवश्यक होता है-

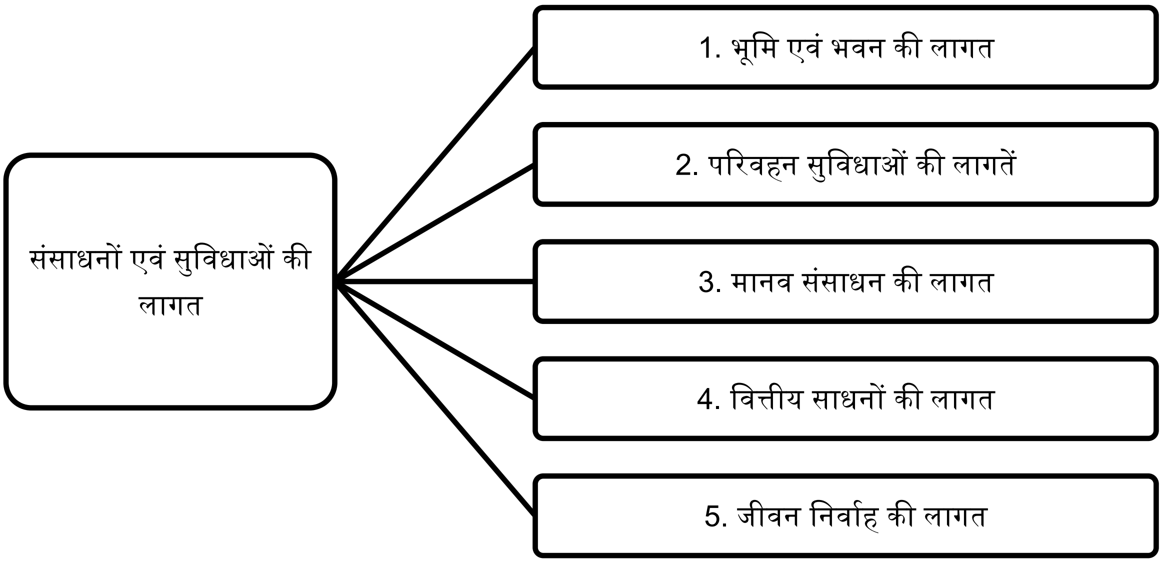

1. **भूमि एवं भवन की लागत -** औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में भूमि की उपलब्धता तो प्रभावी कारक के रुप में कार्य करती ही है साथ ही साथ भूमि एवं भवन की लागत भी महत्वपूर्ण प्रभावी कारक हो सकती है। इसका कारण यह है कि यद्यपि कि किसी भौगोलिक क्षेत्र में भूमि एवं भवन आवश्यक मात्रा में उपलब्ध हो परन्तु इनकी लागत अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक हो। ऐसी परिस्थिति में इस प्रकार के भौगोलिक क्षेत्र औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए अनुकूल नहीं होगें। हाँ यदि उपलब्धता के साथ-साथ किसी भौगोलिक क्षेत्र में भूमि एवं भवन की लागत भी अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा कम है तो यह परिस्थिति औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए अनुकूल होगी।
2. **परिवहन सुविधाओं की लागतें -** जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में परिवहन सुविधाओं की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है परन्तु एक तथ्य ध्यान देने योग्य है कि परिवहन सुविधाओं के प्रयोग के बदले 'माल भाड़े' के रुप में लागत का वहन करना पड़ता है। अत: यदि किसी भौगोलिक क्षेत्र में परिवहन सुविधाओं की लागतें अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा कम है तो यह परिस्थिति औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए अनुकूल होगी अन्यथा प्रतिकूल होगी।
3. **मानव संसाधन की लागत -** जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि किसी भी औद्योगिक इकाई के उत्पादन प्रक्रिया में मानव संसाधन अर्थात् श्रम शक्ति अत्यन्त ही महत्वपूर्ण घटक होता है। इन संसाधन के प्रयोग के बदले श्रमिकों को वेतन अथवा मजदूरी के रुप पारिश्रमिक का भुगतान करना पड़ता है। वेतन एवं मजदूरी के रुप किया गया पारिश्रमिक का भुगतान ही मानव संसाधन की लागत को व्यक्त करता है। स्पष्ट है कि यदि किसी भौगोलिक क्षेत्र में वेतन एवं मजदूरी की दरें अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक होगी तो मानव संसाधन की लागत भी अधिक होगी और इसका परिणाम

यह होगा कि औद्योगिक इकाई की उत्पादन लागत अधिक होगी। अत: यह परिस्थिति औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए अनुकूल नहीं होगी बल्कि प्रतिकूल होगी। हाँ, यदि एक भौगोलिक क्षेत्र में वेतन एवं मजदूरी की दरें अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा कम है तो यह परिस्थिति औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए अनुकूल होगी।

4. **वित्तीय साधनों की लागत -** वित्तीय साधनों को प्रयोग करने की लागत ब्याज के रुप में किया गया भुगतान होता है। इसके अतिरिक्त, वित्तीय साधनों को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार की औपचारिकताओं अर्थात् कागजी कार्यवाही को भी सम्पन्न करना पड़ता है। इसलिए वित्तीय संसाधन को प्राप्त करने के लिए निवेशकों को 'ब्याज' के अतिरिक्त अनेक प्रकार की 'ऊपरी लागतों' को भी वहन करना पड़ता है। अत: औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता के साथ-साथ इनकी लागतों पर भी विचार करना आवश्यक होता है। स्पष्ट है कि यदि किसी भौगोलिक क्षेत्र में वित्तीय संसाधन को प्राप्त करने की लागत अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा कम है तो यह परिस्थिति औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए अनुकूल होगी अन्यथा प्रतिकूल होगी।
5. **जीवन निर्वाह की लागत-** किसी भौगोलिक क्षेत्र में प्रचलित जीवन निर्वाह की लागत भी औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसका कारण यह है कि यद्यपि कि औद्योगिक इकाईयों के उत्पादन प्रक्रिया से इसका प्रत्यक्ष रुप में सम्बन्ध नहीं होता है फिर भी अप्रत्यक्ष रुप से यह उत्पादन के लागत का प्रभावित कर सकता है। क्योंकि यदि किसी भौगालिक क्षेत्र में जीवन निर्वाह की लागत अधिक है तो इसका परिणाम यह होगा कि या तो श्रमिक एवं मजदूर अधिक पारिश्रमिक की माँग करेंगे या उन क्षेत्रों की तरफ पलायन करेंगे जहाँ जीवन निर्वाह की लागत कम होगी। यदि श्रमिकों एवं मजदूरों के पारिश्रमिक में वृद्धि होती है तो इसके परिणामस्वरुप वेतन एवं मजदूरी की दरें अधिक होंगीं और यदि श्रमिक दूसरे क्षेत्रों की तरफ पलायन करते हैं तो इसके परिणास्वरुप मानव संसाधन की उपलब्धता प्रतिकूल रुप से प्रभावित होगी। ये दोनों ही परिस्थितियां औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया के लिए प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न करेंगी। इसके विपरीत यदि किसी भौगोलिक क्षेत्र में जीवन निर्वाह की लागत कम है तो यह क्षेत्र औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए अनुकूल परिस्थिति प्रस्तुत करेगा।

6.5.3. बाजार की स्थिति

औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में बाजार की स्थिति की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। इसका कारण यह है कि जहाँ औद्योगिक इकाईयों द्वारा उत्पादित माल को बाजार में आपूर्ति करना पड़ता है तो वहीं दूसरी तरफ इन इकाईयों को अपनी उत्पादन प्रक्रिया के आवश्यक कच्चा माल की आपूर्ति का स्रोत भी बाजार ही होता है। अत: औद्योगिक स्थानीयकरण के सन्दर्भ में यह विचार करना आवश्यक होता है कि जिस उद्योग की स्थापना की जानी है उसके उत्पाद के लिए 'स्थानीय बाजार' उपलब्ध है कि नहीं। यदि एक भौगोलिक क्षेत्र में किसी उद्योग विशेष के लिए स्थानीय स्तर पर बाजार उपलब्ध है तो इसके परिणामस्वरुप इस क्षेत्र में उद्योग विशेष के लिए परिवहन लागत अपेक्षाकृत कम होगी और यह क्षेत्र औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए अनुकूल होगा अन्यथा प्रतिकूल।

औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में स्थानीय बाजार के साथ-साथ इस बात पर भी विचार करना आवश्यक होता है कि सम्बन्धित उत्पाद के लिए 'बाह्य बाजार' अथवा 'निर्यात बाजार' की स्थिति किस प्रकार की है। इसका कारण यह है कि यदि स्थानीय बाजार में उत्पादों की माँग पर्यात न हो अथवा कच्चे माल की आपूर्ति में अपर्याप्तता हो तो इस अवरोध को बाह्य बाजार अथवा निर्यात बाजार से दूर किया जा सके। स्पष्ट है कि यदि किसी भौगोलिक क्षेत्र में स्थापित किये जाने वाले औद्योगिक इकाई के उत्पाद के लिए स्थानीय अथवा बाह्य अथवा दोनों प्रकार के बाजार उपलब्ध हैं तो यह परिस्थिति औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए अनुकूल होगी अन्यथा प्रतिकूल होगी।

6.5.4. औद्योगिक संरचना

औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया इस बात से भी प्रभावित होती है कि जिस क्षेत्र विशेष में उद्योग की स्थापना की जानी है उस क्षेत्र की औद्योगिक संरचना किस प्रकार की है। इसके लिए दो बातों पर विचार करना पड़ता है- एक तो यह कि स्थापित की जाने वाली औद्योगिक इकाई जिस उद्योग से सम्बन्धित है उसकी संरचना किस प्रकार की है तथा दूसरा यह कि सम्बन्धित क्षेत्र की औद्योगिक संरचना किस प्रकार की है। उद्योग विशेष की संरचना के आकलन के लिए इस बात पर विचार करना होता है कि सम्बन्धित उद्योग का बाजार प्रतिस्पर्धी है अथवा अप्रतिस्पर्धी है। कोई भी निवेशक, विशेषकर नया निवेशक, एक ऐसे उद्योग में निवेश करने से हिचकिचाता है जो पहले से ही प्रतिस्पर्धी हो। इसका कारण यह है कि प्रतिस्पर्धी उद्योग में कड़ी प्रतिस्पर्धा के कारण न केवल नये निवेशक बल्कि पहले से स्थापित निवेशकों के लिए भी ऐसी परिस्थितयां विद्यमान रहती हैं जो इनके हितों को साधने में अवरोध उत्पन्न करते है। अत: एक ऐसा उद्योग जो अपेक्षाकृत अधिक प्रतिस्पर्धी हो औद्योगिक स्थानीयकरण की दृष्टि से प्रतिकूल परिस्थिति प्रस्तुत करता है जबकि वह उद्योग जो अपेक्षाकृत कम प्रतिस्पर्धी होता है औद्योगिक स्थानीयकरण की दृष्टि से अनुकूल परिस्थिति प्रस्तुत करता है।

क्षेत्र विशेष की औद्योगिक संरचना के अवलोकन के लिए इस बात पर विचार करना आवश्यक होता है कि सम्बन्धित क्षेत्र में 'सहायक' एवं 'पूरक उद्योगों' की उपलब्धता है कि नहीं। यदि सम्बन्धित क्षेत्र में सहायक एवं पूरक उद्योग प्रचुर संख्या में उपलब्ध हैं तो स्थापित किये जाने वाले इकाई के लिए एक तरफ कच्चा माल अथवा आगतों को प्राप्त करना सुलभ होता है तो दूसरी तरफ निर्मित माल को बाजार में आपूर्ति करना भी सुलभ होता है। इस प्रकार वर्तमान औद्योगिक संरचना की प्रकृति भी औद्योगिक स्थनीयकरण के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण प्रभावी कारक होती है।

6.5.5. सामाजिक एवं संस्थागत व्यवस्था

औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में संसाधनों तथा बाजार एवं उद्योग की स्थिति की भूमिका तो होती ही है साथ ही साथ सम्बन्धित भौगालिक क्षेत्र की सामाजिक एवं संस्थागत व्यवस्था भी इसको महत्वपूर्ण रुप से प्रभावित कर सकती है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण हो सकते हैं-

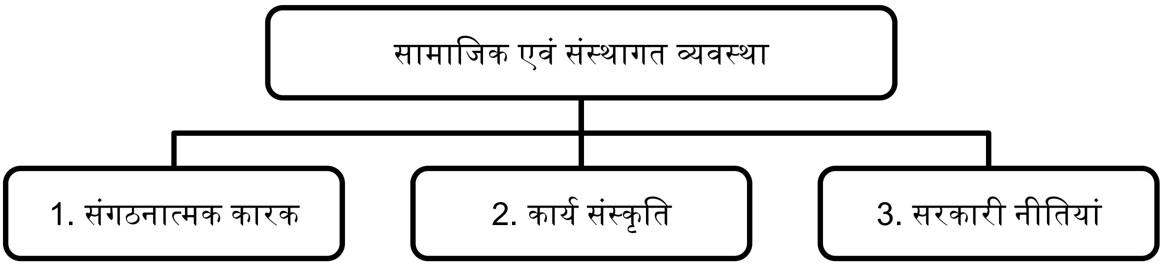

1. **संगठनात्मक कारक -** औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में कुछ संगठनात्मक कारकों, जैसे- 'व्यापार संगठन', 'मजदूर संगठनों' अथवा 'किसान संगठनों' की स्थिति की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो सकती है। यदि एक भौगालिक क्षेत्र इस प्रकार है जिसमें व्यापारी वर्ग संगठित नहीं हैं जबकिं मजदूर संगठन एवं किसान संगठन की स्थिति मजबूत है तो यह स्थिति औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए प्रतिकूल परिस्थिति प्रस्तुत करेगी। इसका कारण यह है कि आपसी हितों के मुद्दे पर औद्योगिक इकाईयों तथा श्रमिकों के बीच टकराव की संभावना बनी रहती है और यह संभावना उस स्थिति में और अधिक प्रबल हो जाती है जब औद्योगिक परिक्षेत्र में एक मजबूत मजदूर संगठन विद्यमान हो। औद्योगिक इकाईयों तथा श्रमिकों के बीच टकराव होते रहने के कारण आये दिन श्रमिक हड़ताल का आयोजन करते है, औद्योगिक इकाई तालाबन्दी की शिकार हो सकती है जिससे उत्पादन प्रक्रिया बाधित हो सकती है और परिणास्वरुप औद्योगिक इकाई के कुशलता एवं लाभदायिता पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। ठीक इसी प्रकार, यदि किसी भौगालिक क्षेत्र में किसान संगठित हैं तो इस बात की संभावना बनी रहती है कि यदि औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया के लिए अथवा आवश्यक सुविधाओं को विकसित करने के लिए कृषि भूमि का अधिग्रहण किया जाता है तो किसान संगठन

द्वारा इसका विरोध हो सकता है। अत: किसान संगठनों की उपस्थिति भी औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न कर सकती है। इसके विपरीत यदि भौगोलिक क्षेत्र में व्यापारी वर्ग संगठित हैं तो इस परिस्थिति में एक उद्यमी मजदूर संगठनो तथा किसान संगठनों का सामना कर सकता है। अत: इस प्रकार की स्थिति औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर सकती है।

2. **कार्य संस्कृति** - संगठनात्मक कारक की ही तरह कुछ सामाजिक कारक भी होते हैं जो औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में प्रभावी कारक हो सकते हैं। इसके अन्तर्गत एक कारक है भौगालिक क्षेत्र की 'कार्य संस्कृति'। यदि किसी भौगालिक क्षेत्र में कार्य संस्कृति का अभाव है अथवा अपेक्षाकृत निकृष्ट कोटि का है तो यह परिस्थिति प्रतिकूल औद्योगिक वातावरण प्रस्तुत करेगी और औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया को हतोत्साहित कर सकता है।
3. **सरकारी नीतियां** - औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया में कुछ संस्थागत कारक जैसे- 'सरकारी संस्थाओं' एवं 'सरकारी नीतियों' की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कुछ उद्योग अथवा भौगोलिक क्षेत्र ऐसे होते हैं जिनमें औद्योगिक इकाई के स्थापना के लिए सरकार से अनुमति लेनी पड़ती है और इसके लिए सम्बद्ध सरकारी संस्थाओं के पास औद्योगिक प्रस्ताव प्रस्तुत करना पड़ता है। प्रस्ताव के अनुमोदन के पश्चात ही औद्योगिक इकाई स्थापित किया जा सकता है। यदि सम्बन्धित संस्थाओं का स्वरुप इस प्रकार का है औद्योगिक प्रस्तावों के अनुमोदन की प्रक्रिया सरल एवं पारदर्शी है तो यह परिस्थिति औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करेगी अन्यथा हतोत्साहित करेगी।

   इसी प्रकार सरकार अपनी नीतियों, जैसे- करारोपण एवं अनुदान की नीति के माध्यम से भी औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती है। करारोपण एवं अनुदान औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया को दो प्रकार से प्रभावित कर सकती है - एक तो लागत के माध्यम से, दूसरा प्रोत्साहन के रुप में। सरकार कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्य से कभी-कभी कुछ क्षेत्रों में औद्योगिक इकाई स्थापित करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष करों जैसे- निगम कर, लाभ कर इत्यादि में छूट का प्रावधान करती है। इतना ही नहीं बल्कि सरकार कुछ उद्योगों के लिए अनुदान अर्थात् 'सरकारी सहायता' का भी प्रावधान करती है। ये दोनों ही स्थितियां सम्बन्धित क्षेत्र में औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करती हैं। वहीं दूसरी तरफ सरकार कुछ उद्योगों के उत्पाद तथा कच्चे माल पर विभिन्न प्रकार के अप्रत्यक्ष करों जैसे- उत्पाद कर, बिक्री कर, कस्टम ड्यूटी इत्यादि का प्रावधान करती है। इन करों का सम्बन्ध उत्पादन लागत से होता है क्योंकि इन करों के कारण उत्पादन लागत में वृद्धि होने की सम्भावना रहती है। अत: यह परिस्थिति औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न कर सकती हैं।

6.5.6. वैयक्तिक रुचियां

उपरोक्त वर्णित समस्त कारकों के अलावा औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण को एक अन्य कारक भी प्रभावित कर सकता है और वह है 'वैयक्तिक कारक'। इस कारक का अभिप्राय ऐसे कारकों से होता है जो निवेशकों अथवा उद्यमियों के निजी भावनाओं एवं निजी रुचियों को व्यक्त करते हैं। यद्यपि कि अपवाद स्वरुप ही परन्तु कुछ निवेशक औद्योगिक इकाई की स्थापना करते समय अपनी निजी भावनाओं एवं निजी रुचियों को को महत्व देते हुए कुछ प्रतिकूल परिस्थियों के बावजूद अपनी मातृभूमि में औद्योगिक इकाई स्थापित कर सकते हैं।

6.6 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. औद्योगिक स्थानीयकरण का निर्धारण केवल भूमि की उपलब्धता से प्रभावित होती है।

2. मानव संसाधन की उपलब्धता एवं जीवन निर्वाह की लागत के बीच धनात्मक सम्बन्ध होता है।
3. सामाजिक सुविधाओं की स्थिति औद्योगिक स्थनीयकरण को प्रत्यक्ष रुप से प्रभावित करती है।
4. औद्योगिक स्थानीयकरण के लिए वित्तीय संसाधनों को प्राप्त करने के लिए केवल ब्याज का भुगतान करना पड़ता है।
5. औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में सरकार के नीतियों का कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं होता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. औद्योगिक स्थानीयकरण का निर्धारण ....की स्थिति से प्रभावित होता है।
(स्थानीय बाजार **या** निर्यात बाजार **या** दोनों)
2. परिवहन सुविधाओं की कम लागत औद्योगिक स्थानीयकरण को ....रुप से प्रभावित करती है।
(अनुकूल **या** प्रतिकूल)
3. औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण को सरकार की ....अनुकूल रुप से प्रभावित करती है।
(कर नीति **या** अनुदान)
4. सरकार की अनुदान नीति औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण को ....करती है।
(हतोत्साहित **या** प्रोत्साहित)
5. मजदूर संगठन की मजबूती औद्योगिक स्थानीयकरण को..............रुप से प्रभावित करती है।
(अनुकूल **या** प्रतिकूल)

6.7 सारांश

औद्योगिक स्थानीयकरण का निर्धारण व्यापक रुप से इस बात पर निर्भर करता है कि उस स्थान अर्थात् क्षेत्र विशेष का औद्योगिक वातावरण किस प्रकार का है जहाँ औद्योगिक इकाई की स्थापना की जानी है। यदि औद्योगिक वातावरण अनुकूल है तब तो स्थानीयकरण की क्रिया प्रोत्साहित होगी अन्यथा हतोत्साहित होगी। औद्योगिक वातावरण अनुकूल होगा अथवा प्रतिकूल, यह अनेक कारकों से निर्धारित होता है और ये कारक ही अन्तत: औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण को प्रभावित करते हैं। इन कारकों में कुछ कारक ऐसे होते हैं जो विभिन्न प्रकार के संसाधनों के उपलब्धता को व्यक्त करते है जैसे- भूमि, प्राकृतिक सम्पदा, मानव संसाधन, परिवहन सुविधा, ऊर्जा संसाधन इत्यादि की उपलब्धता। जबकि कुछ कारक ऐसे होते हैं जो विभिन्न संसाधनों के लागतों एवं व्यवसाय की संभावनाओं को व्यक्त करते हैं जैसे- भूमि एवं भवन की लागत, परिवहन सुविधाओं की लागत, वेतन एवं मजदूरी की दरें, वित्तीय संसाधन की लागत, जीवन निर्वाह की लागत, बाजार की स्थिति, औद्योगिक संरचना इत्यादि। इन कारकों के अतिरिक्त औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में कुछ अन्य कारकों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। ये कारक ऐसे कारक होते है जो सम्बन्धित क्षेत्र के सामाजिक, संगठनात्मक एवं संस्थागत वातावरण को व्यक्त करते हैं। इन कारकों में जो प्रमुख प्रभावी कारक हो सकते हैं वे हैं- मजदूर एवं किसान संगठनों की स्थिति, कार्य संस्कृति, सामाजिक सुविधाओं, जैसे - शिक्षा, स्वास्थ, आवास एवं मनोरंजन सुविधाओं की स्थिति। औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया सरकारी संस्थाओं एवं नीतियों की प्रकृति, विशेषकर करारोपण एवं अनुदान की नीति से भी प्रभावित हो सकती है।

6.8 शब्दावली

- **औद्योगिक वातावरण-** इसका अभिप्राय उस परिस्थिति से होता है जो किसी भौगोलिक क्षेत्र में औद्योगिक गतिविधियों को प्रभावित करने वाले संसाधनों एवं सुविधाओं की स्थिति से उत्पन्न होता है।
- **माल भाड़ा-** वस्तुओं तथा सेवाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन के लिए परिवहन सुविधाओं पर जो व्यय किया जाता है उसके लिए ही इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।

- **ऊपरी लागत-** इसका अभिप्राय लागत के उस भाग से होता है जो किसी भी संसाधन अथवा सेवा की वास्तविक लागत के अतिरिक्त व्यय किया जाता है। जैसे- वित्तीय संसाधनों को प्राप्त करने के लिए ब्याज के रुप में किया गया व्यय वित्तीय संसाधन की वास्तविक लागत को व्यक्त करता है जबकि बैंकों अथवा वित्तीय संस्थाओं लिया जाने वाला शुल्क या फीस को ऊपरि लागत कहा जाता है।
- **जीवन निर्वाह की लागत-** किसी भी भौगोलिक क्षेत्र के निवासियों द्वारा अपनी आवश्यक आवश्यकताओं जैसे- भोजन, आवास, स्वास्थ एवं शिक्षा को प्राप्त करने के लिए जो व्यय किया जाता है या जो व्यय करना आवश्यक होता है उसे जीवन निर्वाह की लागत कहते हैं।
- **स्थानीय बाजार-** जिस स्थान पर औद्योगिक इकाई के स्थापना पर विचार किया जाता है उस स्थान के आस-पास स्थिति बाजार को स्थानीय बाजार कहा जाता है। औद्योगिक स्थानीयकरण की दृष्टि इस रुप में स्पष्ट किया जा सकता है कि बाजार के वे सभी केन्द्र जिन पर औद्योगिक इकाई के स्थापना केन्द्र के सापेक्ष परिवहन लागत या तो हो ही न या अत्यन्त कम हो तो ये सभी केन्द्र स्थानीय बाजार कहलायेंगे।
- **बाह्य बाजार अथवा निर्यात बाजार -** औद्योगिक इकाई के स्थापना केन्द्र के सापेक्ष बाजार के वे सभी केन्द्र जो स्थानीय बाजार के परिधि के बाहर हों बाह्य बाजार अथवा निर्यात बाजार कहलाते हैं। स्पष्ट है कि बाह्य बाजार तो औद्योगिक इकाई के स्थापना केन्द्र से सम्बन्धित देश की भौगोलिक सीमा के भीतर ही स्थित होतें हैं जबकि निर्यात बाजार देश की भौगोलिक सीमा के बाहर स्थित होतें हैं।
- **सहायक एवं पूरक उद्योग-** वे सभी उद्योग जिनमें स्थापित की जाने वाली औद्योगिक इकाई में कच्चे माल अथवा आगत के रुप में प्रयोग किये जाने वाले उत्पादो का उत्पादन होता हो, सहायक उद्योग कहलाते हैं। दूसरी तरफ वे सभी उद्योग जिनमें स्थापित की जाने वाली औद्योगिक इकाई में उत्पादित माल, कच्चे माल अथवा आगत के रुप में प्रयोग जाता हो, पूरक उद्योग कहलाते हैं।
- **कार्यशील जनसंख्या-** किसी भी भौगालिक क्षेत्र में कुल विद्यमान जनसंख्या का वह भाग जो उत्पादन क्रियायों में सक्रिय योगदान कर सकता है, कार्यशील जनसंख्या कहलाती है। सामान्य रुप से 14 से 50 वर्ष के आयु वाले व्यक्तियों को इसके अन्तर्गत शामिल किया जाता है।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. असत्य   2. सत्य   3. असत्य
4. असत्य   5. असत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. दोनों   2. अनुकूल   3. अनुदान
4. प्रोत्साहित   5. प्रतिकूल

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Chapman K and D.F. Walker (1991): ***Industrial Location – Principle and Policies,*** Basil Blackwell, Oxford.
- Smith, D.M. (1971): ***Industrial Location – An Economic Geographic Analysis,*** John Wiley & Sons, New York.

- Kuchhal, S.C. (1978): ***Industrial Economy of India*** Chaitanya Publishing House, Allahabad.

6.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Barthwal, R.R. (2005): ***Industrial Economics – An Introductory Textbook***, New Age International Publishers, New Delhi.
- Stephen, Martin (1989): ***Industrial* Economics - Economic Analysis and Public Policy**, MacMillan Publishing Co. New York.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, NewDelhi.
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक स्थानीयकरण से आप क्या समझते हैं? इसके निर्धारण में जिन कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है उनकी विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।
2. औद्योगिक स्थानीयकरण विश्लेषण के आशय को समझाते हुए इस बात की विवेचना कीजिए की औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण को संसाधनों की उपलब्धता किस प्रकार से प्रभावित करती है?
3. औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में भूमि, मानव संसाधन तथा परिवहन सुविधाओं की भूमिका को विस्तारपूर्वक समझाइए।
4. औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण को प्रभावित करने वाले समस्त कारकों के आर्थिक पहलू को स्पष्ट कीजिए।
5. औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के तकनीकी पहलू को स्पष्ट कीजिए।

इकाई-7 औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्त: वेबर, सार्जेन्ट फ्लोरेन्स

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्त
7.4 वेबर का सिद्धान्त
7.4.1. सिद्धान्त का प्रारुप
7.4.2. सिद्धान्त के निष्कर्ष
7.4.3. सिद्धान्त की मान्यताएं
7.4.4. स्थानीयकरण का निर्धारण
7.4.5. सिद्धान्त की समीक्षा
7.5 सार्जेण्ट फ्लोरेन्स का सिद्धान्त
7.5.1. स्थानीयकरण भाज्य
7.5.2. स्थानीयकरण गुणांक
7.5.3. सिद्धान्त की समीक्षा
7.6 अभ्यास प्रश्न
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई के अन्तर्गत हम लोगों ने यह देखा कि किसी भौगोलिक क्षेत्र अथवा स्थान विशेष पर औद्योगिक स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हो सकते हैं। इन कारकों पर विचार करते समय हम लोगों ने यह पाया कि एक भौगोलिक क्षेत्र में औद्योगिक स्थानीयकरण की क्रिया तभी सम्पन्न होगी जब ये सभी कारक अनुकूल परिस्थिति में होंगे। परन्तु व्यवहार में यह सम्भव नहीं है कि एक स्थान अथवा क्षेत्र में सभी कारक अनुकूल हों। कुछ कारक अनुकूल हो सकते हैं और कुछ प्रतिकूल। उदाहरण के लिए किसी स्थान पर भूमि की लागत कम हो सकती है परन्तु श्रम की लागत अधिक हो सकती है। इसी प्रकार किसी स्थान पर कच्चा माल सुलभता से प्राप्त हो सकता है परन्तु बाजार उपलब्ध न हो। अत: औद्योगिक स्थानीयकरण की क्रिया पर विचार करते समय निवेशकों के समक्ष यह समस्या होती है कि इन विभिन्न स्थानों में से किस स्थान का चुनाव करें। वस्तुत: औद्योगिक अर्थशास्त्र विषय के अन्तर्गत इस समस्या के समाधान के लिए ही औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्त का अध्ययन करना आवश्यक होता है। इस इकाई के अन्तर्गत मूलत: इन्हीं सिद्धान्तों को स्पष्ट किया जा रहा है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रमुख रुप से निम्नलिखित बातों को समझने में सक्षम हो सकेंगे -

- ✓ औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में वेबर का सिद्धान्त क्या समाधान प्रस्तुत करता है।
- ✓ परिवहन लागत तथा श्रम लागत के आधार पर औद्योगिक स्थानीयकरण की साम्य स्थिति का निर्धारण किस प्रकार होता है।
- ✓ वेबर के सिद्धान्त में केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण प्रवृत्ति के लिए किन कारकों को जिम्मेदार माना गया है।
- ✓ औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में सार्जेन्ट फ्लोरेन्स का क्या विचार है।

7.3 औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्त

किसी भी सिद्धान्त के अन्तर्गत किसी एक समस्या का विश्लेषण एवं उसका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। ठीक इसी प्रकार से औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्त के अन्तर्गत भी औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण किया जाता है तथा इन समस्याओं का समाधान ढूंढने का प्रयास किया जाता है। वस्तुत: इसके अन्तर्गत इस समस्या का विश्लेषण किया जाता है कि विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में से किसी एक क्षेत्र का चुनाव किस प्रकार किया जाय कि औद्योगिक स्थानीयकरण की अनुकूलतम स्थिति प्राप्त हो सके। दूसरे शब्दों में इस सिद्धान्त के अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण के 'साम्य स्थिति' के निर्धारण को स्पष्ट किया जाता है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण से सम्बन्धित एक अन्य समस्या- केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के विश्लेषण को भी शामिल किया जाता है। इस सन्दर्भ में प्रमुख रुप से भूगोलशास्त्रियों द्वारा अनेक सिद्धान्त विकसित किये गये है जिसके अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया को भौगोलिक कारकों के आधार पर स्पष्ट किया गया है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों ने भी औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्त को विकसित किया है जिसके अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया की व्याख्या विशुद्ध रुप से आर्थिक कारकों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इन्हीं सिद्धान्तों में से दो सिद्धान्त हैं- एल्फ्रेड वेबर, तथा सार्जेन्ट फ्लोरेन्स का सिद्धान्त। आगे की पंक्तियों में इन्हीं सिद्धान्तों के बारे में विस्तारपूर्वक विवेचना प्रस्तुत किया जा रहा है।

7.4 वेबर का सिद्धान्त

एक जर्मन अर्थशास्त्री अल्फ्रेड वेबर ने 1929 में औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में एक सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। यह सिद्धान्त मूलत: जर्मन भाषा में प्रकाशित हुआ। बाद में एक

अर्थशास्त्री सी.जे. फ्रेडरिच ने 1929 में ही इस सिद्धान्त के अंग्रेजी अनुवाद को प्रकाशित किया। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया का एक अत्यन्त ही वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया तथा इसके अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की व्याख्या विशुद्ध रुप से आर्थिक कारकों के आधार पर प्रस्तुत किया गया। अपने विश्लेषण के अन्तर्गत वेबर ने मुख्य रुप से इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया कि दी हुयी दशाओं के अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण के साम्य अर्थात् सन्तुलन की स्थिति को किस प्रकार से निर्धारित किया जा सकता है। परन्तु इसके साथ ही साथ अपने अपने विश्लेषण के अन्तर्गत वेबर ने किसी क्षेत्र विशेष अथवा स्थान विशेष पर केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पाये जाने के कारणों को भी स्पष्ट किया। वस्तुत: वेबर के सिद्धान्त को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है -

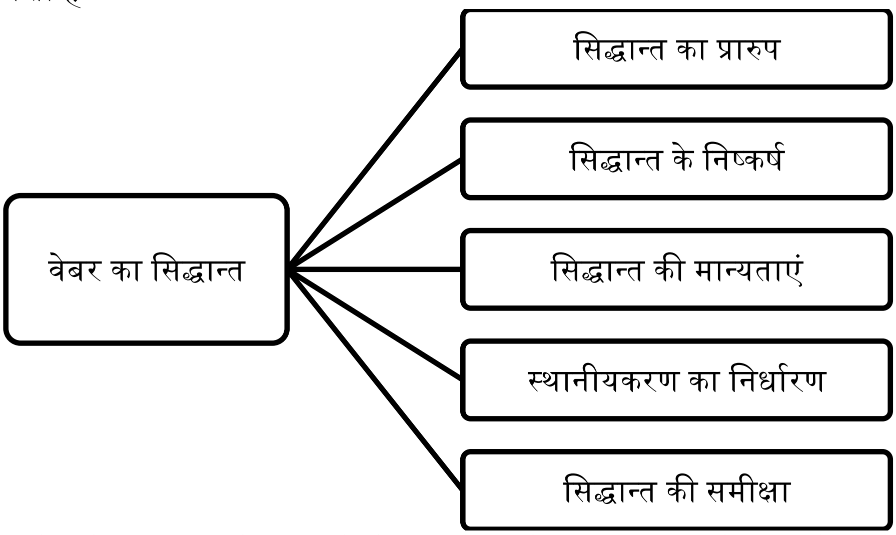

आगे की पंक्तियों में इन बिन्दुओं की विस्तारपूर्वक विवेचना प्रस्तुत की जा रही है।

7.4.1 सिद्धान्त का प्रारुप

यद्यपि कि औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में अनेकों कारकों की भूमिका होती है परन्तु वेबर ने जो सिद्धान्त विकसित किया उसके अन्तर्गत सभी महत्वपूर्ण कारकों को शामिल नहीं किया। उन्होने अपने विश्लेषण में केवल तीन कारकों को ही शामिल किया। ये तीनों कारक हैं - कच्चे माल की लागत, परिवहन लागत तथा श्रम लागत। वस्तुत: वेबर ने अपने विश्लेषण मे कच्चे माल की भूमिका को भी परिवहन लागत मे ही शामिल करते हुए औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में केवल परिवहन लागत तथा श्रम लागत की भूमिका को ही स्पष्ट किया। अपने विश्लेषण में वेबर ने कच्चे माल के दो केन्द्र तथा अन्तिम उत्पाद के एक केन्द्र पर विचार करते हुए स्थानीयकरण के साम्य स्थिति को इन्हीं दो कारकों के आधार पर निर्धारित करने का प्रयास किया।

7.4.2 सिद्धान्त के निष्कर्ष

अपने विश्लेषण में वेबर ने सर्वप्रथम श्रम लागत को स्थिर मानते हुए केवल परिवहन लागत के आधार पर औद्योगिक स्थानीयकरण की साम्य स्थिति को स्पष्ट किया तत्पश्चात् इस स्थिति पर श्रम लागत की भूमिका को स्पष्ट किया। अपने विश्लेषण के आधार पर वेबर ने मुख्य रूप से दो निष्कर्ष प्रस्तुत किया-

1. दी हुई श्रम लागत की दशा के अर्न्तगत औद्योगिक स्थानीयकरण की साम्य स्थिति का निर्धारण उस स्थान पर होता है जहां पर परिवहन लागत न्यूनतम होती है।
2. यदि न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु के सापेक्ष कोई ऐसा बिन्दु है जिस पर श्रम लागत अपेक्षाकृत कम है तो न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु का स्थानीयकरण बिन्दु सस्ते श्रम केन्द्र पर

स्थानान्तरित हो सकता है। परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि ‘श्रम लागत में होने वाली बचत’, ‘परिवहन लागत में होने वाली वृद्धि’ की अपेक्षा अधिक हो।

7.4.3 सिद्धान्त की मान्यताएं

वेबर ने अपने विश्लेषण को ‘स्थैतिक दशाओं’ के आधार पर विकसित किया। यह विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं के आधार पर विकसित किया गया -

1. कच्चे माल, जिसमें ईंधन भी शामिल है, के स्रोत स्थिर हैं।
2. उपभोक्ता बाजार अर्थात उत्पादित वस्तुओं की अन्तिम बाजार की स्थिति एवं आकार स्थिर है। अर्थात बाजार की स्थिति एवं माँग की दशाओं में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है।
3. श्रम आपूर्ति के विभिन्न केन्द्र उपलब्ध हैं तथा इन केन्द्रों पर श्रम की आपूर्ति स्थिर है।
4. प्रत्येक केन्द्र पर श्रम एक स्थिर मजदूरी दर पर असीमित मात्रा मे उपलब्ध है।
5. श्रम आपूर्ति के विभिन्न केन्द्रों के बीच श्रम पूर्ण रूप से अगतिशील हैं। अर्थात् श्रम आपूर्ति के विभिन्न केन्द्रों के बीच श्रमिकों का आवागमन सम्भव नहीं है।
6. स्थानीयकरण के क्षेत्र में पूर्ण प्रतियोगिता की दशा विद्यमान है।
7. करारोपण की दर, ब्याज की दर, बीमा इत्यादि औद्योगिक स्थानीयकरण के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण कारक नहीं होते हैं।
8. स्थानीयकरण के क्षेत्र में सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति में एकरूपता की स्थिति विद्यमान है।

7.4.4 स्थानीयकरण का निर्धारण

वेबर ने अपने विश्लेषण में अध्ययन की निगमन प्रणाली को अपनाते हुए उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर एक क्षेत्र विशेष में औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण को स्पष्ट किया। वेबर ने अपने विश्लेषण में, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, पहले ‘न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु’ के निर्धारण को स्पष्ट किया और तत्पश्चात् इस साम्य बिन्दु पर ‘श्रम लागत’ के प्रभाव को स्पष्ट किया। वस्तुत: वेबर के विश्लेषण में स्थानीयकरण निर्धारण की सम्पूर्ण प्रक्रिया को तीन बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। ये तीन बिन्दु हैं- ‘न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु’, ‘औद्योगिक स्थानीयकरण निर्धारण में श्रम लागत की भूमिका’ तथा ‘केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण की व्याख्या’।

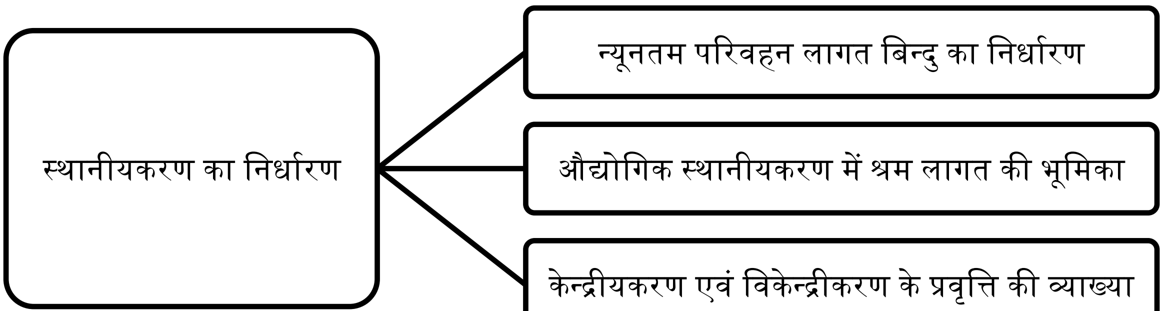

आगे इन्हीं बिन्दुओं को स्पष्ट किया जा रहा है-

<u>(क) न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु का निर्धारण</u>

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि वेबर ने अपने विश्लेषण को इस धारणा के आधार पर विकसित किया कि औद्योगिक स्थानीयकरण से सम्बन्धित उद्योग के लिए वस्तु के अन्तिम बाजार के रूप में केवल एक केन्द्र तथा कच्चे माल के आपूर्ति के केवल दो केन्द्र उपलब्ध है। ‘अन्तिम उत्पाद’ के उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल की आपूर्ति इन्हीं दो केन्द्रों से होती है तथा ‘उत्पादन केंद्र’ से उत्पादित वस्तु को अन्तिम बाजार के केन्द्र पर आपूर्ति की जाती है। स्पष्ट है कि कच्चे माल को उत्पादन केन्द्र तथा उत्पादित वस्तु को अन्तिम बाजार तक आपूर्ति करने के लिए परिवहन व्यय करना पड़ेगा और यही व्यय वस्तु के उत्पादन की परिवहन लागत को व्यक्त करती है। स्पष्ट है कि उत्पादक अर्थात् निवेशक

के लिए औद्योगिक स्थानीयकरण की वह बिन्दु वांछनीय होगी जहाँ पर कुल परिवहन लागत न्यूनतम हागी। अत: यदि औद्योगिक स्थानीयकरण का निर्धारण केवल परिवहन लागत के आधार पर किया जाय तो इसके लिए न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु को निर्धारित करना होगा।

न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु के निर्धारण के लिए वेबर ने इन तीनों केन्द्रों अर्थात् कच्चे माल के आपूर्ति के दोनों केन्द्रों तथा बाजार के एक केन्द्र, को एक त्रिभुज के तीन कोनों के रूप में व्यक्त किया। इस त्रिभुज को 'स्थानीयकरण त्रिभुज' के नाम से जाना जाता है तथा इसका उल्लेख सर्वप्रथम एक अर्थशास्त्री ***लाउन्डर्ट*** ने किया था। वेबर ने अपने विश्लेषण के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया कि इस त्रिभुज के तीनों कोनों पर स्थित कच्चे माल तथा अन्तिम बाजार के केन्द्र 'आर्थिक शक्ति' के रुप में क्रियाशील होंगें तथा स्थानीयकरण बिन्दु को अपनी-अपनी तरफ आकर्षित करेंगे। स्थानीयकरण बिन्दु की साम्य स्थिति उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जहाँ पर इन तीनों शक्तियों का प्रभाव सन्तुलन में होगा। यदि दिये गये श्रम लागत पर औद्योगिक स्थानीयकरण का बिन्दु P हो तो इसको निम्न चित्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है-

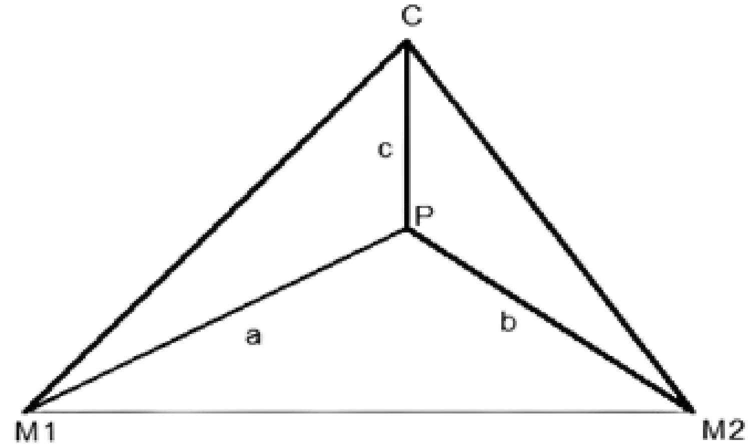

चित्र-7.1

चित्र में M_1 तथा M_2 कच्चे माल के केन्द्र को व्यक्त करते हैं और C उत्पाद के अन्तिम बाजार के केन्द्र को व्यक्त करता है। स्थानीयकरण त्रिभुज के तीनों कोनों की प्रवृत्ति स्थानीयकरण बिन्दु P को अपने-अपने तरफ आकर्षित करने की होगी। स्थानीयकरण बिन्दु P की वास्तविक स्थिति इस बात पर निर्भर करेगी कि त्रिभुज के तीनों कोनों के आकर्षण शक्ति में किस प्रकार का सन्तुलन स्थापित होता है। जिस कोने की आकर्षण शक्ति जितनी ही प्रभावशाली होगी स्थानीयकरण बिन्दु उस कोने के उतना ही निकट निर्धारित होगा। प्रत्येक कोने की आकर्षण शक्ति उस परिवहन लागत के रूप में होगी जो कच्चे माल को स्थानीयकरण बिन्दु तक तथा उत्पादित माल को स्थानीयकरण बिन्दु से अन्तिम बाजार तक ले जाने में आयेगी।

माना कि a,b एवं c क्रमश: बिन्दु P की बिन्दुओं M_1 तथा M_2 तथा C से दूरी को व्यक्त करते हैं तथा 'अन्तिम वस्तु' की 'एक इकाई' के उत्पादन के लिए दोनों कच्चे माल की क्रमश: x और y इकाई की आवश्यकता होती है। यदि t_1 तथा t_2 क्रमश: दानों कच्चे माल के केन्द्र और स्थानीयकरण बिन्दु के बीच परिवहन लागत के दर को तथा t_3 स्थानीयकरण बिन्दु एवं अन्तिम बाजार के बीच परिवहन लागत के दर को व्यक्त करते हों तो वस्तु के एक इकाई की उत्पादन के लिए परिवहन लागत को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है-

M_1 कच्चे माल की x इकाई को P बिन्दु तक लाने की परिवहन लागत = axt_1

M_2 कच्चे माल की y इकाई को P बिन्दु तक लाने की परिवहन लागत = byt_2
स्थानीयकरण बिन्दु P से अन्तिम उत्पाद की एक इकाई को बाजार
केन्द्र C तक ले जाने की परिवहन लागत = ct_3
अत: स्थानीयकरण बिन्दु पर कुल परिवहन लागत, $axt_1 + byt_2 + ct_3$ के बराबर होगी।

वेबर ने अपने विश्लेषण में यह स्पष्ट किया कि गए x, y, t_1, t_2 तथा t_3 के दिये मान पर स्थानीयकरण बिन्दु के निर्धारण के लिए a, b तथा c के मान को ज्ञात करना आवश्यक होगा। चूँकि स्थानीयकरण बिन्दु की साम्य स्थिति उस बिन्दु पर होगी जहाँ पर कुल परिवहन लागत न्यूनतम होगी। अत: P बिन्दु के वास्तविक स्थिति का निर्धारण $axt_1 + byt_2 + ct_3$ को न्यूनतम करके किया जाता है। अर्थात् a, b तथा c के मान को $axt_1 + byt_2 + ct_3$ के मान को न्यूनतम करने के सिद्धान्त के आधार पर ज्ञात किया जा सकता है। वेबर ने अपने विश्लेषण में यह उल्लेख किया कि ज्यामिती के एक प्रमेय- 'थ्योरम ऑफ पैरेलेलोग्राम' के आधार पर $axt_1 + byt_2 + ct_3$ के मान को न्यूनतम करके a, b तथा c के मानों को ज्ञात किया जा सकता है।

इस प्रकार वेबर ने अपने विश्लेषण में श्रम लागत को स्थिर मानते हुए केवल परिवहन लागत के आधार पर औद्योगिक स्थानीयकरण की साम्य स्थिति के निर्धारण की प्रक्रिया को स्पष्ट किया।

वेबर ने अपने विश्लेषण में इस समस्या पर भी विचार किया कि उत्पादन केन्द्र कच्चे माल के केन्द्र के निकट होगा या अन्तिम बाजार के होगा। इस समस्या के समाधान के लिए वेबर ने एक गुणांक- पदार्थ गुणांक को प्रस्तुत किया और इसको निम्न रूप में परिभाषित किया-

$$\text{पदार्थ गुणांक} = \frac{\text{कच्चे माल का भार}}{\text{अन्तिम वस्तु का भार}}$$

यदि इस गुणांक का मान इकाई अर्थात् 1 से अधिक है तो ऐसी स्थिति में उत्पादन केन्द्र अर्थात् स्थानीयकरण का बिन्दु कच्चे माल के केन्द्र के निकट होगा परन्तु यदि इस गुणांक का मान 1 से कम है तो उत्पादन केन्द्र अन्तिम बाजार के निकट स्थापित होगा।

(ख) औद्योगिक स्थानीयकरण में श्रम लागत की भूमिका

वेबर ने औद्योगिक स्थानीयकरण में श्रम लागत की भूमिका के सन्दर्भ में यह विचार व्यक्त किया कि यदि न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु की तुलना में कोई ऐसा बिन्दु है जहाँ पर श्रम अपेक्षाकृत सस्ते दर पर उपलब्ध है तो स्थानीयकरण बिन्दु न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु से सस्ते श्रम केन्द्र पर स्थानान्तरित हो सकता है। इसका कारण यह है कि उत्पादन केन्द्र अर्थात् स्थानीयकरण बिन्दु सस्ते श्रम केन्द्र पर स्थानान्तरित होने पर श्रम लागत में बचत होगी। परन्तु यहाँ एक तथ्य महत्वपूर्ण है कि उत्पादन केन्द्र, सस्ते श्रम केन्द्र की तरफ जैसे-जैसे स्थानान्तरित होगा परिवहन लागतों में वैसे-वैसे वृद्धि होती जायेगी। अत: स्थानीयकरण बिन्दु सस्ते श्रम केन्द्र पर उसी स्थिति में स्थानान्तरित होगा जबकि श्रम लागत में होने वाली बचत परिवहन लागत में होने वाली वृद्धि की तुलना में अधिक होगा।

यदि d_1 तथा d_2 क्रमश: न्यूनतम परिवहन लागत केन्द्र तथा सस्ते श्रम केन्द्र पर कुल परिवहन सेवाओं को व्यक्त करते हों, w_1 तथा w_2 क्रमश: दोनों केन्द्रों पर मजदूरी दर को व्यक्त करते हों, h अन्तिम उत्पाद की एक इकाई उत्पादन में लगने वाले कुल समय को व्यक्त करता हों तथा t दोनों केन्द्रों पर परिवहन लागत की दर को व्यक्त करता हो तो दोनों केन्द्रों पर लागत की स्थितियां निम्नवत् होंगी-

$$\text{न्यूनतम परिवहन लागत केन्द्र पर परिवहन लागत} = \text{परिवहन की दर} \times \text{परिवहन सेवा}$$
$$= td_1$$

$$\text{न्यूनतम परिवहन लागत केन्द्र पर श्रम लागत} = \text{मजदूरी की दर} \times \text{कुल कार्य समय}$$
$$= w_1\text{h}$$

अत:

$$\text{न्यूनतम परिवहन लागत केन्द्र पर कुल लागत} = td_1 + w_1\text{h}$$

इसी प्रकार,

$$\text{सस्ते श्रम केन्द्र पर परिवहन लागत} = \text{परिवहन की दर} \times \text{परिवहन सेवा} = td_2$$

$$\text{सस्ते श्रम केन्द्र पर श्रम लागत} = \text{मजदूरी की दर} \times \text{कुल कार्य समय} = w_2\text{h}$$

अत:

$$\text{सस्ते श्रम केन्द्र पर कुल लागत} = td_2 + w_2\text{h}$$

स्पष्ट है कि औद्योगिक स्थानीयकरण की साम्य स्थिति उस बिन्दु पर होगी जहाँ पर कुल लागत कम होगी। इसलिए औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में श्रम लागत की भूमिका को एक सामान्य सूत्र के आधार पर निम्नांकित रुप में स्पष्ट किया जा सकता है-

यदि,

$$td_1 + w_1\text{h} > td_2 + w_2\text{h} \ldots\ldots\ldots (1)$$

तो, इसका तात्पर्य यह हुआ कि न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु पर अन्तिम उत्पाद की प्रति इकाई उत्पादन लागत सस्ते श्रम केन्द्र के लागत की अपेक्षा अधिक है। अत: इस परिस्थिति में स्थानीयकरण बिन्दु न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु से सस्ते श्रम केन्द्र पर स्थानान्तरित हो जायेगा।

उल्लेखनीय है कि समीकरण (1) को रुप में भी व्यक्त किया जा सकता है-

$$w_1\text{h} - w_2\text{h} > td_2 - td_1$$

अर्थात्

$$(\text{w}_1 - \text{w}_2)\text{h} > (\text{d}_2 - \text{d}_1)t \ldots\ldots\ldots (2)$$

समीकरण (2) यह स्पष्ट कर रहा है कि न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु से सस्ते श्रम केन्द्र की तरफ स्थानान्तरित होने की दशा में श्रम लागतों में होने वाली बचत अर्थात् $(\text{w}_1 - \text{w}_2)\text{h}$, परिवहन लागतों में होने वाली वृद्धि अर्थात् $(\text{d}_2 - \text{d}_1)t$ की तुलना में अधिक है। अत: इस परिस्थिति में स्थानीयकरण बिन्दु न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु से सस्ते श्रम केन्द्र पर स्थानान्तरित हो जायेगा।

परन्तु यदि इसके विपरीत स्थिति है, अर्थात

$$(td_1 + w_1\text{h}) < (td_2 + w_2\text{h})$$

अर्थात्

$$(\text{w}_1 - \text{w}_2)\text{h} < (\text{d}_2 - \text{d}_1)t$$

तो इस परिस्थिति में औद्योगिक स्थानीयकरण का साम्य बिन्दु न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु पर ही बना रहेगा।

वेबर ने अपने विश्लेषण के अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में श्रम लागत की भूमिका को एक विशिष्ट प्रकार के आरेख - 'आइसोडेपेन्स' के माध्यम से स्पष्ट किया। एक आइसोडेपेन्स न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु के सापेक्ष ऐसे विभिन्न वृत्ताकार पथों के रुप में व्यक्त किया जाता है जिसके प्रत्येक वृत्ताकार पथ, परिवहन लागत में एक समान इकाई से होने वाली वृद्धि को व्यक्त करता है। एक आइसोडेपेन्स को निम्नांकित चित्र में प्रदर्शित किया गया है-

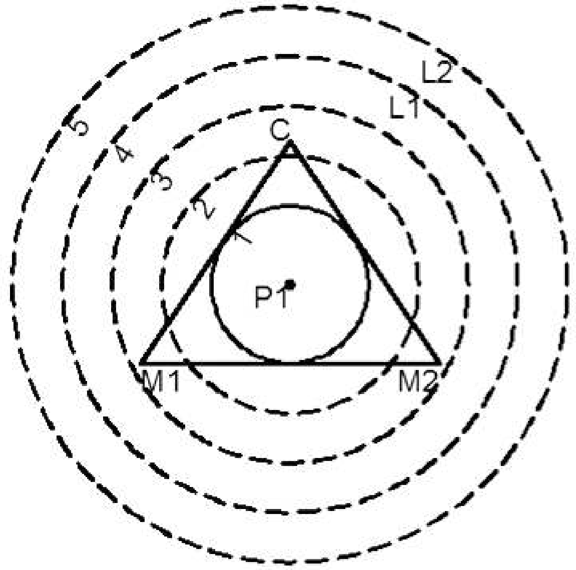

चित्र- 7.2

चित्र में बिन्दु P न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु को व्यक्त करता है तथा विभिन्न वृत्ताकार पथ विभिन्न आइसोडेपेन्स को प्रदर्शित करते हैं। प्रत्येक आइसोडेपेन्स परिवहन लागत में होने वाली वृद्धि के स्तर को व्यक्त करते हैं। P बिन्दु से बाहर की तरफ अग्रसर होने पर प्रत्येक वृत्ताकार पथ क्रमश: परिवहन लागत में होने वाली वृद्धि को बढ़ते हुए क्रम में व्यक्त करते हैं। जैसे P बिन्दु के सबसे निकट वाला वृत्ताकार पथ परिवहन लागत में होने वाली 1 इकाई, दूसरा वृत्ताकार पथ 2 इकाई, तीसरा वृत्ताकार पथ 3 इकाई, चौथा वृत्ताकार पथ 4 इकाई तथा पाँचवा वृत्ताकार पथ 5 इकाई के बराबर वृद्धि को व्यक्त करता है।

आइसोडेपेन्स के माध्यम से औद्योगिक स्थानीयकरण में श्रम लागत की भूमिका को वेबर ने निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया-

माना कि कोई सस्ता श्रम केन्द्र ऐसा है जिस पर न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु P के सापेक्ष 4 इकाई के बराबर लागत में बचत होती है। यदि यह श्रम केन्द्र चौथे वृत्त के कहीं अन्दर स्थित है, जैसा कि चित्र में L_1 बिन्दु है तो ऐसी परिस्थिति में स्थानीयकरण बिन्दु न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु P से सस्ते श्रम केन्द्र के बिन्दु L_1 पर स्थानान्तरित होगा क्योंकि इस स्थिति में श्रम लागत में होने वाली बचत परिवहन लागत में होने वाली वृद्धि की तुलना में अधिक होगी। परन्तु यदि यह श्रम केन्द्र चौथे वृत्त के कहीं बाहर स्थित है जैसा कि चित्र में L_2 बिन्दु है तो ऐसी परिस्थिति में स्थानीयकरण बिन्दु न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु P से सस्ते श्रम केन्द्र के बिन्दु L_2 पर स्थानान्तरित नहीं होगा क्योंकि इस स्थिति में श्रम लागत में होने वाली बचत केवल 4 इकाई के बराबर है जबकि परिवहन लागत में होने वाली वृद्धि 4 इकाई से अधिक है।

वेबर ने अपने विश्लेषण के अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में श्रम लागत की भूमिका को स्पष्ट करने के लिए एक गुणांक का भी उल्लेख किया जिसे श्रम गुणांक के नाम से जाना जाता है। इस गुणांक को निम्न रूप में व्यक्त किया जाता है-

$$\text{श्रम गुणांक} = \frac{\text{श्रम लागत}}{\text{स्थानीयकरण भार}}$$

जहाँ पर

$$\text{स्थानीयकरण भार} = \frac{\text{कच्चे माल का भार} + \text{अन्तिम उत्पाद का भार}}{\text{अन्तिम उत्पाद का भार}}$$

अर्थात्

$$\text{स्थानीयकरण भार} = \text{पदार्थ गुणांक} + 1$$

श्रम गुणांक का मान जितना ही अधिक होगा स्थानीयकरण बिन्दु उतना ही ज्यादा श्रम केन्द्र की तरफ आकर्षित होगा। वहीं दूसरी तरफ श्रम गुणांक का मान जितना ही कम होगा स्थानीयकरण बिन्दु उतना ही कम श्रम केन्द्र की तरफ आकर्षित होगा।

(ग) केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीकरण के प्रवृत्ति की व्याख्या

वेबर ने अपने विश्लेषण में औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के साथ-साथ केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण के प्रवृत्तियों को भी स्पष्ट किया। इस सन्दर्भ में उन्होंने दो प्रकार के कारकों का उल्लेख किया जो निम्नवत् हैं-

1. औद्योगिक इकाई से प्राप्त होने वाले आन्तरिक आर्थिक मितव्ययिताएं
2. विभिन्न अन्य इकाईयों से प्राप्त होने वाले बाह्य आर्थिक मितव्ययिताएं

वेबर ने यह मत व्यक्त किया कि जब तक किसी क्षेत्र विशेष में आर्थिक मितव्ययिताएं प्राप्त होती रहेंगी तब तक उस क्षेत्र में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति जारी रहेगी। परन्तु जब किसी क्षेत्र विशेष में आर्थिक मितव्ययिताएं प्राप्त होना रुक जाय तो उस क्षेत्र में विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो जाती है।

7.4.5 सिद्धान्त की समीक्षा

वेबर द्वारा विकसित किया गया सिद्धान्त औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की प्रक्रिया का अत्यन्त ही वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसलिए इस सिद्धान्त को औद्योगिक स्थानीयकरण के एक उपयुक्त सिद्धान्त के रुप में स्वीकार किया जाता है। परन्तु इस सिद्धान्त की अनेक आधार पर आलोचना भी किया जाता है जो निम्नलिखित हैं-

1. यह सिद्धान्त निगमन प्रणाली पर आधारित होने के साथ-साथ अनेक अव्यावहारिक मान्यताओं पर आधारित है। इसलिए इस सिद्धान्त के आधार पर स्थानीयकरण अथवा केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण की वास्तविक स्थिति का आकलन नहीं किया जा सकता।
2. विभिन्न श्रम केन्द्रों पर असीमित मात्रा में श्रम की उपलब्धता तथा इन केन्द्रों के बीच श्रम का अगतिशीलता की मान्यता अव्यावहारिक है।
3. इस सिद्धान्त के अन्तर्गत पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता भी अव्यावहारिक है।
4. इस सिद्धान्त की इस आधार पर भी आलोचना किया जाता है कि यह सिद्धान्त औद्योगिक स्थानीयकरण में सभी कारकों को शामिल नहीं करता है।

7.5 सार्जेन्ट फ्लोरेन्स का सिद्धान्त

औद्योगिक स्थानीयकरण के सम्बन्ध में वेबर का सिद्धान्त निगमन पद्धति पर आधारित है जबकि फ्लोरेन्स ने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया वह आगमन पद्धति पर आधारित है। वस्तुत: फ्लोरेन्स ने अपने विश्लेषण के अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण का विश्लेषण करने के बजाय इसकी वास्तविक स्थिति का आकलन करने का प्रयास किया। अपने विश्लेषण के अन्तर्गत फ्लोरेन्स ने श्रम जनसंख्या के वितरण के आधार पर किसी क्षेत्र विशेष में औद्योगिक स्थानीयकरण अथवा केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के मापन की पद्धति को विकसित किया।

वस्तुत: फ्लोरेन्स के विश्लेषण में औद्योगिक स्थानीयकरण अथवा केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के मापन के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिकों के वितरण की सम्पूर्ण सूचना उपलब्ध होनी चाहिए। अर्थात् इसके लिए निम्नलिखित दो सूचनाएं आवश्यक होती हैं -

1. सम्बन्धित देश के विभिन्न क्षेत्रों में श्रमिकों की संख्या के वितरण की स्थिति क्या है।
2. देश के प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों के वितरण की स्थिति क्या है।

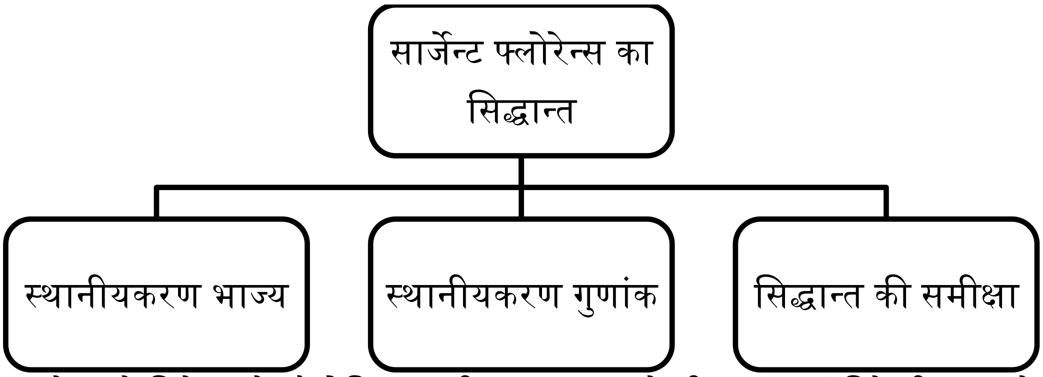

फ्लोरेन्स ने अपने विश्लेषण में औद्योगिक स्थानीयकरण अथवा केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण के मापन के लिए दो प्रकार के गुणांकों का प्रयोग किया। ये दो गुणांक हैं- 'स्थानीयकरण भाज्य' तथा 'स्थानीयकरण गुणांक'।

आगे की पंक्तियों में इन दोनों गुणांकों के गणना की पद्धति एवं इनके आधार पर स्थानीयकरण के मापन की प्रक्रिया को स्पष्ट किया जा रहा है।

7.5.1. स्थानीयकरण भाज्य

फ्लोरेन्स ने इस गुणांक को किसी क्षेत्र विशेष में किसी उद्योग विशेष के केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के मापन के लिए विकसित किया। इस गुणांक को निम्न रुप में व्यक्त किया जा सकता है-

$$\text{स्थानीयकरण भाज्य} = \frac{(Ii/\ Ni)\ x\ 100}{(Ri/N)\ x\ 100}$$

जहाँ पर

Ii = किसी क्षेत्र विशेष में किसी उद्योग विशेष के अन्तर्गत कार्यरत श्रमिकों की संख्या

Ni = सम्पूर्ण देश में सम्बन्धित उद्योग के अन्तर्गत कार्यरत श्रमिकों की संख्या

Ri = किसी क्षेत्र विशेष में कुल औद्योगिक श्रमिकों की संख्या

N = देश में कुल औद्योगिक श्रमिकों की संख्या

स्थानीयकरण भाज्य के आधार पर केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति का आंकलन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

1. यदि किसी उद्योग के लिए विभिन्न क्षेत्रों का स्थानीयकरण भाज्य का मान इकाई अथवा इसके अत्यधिक निकट है तो यह इस बात का परिचायक होता है कि वह उद्योग देश के सभी क्षेत्रों में समान रुप से वितरित है।
2. यदि किसी उद्योग के लिए किसी क्षेत्र में स्थानीयकरण भाज्य का मान इकाई से अधिक है तो यह इस बात का परिचायक होता है कि उस क्षेत्र में उस उद्योग के स्थानीयकरण की प्रवृत्ति अधिक है। स्थानीयकरण भाज्य का मान इकाई से जितना ही अधिक होगा उस क्षेत्र में उस उद्योग के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति भी उतना ही अधिक होगी।
3. यदि किसी उद्योग के लिए किसी क्षेत्र में स्थानीयकरण भाज्य का मान इकाई से कम है तो यह इस बात का परिचायक होता है उस क्षेत्र में उस उद्योग के स्थानीयकरण की प्रवृत्ति कम है। स्थानीयकरण भाज्य का मान इकाई से जितना ही कम होगा उस क्षेत्र में उस उद्योग के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति भी उतना ही कम होगा।
4. यदि किसी उद्योग के लिए किसी क्षेत्र में स्थानीयकरण भाज्य का मान शून्य है तो यह इस बात का परिचायक होता है कि उस क्षेत्र में उस उद्योग का सर्वथा अभाव है।

स्थानीयकरण भाज्य की गणना विधि को निम्नांकित सारणी के द्वारा समझा जा सकता है-

सारणी: 7.1 - स्थानीयकरण भाज्य की गणना

राज्य अथवा क्षेत्र	क्षेत्रवार श्रमिकों की संख्या	उद्योग X में कार्यरत श्रमिकों की संख्या	स्थानीयकरण भाज्य	
	(Ri)	**(Ii)**	$\frac{(Ii/Ni) \times 100}{(Ri/N) \times 100}$	
A	35 लाख	7 लाख	$\frac{(7/20) \times 100}{(35/100) \times 100}$	**= 1**
B	15 लाख	6 लाख	$\frac{(6/20) \times 100}{(15/100) \times 100}$	**= 2**
C	5 लाख	3 लाख	$\frac{(3/20) \times 100}{(5/100) \times 100}$	**= 3**
D	20 लाख	2 लाख	$\frac{(2/20) \times 100}{(20/100) \times 100}$	**= 0.5**
E	25 लाख	2 लाख	$\frac{(2/20) \times 100}{(25/100) \times 100}$	**= 0.4**
कुल योग	**N** **100** लाख	**Ni** **20** लाख		

उपरोक्त सारणी के दूसरी पंक्ति में एक देश के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान औद्योगिक श्रमिकों की संख्या को प्रदर्शित किया गया है तथा तीसरी पंक्ति में इन विभिन्न क्षेत्रों में स्थित एक उद्योग X में कार्यरत श्रमिकों की संख्या को प्रदर्शित किया गया है। उद्योग X के लिए विभिन्न क्षेत्रों के सन्दर्भ में स्थानीयकरण भाज्य की गणना को चौथी पंक्ति के पहले भाग तथा इनके मानों को दूसरे भाग में प्रदर्शित किया गया है। इस सारणी में दिये गये सूचना के आधार पर स्पष्ट है कि पाँचों क्षेत्रों में क्षेत्र C में उद्योग X के लिए स्थानीयकरण भाज्य का मान सबसे अधिक, अर्थात् 3 के बराबर है जबकि क्षेत्र E के लिए स्थानीयकरण भाज्य का मान सबसे कम, अर्थात् 0.4 के बराबर है। अत: इन सूचनाओं के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि उद्योग X की क्षेत्र C में स्थानीयकरण अर्थात् केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति सबसे अधिक है जबकि क्षेत्र E में यह प्रवृत्ति सबसे कम है।

7.5.2. स्थानीयकरण गुणांक

अपने विश्लेषण में फ्लोरेन्स ने इस गुणांक का प्रयोग किसी देश विशेष में विभिन्न उद्योगों के स्थानीयकरण की प्रवृत्ति के तुलनात्मक मापन के लिए किया। यदि देश विशेष में श्रमिकों का वितरण ज्ञात हो तो इस गुणांक की गणना प्रत्येक क्षेत्र में स्थित उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या के प्रतिशत के धनात्मक विचलनों के योग को 100 से भाग देकर प्राप्त किया जाता है। अर्थात् इस गुणांक को निम्न रुप से व्यक्त किया जा सकता है-

$$\text{स्थानीयकरण गुणांक} = \frac{\sum dx}{100}$$

जहाँ पर,

dx = |Xi – Ri| = एक उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या के प्रतिशत का क्षेत्र विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या के प्रतिशत से धनात्मक विचलन।

Xi = एक उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत।

Ri = एक क्षेत्र विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत।

इस गुणांक का मान जिस उद्योग के लिए जितना ही अधिक होगा उस उद्योग की उस देश के स्थानीयकरण की प्रवृत्ति भी उतनी ही अधिक होगी। वहीं दूसरी तरफ इस गुणांक का मान जिस उद्योग के लिए जितना ही कम होगा उस उद्योग की उस देश में स्थानीयकरण की प्रवृत्ति उतनी ही कम होगी।

इस गुणांक की गणना विधि को निम्नांकित सारणी के द्वारा समझा जा सकता है-

सारणी: 7.2 - स्थानीयकरण गुणांक की गणना

राज्य अथवा क्षेत्र	श्रमिकों का क्षेत्रवार प्रतिशत	उद्योग **X**		उद्योग **Y**	
		श्रमिकों का प्रतिशत	धनात्मक विचलन	श्रमिकों का प्रतिशत	धनात्मक विचलन
	(Ri)	**(Xi)**	**dx= |Xi – Ri|**	**(Yi)**	**dy= |Yi – Ri|**
A	35	40	5	10	--
B	15	20	5	20	5
C	5	15	10	40	20
D	20	10	--	25	5
E	25	15	--	5	--
योग	**100**	**100**	**20**	**100**	**30**
	स्थानीयकरण गुणांक		20/100= 0.20		30/100= 0.30

उपरोक्त सारणी में एक के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित दो उद्योगों- X तथा Y में विद्यमान श्रमिकों के वितरण की स्थिति को क्रमश: दूसरे, तीसरे तथा पाँचवें स्तम्भों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। दोनों उद्योगों कार्यरत श्रमिकों की संख्या के प्रतिशत का क्षेत्र विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या के प्रतिशत से धनात्मक विचलन को क्रमश: चौथे तथा छठवें स्तम्भों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। सारणी के अन्तिम पंक्ति में इन दोनों उद्योगों के लिए स्थानीयकरण गुणांकों के मान को प्रदर्शित किया गया है। स्पष्ट है कि उद्योग X की अपेक्षा उद्योग Y के लिए स्थानीयकरण गुणांक का मान अधिक है जो इस बात का परिचायक है कि उद्योग Y में उद्योग X की अपेक्षा स्थानीयकरण अर्थात् केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति ज्यादे है। इसी प्रकार यदि अन्य उद्योगों के सन्दर्भ में सूचनाएं ज्ञात हों तो इनके लिए भी केन्द्रीयकरण के सापेक्षिक प्रवृत्ति का आंकलन किया जा सकता है।

7.5.3. सिद्धान्त की समीक्षा

औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में फ्लोरेन्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त आगमन पद्धति पर आधारित होने कारण काफी उपयोगी सिद्धान्त है तथा इस सिद्धान्त की सहायता से

औद्योगिक स्थानीयकरण के वास्तविक स्थिति का आकलन किया जा सकता है। फिर भी इस सिद्धान्त की कई आधार पर आलोचना की जाती है जो निम्नवत् हैं-

1. यह सिद्धान्त किसी देश में विद्यमान औद्योगिक वितरण अथवा विद्यमान स्थानीयकरण की प्रवृत्ति का मापन करने में तो सहायक है परन्तु 'कारण प्रभाव' विश्लेषण करने में असमर्थ है। अर्थात् यह सिद्धान्त किसी देश अथवा क्षेत्र में विभिन्न उद्योगों के केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीयकरण के कारणों पर कोई प्रकाश नहीं डालता है।
2. उपरोक्त दोष के कारण ही यह सिद्धान्त औद्योगिक स्थानीयकरण के सन्दर्भ में भावी नीति निर्माण में सहायक नहीं है।
3. स्थानीयकरण के मापन में प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न गुणांक भ्रामक निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं।

उपरोक्त दोषों के आधार पर ही कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह मत व्यक्त किया है कि औद्योगिक स्थानीयकरण के सन्दर्भ में प्रस्तुत किये गये दोनों सिद्धान्तों में से किसी को पूर्ण नहीं माना जा सकता है। परन्तु दोनों सिद्धान्त औद्योगिक स्थानीयकरण विश्लेषण में एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं।

7.6 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में वेबर का सिद्धान्त आगमन पद्धति पर आधारित है।
2. वेबर के सिद्धान्त में विभिन्न क्षेत्रों के बीच श्रम के गतिशीलता को स्वीकार नहीं किया गया है।
3. औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में वेबर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त सभी निर्धारक कारकों पर विचार करता है।
4. सार्जेण्ट फ्लोरेन्स का सिद्धान्त औद्योगिक स्थानीयकरण के केवल वास्तविक आकलन पर विचार करता है।
5. औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में सार्जेण्ट फ्लोरेन्स द्वारा विकसित सिद्धान्त अनेक अमूर्त मान्यताओं पर आधारित है।

7.7 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में प्रचलित दो सिद्धान्तों की विवेचना किया गया- एक तो अल्फ्रेड वेबर का सिद्धान्त और दूसरा सार्जेण्ट फ्लोरेन्स का सिद्धान्त। वेबर ने अपने सिद्धान्त के अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण की व्याख्या विशुद्ध रुप से आर्थिक कारकों के आधार पर प्रस्तुत किया गया। वस्तुत: वेबर ने अपने विश्लेषण में औद्योगिक स्थानीयकरण के साम्य की स्थिति को दो घटकों- परिवहन लागत तथा श्रम लागत के आधार पर निर्धारित किया। अपने विश्लेषण में वेबर ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि दी हुई श्रम लागत की दशा के अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण की साम्य स्थिति का निर्धारण उस स्थान पर होता है जहां पर परिवहन लागत न्यूनतम होती है। इसके साथ ही साथ औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में श्रम लागत की भूमिका को स्पष्ट करते हुए यह निष्कर्ष भी प्रस्तुत किया कि यदि न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु के सापेक्ष कोई ऐसा बिन्दु है जिस पर श्रम लागत अपेक्षाकृत कम है तो न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु का स्थानीयकरण बिन्दु सस्ते श्रम केन्द्र पर स्थानान्तरित हो सकता है बशर्ते कि श्रम लागत में होने वाली बचत परिवहन लागत में होने वाली वृद्धि की अपेक्षा अधिक हो। इसके साथ ही साथ वेबर ने अपने विश्लेषण में औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में परिवहन लागत तथा श्रम लागत की भूमिका को स्पष्ट करने के लिए क्रमश: दो गुणांको- पदार्थ गुणांक एवं श्रम गुणांक का भी उल्लेख किया। वेबर ने अपने विश्लेषण में औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के साथ-साथ केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण के प्रवृत्तियों को भी स्पष्ट किया। इस सन्दर्भ में उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि जब तक किसी क्षेत्र विशेष में आर्थिक मितव्ययिताएं प्राप्त होती रहेंगी तब तक उस क्षेत्र में

केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति जारी रहेगी। परन्तु जब किसी क्षेत्र विशेष में आर्थिक मितव्ययिताएं प्राप्त होना रुक जाय तो उस क्षेत्र में विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो जाती है।

औद्योगिक स्थानीयकरण के सम्बन्ध में वेबर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त इस समस्या का विश्लेषण करता है कि दी गयी दशाओं के अन्तर्गत औद्योगिक स्थानीयकरण के साम्य स्थिति का निर्धारण किस प्रकार होता है। दूसरी तरफ सार्जेण्ट फ्लोरेन्स ने जिस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया उसके अन्तर्गत उन्होने औद्योगिक स्थानीयकरण के स्थिति का निर्धारण करने के बजाय इसकी वास्तविक स्थिति का आकलन करने का प्रयास किया। अपने विश्लेषण के अन्तर्गत फ्लोरेन्स ने श्रम जनसंख्या के वितरण के आधार पर किसी क्षेत्र विशेष में औद्योगिक स्थानीयकरण अथवा केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के मापन की पद्धति को विकसित किया। औद्योगिक स्थानीयकरण अथवा केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण के मापन के लिए दो प्रकार के गुणांकों का प्रयोग किया। ये दो गुणांक हैं- 'स्थानीयकरण भाज्य' तथा 'स्थानीयकरण गुणांक'। अपने विश्लेषण में उन्होंने स्पष्ट किया कि किसी उद्योग के लिए किसी क्षेत्र विशेष में स्थानीयकरण भाज्य का मान इकाई से जितना ही अधिक होगा उस क्षेत्र में उस उद्योग के स्थानीयकरण की प्रवृत्ति भी उतनी ही अधिक होगी। अपने विश्लेषण में फ्लोरेन्स ने स्थानीयकरण गुणांक का प्रयोग किसी देश विशेष में विभिन्न उद्योगों के स्थानीयकरण की प्रवृत्ति के तुलनात्मक मापन के लिए किया तथा यह स्पष्ट किया कि इस गुणांक का मान जिस उद्योग के लिए जितना ही अधिक होगा उस उद्योग की उस देश के स्थानीयकरण की प्रवृत्ति भी उतनी ही अधिक होगी। वहीं दूसरी तरफ इस गुणांक का मान जिस उद्योग के लिए जितना ही कम होगा उस उद्योग की उस देश में स्थानीयकरण की प्रवृत्ति उतनी ही कम होगी।

7.8 शब्दावली

- **स्थैतिक दशाऐं-** इसका अभिप्राय उस स्थिति से होता है जबकि किसी प्रणाली अथवा व्यवहार के विश्लेषण के अन्तर्गत समस्त निर्धारक घटकों में से अनेक घटकों को अपरिवर्तनीय मान कर कुछ घटकों के प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है।
- **आगमन प्रणाली-** इसका अभिप्राय अध्ययन की एक ऐसी प्रणाली से होता है जिसके अन्तर्गत विशिष्ट इकाईयों के निरीक्षण से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं।
- **निगमन प्रणाली-** इसका अभिप्राय अध्ययन की एक ऐसी प्रणाली से होता है जिसके अन्तर्गत सामान्य सत्य अथवा सामान्य निष्कर्षों के आधार पर विशिष्ट इकाईयों के बारे में निष्कर्ष निकाले जाते हैं।
- **स्थानीयकरण त्रिभुज-** औद्योगिक स्थानीयकरण के विश्लेषण के सन्दर्भ में प्रतिपादित वेबर के सिद्धान्त के प्रारुप में दो कच्चे माल के केन्द्र एवं एक बाजार के केन्द्र को एक त्रिभुज के तीन कोनों के रुप में व्यक्त किया जाता है। इस त्रिभुज को ही स्थानीयकरण त्रिभुज के नाम से जाना जाता है।
- **थ्योरम ऑफ पैरेलेलोग्राम-** यह एक गणितीय सिद्धान्त है जिसकी सहायता से किसी वस्तु अथवा बिन्दु पर विभिन्न प्रकार के प्रतिकारी शक्तियों के सन्तुलन बिन्दु का निर्धारण किया जाता है।
- **आइसोडेपेन्स-** औद्योगिक स्थानीयकरण के विश्लेषण के सन्दर्भ में प्रतिपादित वेबर के सिद्धान्त के प्रारुप में न्यूनतम परिवहन लागत के ऊपर परिवहन लागत में होने वाली वृद्धि को न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु के सापेक्ष विभिन्न वृत्ताकार पथों के रुप में प्रदर्शित किया जाता है। इन वृत्ताकार पथों को ही आइसोडेपेन्स कहा जाता है।
- **आन्तरिक आर्थिक मितव्ययिताएं-** किसी फर्म अथवा औद्योगिक इकाई को अपने स्वयं के क्रिया-कलाप से लागतों में होने वाली बचतें आन्तरिक आर्थिक मितव्ययिताओं को व्यक्त करती हैं।
- **बाह्य आर्थिक मितव्ययिताएं-** किसी फर्म अथवा औद्योगिक इकाई को अन्य फर्मों के क्रिया-कलाप के कारण लागतों में होने वाली बचतें बाह्य आर्थिक मितव्ययिताओं को व्यक्त करती हैं।
- **कारण प्रभाव विश्लेषण-** विश्लेषण का वह स्वरुप जिसके अन्तर्गत कुछ कारकों का किसी स्थिति अथवा व्यवहार पर उत्पन्न होने वाले परिणामों का अध्ययन किया जाता है कारण प्रभाव विश्लेषण कहलाता है।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य
4. सत्य 5. असत्य

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Chapman K and D.F. Walker (1991): ***Industrial Location – Principle and Policies,*** Basil Blackwell, Oxford.
- Smith, D.M. (1971): ***Industrial Location – An Economic Geographic Analysis,*** John Wiley & Sons, New York.
- Kuchhal, S.C. (1978): ***Industrial Economy of India*** Chaitanya Publishing House, Allahabad.

7.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Barthwal, R.R. (2005): ***Industrial Economics – An Introductory Textbook***, New Age International Publishers, New Delhi.
- Stephen, Martin (1989): ***Industrial Economics - Economic Analysis and Public Policy***, MacMillan Publishing Co. New York.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, NewDelhi.
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में वेबर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।
2. औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण में परिवहन लागत तथा श्रम लागत की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
3. क्या आप समझते हैं कि औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में वेबर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त औद्योगिक स्थानीयकरण के वास्तविक प्रवृत्ति का आंकलन करने में समर्थ है? अपने विचार को विस्तारपूर्वक स्पष्ट कीजिए।
4. औद्योगिक स्थानीयकरण के निर्धारण के सन्दर्भ में सार्जेण्ट फ्लोरेन्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की समीक्षात्मक विवेचना कीजिए।

इकाई-8 औद्योगिक असन्तुलन: कारण और मापन

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 औद्योगिक असन्तुलन का अभिप्राय
8.4 औद्योगिक असन्तुलन के कारण
8.5 औद्योगिक असन्तुलन का मापन
8.5.1. क्षेत्रीय असन्तुलन का मापन
8.5.2. संरचनात्मक असन्तुलन का मापन
8.5.3. औद्योगिक संकेन्द्रण का मापन
8.6 अभ्यास प्रश्न
8.7 सारांश
8.8 शब्दावली
8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

किसी देश के औद्योगिक जगत के अन्तर्गत घटित होने वाले विभिन्न प्रभावों में से एक प्रभाव होता है- औद्योगिक असन्तुलन और इसके सन्दर्भ में अनेक पहलू होते हैं जिनका अध्ययन करना आवश्यक होता है जैसे- औद्योगिक असन्तुलन का अर्थ, औद्योगिक असन्तुलन के कारण एवं इसका मापन, औद्योगिक असन्तुलन के प्रभाव इत्यादि। इस इकाई के अन्तर्गत प्रारम्भिक दो पहलुओं अर्थात् औद्योगिक असन्तुलन का अर्थ तथा औद्योगिक असन्तुलन के कारण एवं इसके मापन के बारे में विस्तारपूर्वक विवेचना प्रस्तुत किया जा रहा है। शेष पहलुओं पर अगली इकाई में विचार किया जायेगा।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप निम्नलिखित तथ्यों को समझने में सक्षम होंगें -

- ✓ औद्योगिक असन्तुलन का अर्थ क्या होता है।
- ✓ औद्योगिक असन्तुलन के विभिन्न स्वरुप कौन-कौन से होते है।
- ✓ औद्योगिक असन्तुलन के कारण क्या होते हैं।
- ✓ औद्योगिक असन्तुलन का मापन किस प्रकार किया जाता है।

8.3 औद्योगिक असन्तुलन की अवधारणा

औद्योगिक असन्तुलन का अभिप्राय किसी देश के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान औद्योगिक इकाईयों के वितरण की प्रकृति से होता है। यदि किसी देश विशेष में औद्योगिक वितरण की प्रकृति असमान है तो यह स्थिति अद्योगिक असन्तुलन की द्योतक होगी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यदि एक देश के अन्तर्गत औद्योगिक विकास के स्तर में असमानता की स्थिति विद्यमान है तो यह स्थिति सम्बन्धित देश में औद्योगिक असन्तुलन की द्योतक होगी। औद्योगिक असन्तुलन की यह अवधारणा केवल इसके सामान्य अर्थ को व्यक्त करती है। यदि व्यापक रुप में विचार किया जाए तो किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति तीन रुपों में विद्यमान हो सकती है। ये तीनों रुप हैं -

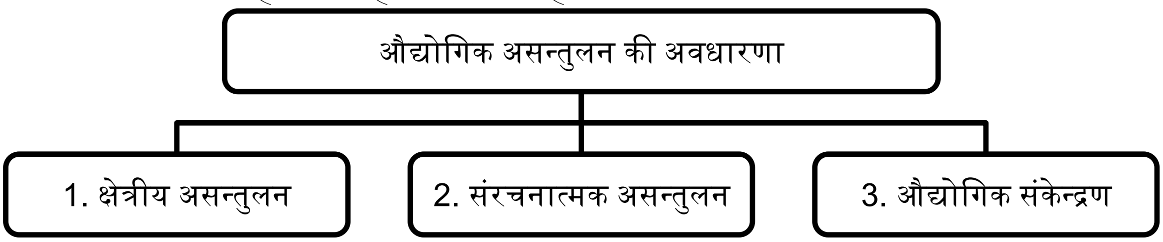

आगे की पंक्तियों में इन तीनों रुपों को स्पष्ट किया जा रहा है।

1. **क्षेत्रीय असन्तुलन -** क्षेत्रीय असन्तुलन का अभिप्राय उस स्थिति से होता है जब एक देश के अन्तर्गत स्थिति विभिन्न क्षेत्रों अथवा प्रदेशों के औद्योगिक विकास के स्तर में असमानता की स्थिति विद्यमान हो। अर्थात् जब एक देश में औद्योगिक स्थनीयकरण की प्रक्रिया देश के कुछ क्षेत्रों में ही केन्द्रित हो तो यह स्थिति सम्बन्धित देश में क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन की द्योतक होगी। उदाहरण के लिए यदि भारत के औद्योगिक स्थिति पर विचार किया जाए तो हम पाते हैं कि कुछ राज्यों जैसे- महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, गुजरात, तमिलनाडु, दिल्ली, पंजाब एवं हरियाणा ऐसे राज्य हैं जिनमें देश के अन्य राज्यों की तुलना में औद्योगिक इकाइयों के स्थानीयकरण की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। इसका परिणाम यह है कि ये राज्य औद्योगिक दृष्टि से काफी विकसित हैं जबकि देश के अन्य राज्य औद्योगिक विकास की दृष्टि से काफी पीछे हैं। अत: यह स्थिति भारत में क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन को व्यक्त करती है।
2. **संरचनात्मक असन्तुलन -** संरचनात्मक असन्तुलन का अभिप्राय उस स्थिति से होता है जबकि कि देश के औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया में केवल कुछ उद्योगो के विकास की ही बहुलता हो तथा अन्य उद्योगों की सीमितता की स्थिति हो। उदाहरण के लिए भारत में ब्रिटिश शासन की अवधि में केवल

उपभोक्ता उद्योगों के विकास को ही प्राथमिकता दी गयी और आधारभूत एवं पूँजीगत उद्योगों के विकास के प्रति उदासीनता की नीति अपनायी गयी। इसके परिणामस्वरुप इस दौरान देश में जो कुछ भी औद्योगिक विकास हुआ उसमें उपभोक्ता उद्योगों की ही बहुलता रही। इसका परिणाम यह हुआ कि इस अवधि में देश में संरचनात्मक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान रही।

3. **औद्योगिक संकेन्द्रण -** औद्योगिक सन्केन्द्रण का तात्पर्य असन्तुलन के उस स्वरुप से होता है जब हम किसी उद्योग विशेष के सन्दर्भ में विचार करते हैं। यदि एक देश के किसी उद्योग विशेष में फर्मों अर्थात् औद्योगिक इकाईयों का वितरण असमान है तो यह स्थिति औद्योगिक सन्केन्द्रण को व्यक्त करेगी। इसका अभिप्राय यह है कि यदि किसी उद्योग के अन्तर्गत विभिन्न औद्योगिक गतिविधियों, जैसे- उत्पादन, विक्रय, परिसम्पत्तियों इत्यादि का अधिकांश भाग कुछ ही फर्मों के पास केन्द्रित हों तो यह स्थिति सम्बन्धित उद्योग में असमान औद्योगिक वितरण की प्रतीक होगी तथा यह परिस्थिति सम्बन्धित उद्योग में असन्तुलन अर्थात् सन्केन्द्रण की स्थिति को व्यक्त करेगी। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश शासन काल के दौरान तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी लगभग दो दशकों तक भारत के औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक सन्केन्द्रण की स्थिति विद्यमान रही क्योंकि इस अवधि में देश का जो भी औद्योगिक विकास हुआ उसमें 'बड़े-बड़े व्यापारिक घरानों' का ही प्रभुत्व रहा।

8.4 औद्योगिक असन्तुलन के कारण

यदि व्यापक रुप में देखा जाए तो यह तथ्य सामने आती है कि एक देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति के उत्पन्न होने का यह कारण होता है कि देश के कुछ क्षेत्रों में अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा औद्योगिक स्थानीयकरण अर्थात् केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति अधिक होती है। अत: किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन को उत्पन्न करने के लिए वे ही कारक उत्तरदायी होते हैं जो औद्योगिक स्थानीयकरण अर्थात् केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को निर्धारित करते हैं। फिर भी, यदि स्पष्ट रुप से देखा जाए तो किसी देश विशेष अथवा क्षेत्र विशेष में औद्योगिक असन्तुलन के विद्यमान होने के लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी हो सकते हैं-

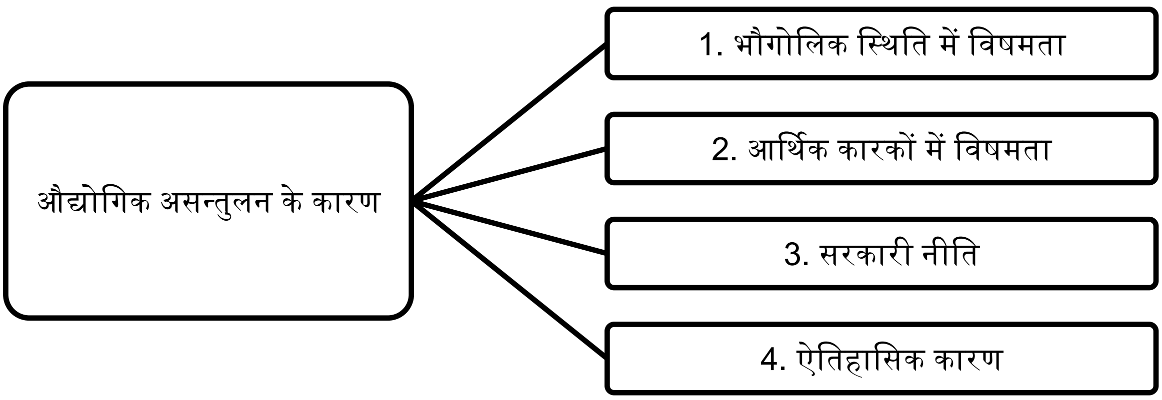

1. **भौगोलिक स्थिति में विषमता -** एक देश में औद्योगिक असन्तुलन विद्यमान होने का एक प्रमुख कारण उस देश के विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति में विषमता होना हो सकता है। क्योंकि भौगोलिक स्थिति में विषमता होने के कारण विभिन्न क्षेत्रों में औद्योगिकीकरण के लिए आवश्यक संसाधनों, जैसे- भूमि, प्राकृतिक सम्पदा, परिवहन सुविधाओं, मानव संसाधन इत्यादि की उपलब्धता में भिन्नता हो सकती हैं। कुछ क्षेत्रों में ये संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो सकते हैं जबकि कुछ क्षेत्रों में इनकी उपलब्धता सीमित हो सकती है अथवा हो ही नहीं सकती है। स्पष्ट है कि जिन क्षेत्रों में संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होगें उन क्षेत्रों में औद्योगिकीकरण की प्रवृत्ति अधिक होगी जबकि जिन क्षेत्रों में संसाधनों की सीमितता अथवा अभाव होगा उन क्षेत्रों में औद्योगिकीकरण की प्रवृत्ति कम होगी अथवा होगी ही नहीं। इस प्रकार भौगालिक स्थिति में विषमता किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन का कारण हो सकती है।

2. **आर्थिक कारकों में विषमता -** किसी देश अथवा क्षेत्र के अन्तर्गत औद्योगिक असन्तुलन विद्यमान होने के लिए कुछ आर्थिक कारक भी उत्तरदायी हो सकते हैं। इन कारकों में एक कारक यह हो सकता है कि देश के विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों की लागतों जैसे- वेतन एवं मजदूरी की दर, भूमि एवं भवन के किराये, ब्याज दर इत्यादि में भिन्नता हो। ठीक इसी प्रकार देश के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न सुविधाओं जैसै- शिक्षा, स्वास्थ, आवास, वित्तीय एवं बैंकिंग सुविधाओं की स्थिति में भिन्नता हो सकती हैं। स्पष्ट है कि जिन क्षेत्रों में संसाधनों के लागत कम होंगें तथा विभिन्न सुविधाएं प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होगें उन क्षेत्रों में औद्योगिकीकरण की प्रवृत्ति अधिक होगी जबकि जिन क्षेत्रों में संसाधनों के लागत अधिक होंगें तथा विभिन्न सुविधाएं सीमित मात्रा में उपलब्ध होगें उन क्षेत्रों में औद्योगिकीकरण की प्रवृत्ति कम होगी।

   इतना ही नहीं, एक देश के अन्तर्गत कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जहां औद्योगिकीकरण के लिए आवश्यक आधारभूत सुविधाएं जैसै- सड़क, बिजली इत्यदि सुविधाएं अपेक्षाकृत विकसित अवस्था में पहुँच जाते हैं जबकि अन्य क्षेत्रों में ये सुविधाएं या तो कम विकसित होती हैं या विकसित ही नहीं होती हैं। अत: आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता में विषमता की स्थिति भी एक देश में औद्योगिक असन्तुलन के लिए उत्तरदायी आर्थिक कारक हो सकता है। इसके अलावा, एक देश में औद्योगिक असन्तुलन के उत्पन्न होने के लिए एक अन्य आर्थिक कारक भी उत्तरदायी होता है और वह है 'आर्थिक मितव्ययिताओं' का प्राप्त होना। जिन क्षेत्रों में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया सबसे पहले प्रारम्भ होती है उन क्षेत्रों में स्थापित औद्योगिक इकाईयों से अनेक प्रकार की बाह्य मितव्ययिताएं प्राप्त होती रहती हैं। ये मितव्ययिताएं नये-नये निवेश को आकर्षित करती रहती हैं जिससे इन क्षेत्रों में औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रवृत्ति अधिक होती है। इस प्रकार एक देश के विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक कारकों में विषमता की स्थिति उस देश में औद्योगिक असन्तुलन का कारण हो सकती है।

3. **सरकारी नीति -** किसी देश अथवा क्षेत्र विशेष में औद्योगिक असन्तुलन के उत्पन्न होने के लिए सरकारी नीति भी उत्तरदायी हो सकती है। यदि औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया के लिए सरकारी नीति के प्रारुप को निर्धारित करते समय देश के विभिन्न क्षेत्रों की भौगालिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्थित को ध्यान में न रखा गया हो और सभी क्षेत्रों के लिए एक समान नीति को लागू कर दिया गया हो तो इसके फलस्वरुप देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इतना ही नहीं यदि सरकार देश के अविकसित क्षेत्रों की भौगोलिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्थित को ध्यान में रखते हुए अपनी नीति को निर्धारित करे परन्तु इन नीतियों में 'सरलता एवं पारदर्शिता' का अभाव हो तो इसके फलस्वरुप अविकसित क्षेत्रों के औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया अवरुद्ध हो सकती है और देश में क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान हो सकती है। उदाहरण के लिए, भारत के औद्योगिक विकास में ब्रिटिश शासन के दौरान तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी सरकार की दोषपूर्ण नीति के कारण क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान रही।

   इतना ही नहीं, सरकार की दोषपूर्ण नीति के कारण एक देश के औद्योगिक जगत में संरचनात्मक असन्तुलन एवं औद्योगिक सन्केन्द्रण की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है। जैसे कि, ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में केवल उपभोक्ता उद्योगो के विकास को ही प्राथमिकता दी गयी तथा पूँजीगत एवं आधारभूत उद्योगों के प्रति उदासीनता की नीति अपनायी गयी। जिसका परिणाम यह हुआ कि देश में आधारभूत एवं पूँजीगत उत्पादों की अभाव की स्थिति विद्यमान रही। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी देश की सरकार ने औद्योगिक विकास के लिए जिस नीति को अपनाया उससे आधारभूत एवं पूँजीगत उद्योगों का विकास तो हुआ परन्तु यह विकास इतना अधिक हुआ कि इन उद्योगों में अतिउत्पादन की स्थिति उत्पन्न होने लगी।

4. **ऐतिहासिक कारण -** किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन के उत्पन्न होने के लिए उस देश की ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि भी उत्तरदायी हो सकती है। इसका कारण यह है कि एक देश में कुछ ऐसी

ऐतिहासिक परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जिसके फलस्वरूप औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रक्रिया देश के कुछ क्षेत्र विशेष में ही केन्द्रित होने लगती है। उदाहरण के लिए भारत में ब्रिटिश शासन की अवधि में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने व्यापारिक हितों को साधने के लिए देश के तटीय क्षेत्रों में स्थित कुछ शहरों को ही व्यापारिक केन्द्र के रुप में विकसित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि इन शहरों में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया निरन्तर आगे बढ़ती गयी जबकि देश के अन्य क्षेत्र पीछे होते गये। वस्तुत: ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में उद्योगों के क्षेत्रीय सन्तुलन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में औद्योगिक गतिविधियों का केन्द्रीकरण बड़े बन्दरगाहों के आस-पास होता गया और मुम्बई एवं कोलकाता देश के दो ऐसे शहर रहे जो सबसे अधिक केन्द्रीकृत उद्योगों के क्षेत्र के रुप में विकसित होते गये।

8.5 औद्योगिक असन्तुलन का मापन

औद्योगिक असन्तुलन की अवधारणा एवं इसके लिए उत्तरदायी कारणों को समझने के पश्चात यह आवश्यक हो जाता है कि इस तथ्य को भी समझा जाए कि वे कौन से मापक होते हैं जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी देश अथवा क्षेत्र में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान है अथवा नहीं। किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति का आकलन अनेक सूचकों के आधार पर किया जाता है। वस्तुत: कौन सा सूचक प्रयोग किया जायेगा यह इस तथ्य के ऊपर निर्भर करता है कि असन्तुलन की प्रकृति किस प्रकार की है।

असन्तुलन के विभिन्न प्रकृति के मापन के लिए जो सूचक प्रयोग किये जा सकते हैं उनकी विवेचना निम्नवत् है-

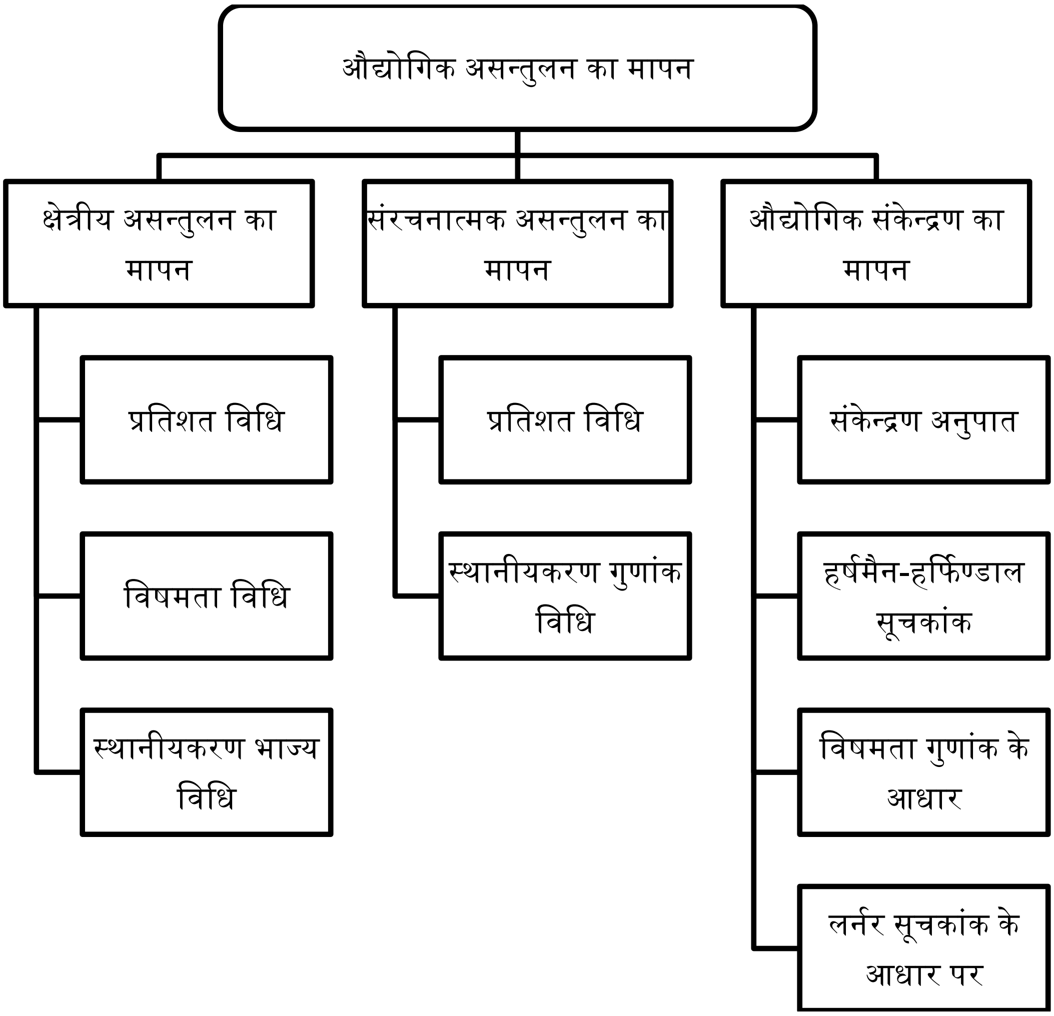

8.5.1. क्षेत्रीय असन्तुलन का मापन

क्षेत्रीय असन्तुलन के मापन के लिए तीन प्रकार की विधियां प्रचलित हैं- प्रतिशत विधि, विषमता विधि और स्थानीयकरण भाज्य विधि। आगे की पंक्तियों में इन तीनों विधियों को स्पष्ट किया जा रहा है-

1. प्रतिशत विधि

इस विधि के अन्तर्गत असन्तुलन की स्थिति का आकलन कुछ प्रतिशतों की गणना के आधार पर किया जाता है। ये प्रतिशत निम्न प्रकार के हो सकते हैं-

1. विभिन्न क्षेत्रों अथवा राज्यों में स्थापित औद्योगिक इकाइयों का देश में स्थापित कुल औद्योगिक इकाईयों से प्रतिशत।
2. विभिन्न क्षेत्रों अथवा राज्यों में किये गये पूँजी निवेश का देश के कुल औद्योगिक पूंजी विनियोग से प्रतिशत।
3. देश के कुल औद्योगिक श्रमिकों में विभिन्न क्षेत्रों अथवा राज्यों के औद्योगिक श्रमिकों का प्रतिशत।
4. देश के कुल औद्योगिक उत्पादन में विभिन्न क्षेत्रों अथवा राज्य के औद्योगिक उत्पादन का प्रतिशत।

यदि किसी देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए प्राप्त किये गये उपरोक्त प्रतिशतों में असमानता की स्थिति है तो यह इस बात का द्योतक होगा कि उस देश में क्षेत्रीय असन्तुलन की स्थिति विद्यमान है। विभिन्न क्षेत्रों के लिए गणना किये गये प्रतिशतों में जितनी ही असमानता होगी असन्तुलन की स्थिति भी उतनी ही गहन होगी।

2. विषमता विधि

औद्योगिक असन्तुलन की समस्या चूँकि 'वितरण की समस्या' से सम्बन्धित है इसलिए इसका मापन सांख्यिकी पद्धति के अन्तर्गत विषमता के मापन के लिए विकसित गुणांकों के आधार पर भी किया जा सकता है। अत: इस विधि के अन्तर्गत क्षेत्रीय असन्तुलन का मापन निम्न सूत्र के आधार पर किया जा सकता है-

$$V = \sqrt{1/n \sum (X_i - X)^2}$$

जहाँ पर,

X_i प्रत्येक क्षेत्र अथवा राज्य में औद्योगिक इकाईयों अथवा पूँजी निवेश अथवा औद्योगिक उत्पादन अथवा औद्योगिक श्रमिकों के औसत मान को व्यक्त करता है। X सम्पूर्ण देश में स्थिति कुल औद्योगिक इकाईयों अथवा पूँजी निवेश अथवा औद्योगिक उत्पादन अथवा औद्योगिक श्रमिकों के औसत मान को व्यक्त करता है। n देश में स्थिति विभिन्न राज्यों की संख्या को व्यक्त करता है।

V सम्पूर्ण देश में स्थिति कुल औद्योगिक इकाईयों अथवा पूँजी निवेश अथवा औद्योगिक उत्पादन अथवा औद्योगिक श्रमिकों के 'मानक विचलन' को व्यक्त करता है। इसका मान शून्य से जितना ही अधिक होगा देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति भी उतनी ही अधिक होगी।

3. स्थानीयकरण भाज्य विधि

औद्योगिक असन्तुलन की समस्या चूँकि 'औद्योगिक स्थानीयकरण की समस्या' से भी सम्बन्धित है इसलिए क्षेत्रीय असन्तुलन का मापन सार्जेण्ट फ्लोरेन्स द्वारा विकसित गुणांकों के आधार पर भी किया जा सकता हैं। विशेषकरके फ्लोरेन्स द्वारा विकसित 'स्थानीयकरण भाज्य' की गणना के आधार पर क्षेत्रीय असन्तुलन का मापन किया जा सकता हैं। इस गुणांक की गणना निम्न सूत्र के द्वारा किया जाता है-

$$\text{स्थानीयकरण भाज्य} = \frac{(\mathbf{Ii/\ Ni})\ \mathbf{x\ 100}}{(\mathbf{Ri/N})\ \mathbf{x\ 100}}$$

जहाँ पर

Ii किसी क्षेत्र विशेष में किसी उद्योग विशेष के अन्तर्गत कार्यरत श्रमिकों की संख्या को तथा Ni सम्पूर्ण देश में उद्योग विशेष के अन्तर्गत कार्यरत श्रमिकों की संख्या को व्यक्त करता है। Ri किसी क्षेत्र विशेष में कुल औद्योगिक श्रमिकों की संख्या को तथा N देश में कुल औद्योगिक श्रमिकों की संख्या को व्यक्त करता है।

उपरोक्त सूत्र के आधार पर किसी देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए स्थानीयकरण भाज्य की गणना की जा सकती है और इसके आधार पर क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति का मापन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

यदि किसी देश के कुछ क्षेत्रों के लिए स्थानीयकरण भाज्य का मान इकाई से अधिक तथा कुछ क्षेत्रों के लिए इसका मान इकाई से कम अथवा शून्य के बराबर है यह स्थिति देश में क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति की द्योतक होगी। परन्तु यदि देश के सभी क्षेत्रों के लिए स्थानीयकरण भाज्य का मान इकाई के आस-पास ही प्राप्त होता है तो यह स्थिति देश में औद्योगिक सन्तुलन की स्थिति को व्यक्त करेगी।

8.5.2. संरचनात्मक असन्तुलन का मापन

संरचनात्मक असन्तुलन के मापन दो प्रकार की विधियों के द्वारा किया जा सकता है- प्रतिशत विधि और स्थानीयकरण गुणांक विधि। आगे की पंक्तियों में इन दोनों विधियों को स्पष्ट किया जा रहा है-

1. प्रतिशत विधि

इस विधि के अन्तर्गत संरचनात्मक असन्तुलन के आकलन के लिए सामान्य रुप से कुछ प्रतिशतों की गणना किया जाता है। ये प्रतिशत निम्न प्रकार के हो सकते हैं-

1. विभिन्न प्रकार के उद्योगों, अर्थात् आधारभूत उद्योग, पूँजीगत उद्योग, मध्यवर्ती उद्योग एवं उपभोक्ता उद्योग में किये गये पूँजी निवेश का देश के समस्त उद्योगों में किये गये पूंजी निवेश से प्रतिशत।
2. देश के कुल औद्योगिक उत्पादन में विभिन्न प्रकार के उद्योगों के औद्योगिक उत्पादन का प्रतिशत।

यदि देश के विभिन्न उद्योगों के लिए प्राप्त किये गये उपरोक्त प्रतिशतों में असमानता की स्थिति है तो यह स्थिति उस देश में संरचनात्मक असन्तुलन की द्योतक होगी। विभिन्न प्रकार के उद्योगों के लिए प्राप्त प्रतिशतों में जितनी ही असमानता होगी असन्तुलन की स्थिति भी उतनी ही अधिक होगी।

2. स्थानीयकरण गुणांक विधि

संरचनात्मक असन्तुलन का मापन सार्जेण्ट फ्लोरेन्स द्वारा विकसित किये गये गुणांक के आधार पर भी किया जा सकता हैं। वस्तुत: फ्लोरेन्स द्वारा विकसित 'स्थानीयकरण गुणांक' के आधार पर क्षेत्रीय असन्तुलन का मापन किया जा सकता हैं। यदि एक देश विशेष में श्रमिकों का वितरण ज्ञात हो तो इस गुणांक की गणना निम्नलिखित सूत्र के द्वारा किया जाता है-

$$\text{स्थानीयकरण गुणांक} = \sum dx\ /100$$

जहाँ पर,

dx =|Xi – Ri| = एक उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या के प्रतिशत का क्षेत्र विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या के प्रतिशत से धनात्मक विचलन।

Xi = एक उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत।

Ri = देश के एक क्षेत्र विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत।

उपरोक्त सूत्र के आधार पर विभिन्न प्रकार के उद्योगों के लिए स्थानीयकरण गुणांक का मान ज्ञात कर लिया जाता है। यदि विभिन्न प्रकार के उद्योगों के लिए प्राप्त गुणांकों के मानों में असमानता है तो यह इस बात का द्योतक होगा कि सम्बन्धित देश के औद्योगिक विकास में संरचनात्मक असन्तुलन विद्यमान है।

8.5.3. औद्योगिक संकेन्द्रण का मापन

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि यदि औद्योगिक असन्तुलन को किसी उद्योग विशेष के सन्दर्भ विचार किया जाए तो असन्तुलन की यह प्रकृति औद्योगिक संकेन्द्रण को व्यक्त करती है। इस प्रकार के असन्तुलन के मापन के लिए सम्बन्धित उद्योग के वितरण का आकलन करना आवश्यक होता है। वस्तुत: औद्योगिक संकेन्द्रण के मापन का प्रमुख आधार औद्योगिक इकाईयों अर्थात् फर्मों का बाजार अर्थात् उद्योग विशेष में हिस्सेदारी होता है। यह हिस्सेदारी अनेक रुपों में व्यक्त की जा सकती है जैसे-उत्पादन के रुप में अथवा बिक्रय के रुप में अथवा सम्पत्ति के रुप में इत्यादि। फर्मों की हिस्सेदारी के आधार पर औद्योगिक संकेन्द्रण के मापन के सन्दर्भ में अनेक सूचक विकसित किये गये हैं। इनमें से जो प्रचलित सूचक हैं उनको आगे की पंक्तियों में स्पष्ट किया जा रहा है-

1. संकेन्द्रण अनुपात

औद्योगिक संकेन्द्रण के मापन के लिए इस सूचकांक को ज्ञात करने हेतु उद्योग विशेष के अन्तर्गत शामिल कुछ फर्मों के बाजार हिस्से को जोड़ दिया जाता है। इस सूचकांक को निम्न सूत्र के द्वारा ज्ञात किया जाता है।

$$\mathbf{C} = \sum (\mathbf{pi})$$

जहाँ पर,

$$\text{pi} = \frac{qi}{\text{Q}} \qquad i = 1, 2, .. n$$

तथा pi किसी फर्म विशेष के बाजार हिस्से को व्यक्त करता है। qi किसी फर्म विशेष के उत्पादन की मात्रा को व्यक्त करता है और Q उद्योग में शामिल सभी फार्मों के कुल उत्पादन व्यक्त करता है।

इस सूचकांक का मान जितना ही अधिक होगा सम्बन्धित उद्योग में औद्योगिक संकेन्द्रण की स्थिति भी उतनी ही अधिक होगी।

एक तथ्य यहाॅ समझ लेना आवश्यक है कि इस सूचकांक की गणना में सम्बन्धित उद्योग के सभी फर्मों पर विचार नहीं किया जाता है। वस्तुत: इसकी गणना कुछ सीमित फर्मों के आधार पर ही किया जाता है और ये सीमित फर्में ऐसी होती हैं जिनके पास सम्बन्धित उद्योग का अधिकांश हिस्सा होता है। सामान्य रूप से इस सूचकांक की गणना 4 फर्मों अथवा 8 फर्मों अथवा 10 फर्मों अथवा 12 फर्मों अथवा 20 फर्मों के आधार पर किया जाता है।

औद्योगिक संकेन्द्रण के मापन का यह एक अत्यन्त ही सरल तरीका होता है तथा इस विधि में सभी फर्मों के बारे में सूचनाएं एकत्रित करना आवश्यक नहीं होता है। परन्तु यह सूचकांक सभी फर्मों पर आधारित नहीं होता है इसलिए औद्योगिक संकेन्द्रण के मापन में उतनी शुद्धता नहीं होता है।

2. हर्षमैन-हर्फिण्डाल सूचकांक

इस सूचकांक को विकसित करने का श्रेय दो अर्थशास्त्रियों- ए. ओ. हर्षमैन तथा ओ. सी. हर्फिण्डाल को जाता है। वस्तुत: आर्थिक साहित्य में यह सूचकांक ‘हर्फिण्डाल सूचकांक’ के नाम से प्रचलित है। इस सूचकांक की गणना निम्नलिखित सूत्र के द्वारा किया जाता है-

$$\text{H} = \sum_{i=1}^{n} (\text{pi})^2$$

जहाँ पर, $\text{pi} = \frac{qi}{\text{Q}} \qquad i = 1, 2, .. n$

तथा pi किसी फर्म विशेष के बाजार हिस्से को व्यक्त करता है। qi किसी फर्म विशेष के उत्पादन की मात्रा को व्यक्त करता है और फए उद्योग में शामिल सभी फार्मो के कुल उत्पादन व्यक्त करता है। n उद्योग में फर्मों की कुल संख्या को व्यक्त करता है।

इस सूचकांक का अधिकतम मान इकाई अर्थात 1 के बराबर होता है जबकि न्यूनतम मान 1/n के बराबर होता है। इसका तात्पर्य यह है कि एक उद्योग विशेष के लिए इस सूचकांक का मान 1 के जितना ही निकट होगा उस उद्योग में औद्योगिक संकेन्द्रण अर्थात् असन्तुलन की स्थिति भी उतनी ही अधिक होगी। दूसरी तरफ एक उद्योग विशेष के लिए इस सूचकांक का मान 1 से जितना ही कम होगा अर्थात् 1/n के निकट होगा उस उद्योग में औद्योगिक संकेन्द्रण अर्थात् असन्तुलन की स्थिति भी उतना ही कम होगा।

एक तथ्य यहॉ समझ लेना आवश्यक है कि इस सूचकांक का अधिकतम मान उस स्थिति में होगा जबकि सम्बन्धित उद्योग में फर्म की संख्या केवल 1 हो। यह स्थिति अधिकतम औद्योगिक संकेन्द्रण की स्थिति होगी क्योंकि उद्योग का समस्त क्रियाकलाप केवल एक फर्म के नियन्त्रण में होगा। दूसरी तरफ इस सूचकांक का न्यूनतम मान उस स्थिति मे होगी जबकि सम्बन्धित उद्योग में फर्मों की संख्या अधिक (n के बराबर) हो तथा सभी फर्मों का बाजार हिस्सा समान हो। यह स्थिति न्यूनतम औद्योगिक संकेन्द्रण की स्थिति होगी क्योंकि उद्योग के समस्त क्रियाकलाप अनेक फर्मों के नियन्त्रण में होगा और सभी फर्मों का नियन्त्रण समान होगा।

इस सूचकांक की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि यह औद्योगिक संकेन्द्रण का मापन सभी फर्मों के आधार पर करता है। परन्तु इस सूचकांक की यह सीमा है कि इसकी गणना के लिए सभी फर्मों के सन्दर्भ में सूचनाएं ज्ञात होनी चाहिए।

3. विषमता गुणांक के आधार

चूँकि औद्योगिक संकेन्द्रण की स्थिति एक उद्योग विशेष के अन्तर्गत फर्मों के वितरण को व्यक्त करता है इसलिए इसका मापन सांख्यिकी पद्धति के अन्तर्गत विषमता के मापन के लिए विकसित गुणांकों के आधार पर किया जा सकता है। इस विधि के अन्तर्गत वस्तुत: औद्योगिक संकेन्द्रण का मापन 'विचलन गुणांक (V) के आधार पर किया जाता है जिसकी गणना निम्न सूत्र के आधार पर किया जाता है-

$$V = \sigma/X$$

जहाँ

$$\sigma = \sqrt{\frac{1}{n}\sum_{i=1}^{n}(pi - \bar{p})^2}$$

$\bar{p} = \sum_{i=1}^{n} {pi}/{n}$= सभी फर्मों का औसत हिस्सा

pi =किसी एक फर्म का बाजार हिस्सा

इस सूचकांक का न्यूनतम मान शून्य तथा अधिकतम मान $\sqrt{n-1}$के बराबर होता है। इसका तात्पर्य यह है कि इस सूचकांक का मान किसी उद्योग के लिए शून्य के जितना ही करीब होगा उस उद्योग में औद्योगिक संकेन्द्रण की स्थिति उतनी ही कम होगी। दूसरी तरफ इसका मान शून्य से अधिक तथा$\sqrt{n-1}$ के जितना ही करीब होगा औद्योगिक संकेन्द्रण की स्थिति भी उतनी ही अधिक होगी।

4. लर्नर सूचकांक के आधार पर

आद्योगिक संकेन्द्रण का अभिप्राय एक अर्थ में 'बाजार शक्ति' से भी लगाया जाता है और किसी उद्योग विशेष में बाजार शक्ति का मान जितनी ही अधिक होगी उस उद्योग विशेष में औद्योगिक संकेन्द्रण की स्थिति भी उतनी ही अधिक होगी। इसका कारण यह है कि बाजार शक्ति का अधिक होना इस बात का द्योतक होता है कि सम्बन्धित उद्योग में औद्योगिक वितरण में असमानता विद्यमान है। इसलिए औद्योगिक संकेन्द्रण का मापन बाजार शक्ति के मापन के आधार पर किया जा सकता है जिसके

लिए एक अर्थशास्त्री ए.पी. लर्नर ने एक सूचकांक को विकसित किया। इस सूचकांक की गणना निम्न सूत्र के द्वारा किया जाता है-

$$L = [P - MC]/P$$

जहाँ पर

L = लर्नर सूचकांक

P = सम्बन्धित उद्योग में प्रचलित कीमत स्तर

MC = सम्बन्धित उद्योग में उत्पाद के सीमान्त लागत

इस सूचकांक का न्यूनतम मान शून्य होता है तथा ऐसी स्थिति में सम्बन्धित उद्योग में किसी भी प्रकार के संकेन्द्रण की स्थिति नहीं होती है। दूसरी तरफ इस सूचकांक का मान शून्य से जितना ही अधिक होता है सम्बन्धित उद्योग में औद्योगिक संकेन्द्रण की स्थिति भी उतनी ही अधिक होती है।

8.6 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति में औद्योगिक वितरण समान होता है।
2. स्थानीयकरण गुणांक संरचनात्मक असन्तुलन का मापन करता है।
3. किसी उद्योग के लिए संकेन्द्रण अनुपात उद्योग में विद्यमान सभी फर्मों पर आधारित होता है।
4. हर्फिण्डाल सूचकांक का न्यूनतम मान शून्य के बराबर होता है।
5. लर्नर सूचकांक का मान शून्य होने पर औद्योगिक संकेन्द्रण भी शून्य होता है।

8.7 सारांश

सामान्य अर्थों में औद्योगिक असन्तुलन का अभिप्राय एक देश के औद्योगिक वितरण से होता है। यदि देश का औद्योगिक वितरण असमान है तो यह स्थिति औद्योगिक असन्तुलन की द्योतक होती है। यदि व्यापक रुप में विचार किया जाए तो एक देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति तीन रुपों में व्याप्त हो सकती है और ये तीनों रुप हैं- क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन, संरचनात्मक असन्तुलन तथा औद्योगिक संकेन्द्रण। यदि एक देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच औद्योगिक वितरण में विषमता है तो यह स्थिति क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन के स्वरुप को व्यक्त करेगी जबकि यदि देश के विभिन्न उद्योगों के बीच औद्योगिक वितरण में विषमता है तो यह स्थिति संरचनात्मक असन्तुलन के स्वरुप को व्यक्त करेगी। यदि एक देश के किसी उद्योग विशेष में औद्योगिक इकाईयों अर्थात् फर्मों के वितरण में विषमता है तो यह स्थिति औद्योगिक संकेन्द्रण के स्वरुप को व्यक्त करेगी।

किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन उत्पन्न होने के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हो सकते हैं। इन कारकों में से एक प्रमुख कारक देश के विभिन्न क्षेत्रों की भौगालिक स्थिति में विषमता होना होता है। दूसरा महत्वपूर्ण कारक विभिन्न क्षेत्रों के आर्थिक दशाओं में भिन्नता होना हो सकता है। इन कारकों के अलावा देश में घटित होने वाली कुछ ऐतिहासिक घटनाएं तथा सरकार की नीतियां भी देश में औद्योगिक असन्तुलन के लिए उत्तरदायी कारक हो सकते हैं।

जहाँ तक औद्योगिक असन्तुलन के मापन का सम्बन्ध है तो इसके लिए अनेक विधियों एवं सूचकों का प्रयोग किया जा सकता है। वस्तुत: कौन सी विधि अथवा कौन सा सूचक प्रयोग किया जायेगा यह इस बात पर निर्भर होता है कि असन्तुलन की प्रकृति किस प्रकार की है। क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन का मापन कुछ प्रतिशतों की गणना के आधार पर किया जा सकता है तथा कुछ विशिष्ट सूचकों जैसे- विषमता गुणांक तथा स्थानीयकरण भाज्य की गणना के आधार पर भी किया जा सकता है। इसी प्रकार संरचनात्मक असन्तुलन का मापन भी कुछ प्रतिशतों की गणना के आधार पर किया जा सकता है तथा कुछ विशिष्ट सूचकों जैसे- स्थानीयकरण गुणांक की गणना के आधार पर भी किया जा सकता है। औद्योगिक संकेन्द्रण के मापन के लिए अनेक सूचक विकसित किये गये हैं जिनमें से प्रमुख हैं- संकेन्द्रण अनुपात, हर्फिण्डाल सूचकांक, विचलन गुणांक तथा लर्नर सूचकांक।

8.8 शब्दावली

- **आर्थिक मितव्ययिताएं -** इसका अभिप्राय लागतों में अप्रत्यक्ष रुप से होने वाली बचतों से होता है।
- **मानक विचलन-** यह एक सांख्यिकीय मापक को व्यक्त करता है जो किसी श्रेणी के वितरण के मापन के लिए प्रयोग किया ताजा है।
- **आधारभूत उद्योग-** इसके अन्तर्गत वे उद्योग शामिल किये जाते हैं जहाँ आधारभूत वस्तुओं जैसे- बिजली, सीमेण्ट, कोयला, लोहा एवं इस्पात इत्यादि का उत्पादन होता है।
- **पूँजीगत उद्योग-** इसके अन्तर्गत वे उद्योग शामिल किये जाते हैं जहाँ पूँजीगत वस्तुओं जैसे- भारी मशीन, यन्त्र, उपकरण इत्यादि का उत्पादन होता है।
- **मध्यवर्ती उद्योग-** इसके अन्तर्गत वे उद्योग शामिल किये जाते हैं जहाँ उन वस्तुओं का उत्पादन होता है जो किसी अन्तिम उत्पाद के लिए आगत के रुप में प्रयोग किये जाते हैं जैसे- बियरिंग, नट एवं बोल्ट, बिजली के तार इत्यादि।
- **उपभोक्ता उद्योग-** इसके अन्तर्गत वे उद्योग शामिल किये जाते हैं जहाँ उपभोक्ता वस्तुओं जैसे- टेलीविजन, कपड़ा, पंखा, इत्यादि का उत्पादन होता है।
- **बाजार शक्ति-** यह शब्द नियन्त्रण की उस सीमा को व्यक्त करता है जिसके द्वारा एक व्यावसायिक इकाई बाजार पर अपना प्रभुत्व कायम करती है।

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य
4. असत्य 5. सत्य

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Kwoka, John E.Jr (1985): ***The Herfindhal Index in Theory & Practice,*** The Anti-trust Bulletin, Vol. 30, No. 4.
- Lerner, A.P. (1934): ***The Concept of Monopoly and the Measurement of Monopoly Power,*** Review of Economic Studies.
- Utton, M.A. (1971): ***Industrial Concentration,*** Penguin Books, Harmondsworth.

8.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Barthwal, R.R. (2005): ***Industrial Economics – An Introductory Textbook***, New Age International Publishers, New Delhi.
- Stephen, Martin (1989): ***Industrial Economics - Economic Analysis and Public Policy***, MacMillan Publishing Co. New York.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, NewDelhi.
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक असन्तुलन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न स्वरुपों का वर्णन कीजिए।
2. औद्योगिक असन्तुलन के विभिन्न स्वरुपों को स्पष्ट करते हुए एक देश के अन्तर्गत इनके विद्यमान होने के लिए उत्तरदायी कारकों को समझाइये।
3. क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन के मापन के लिए प्रयुक्त विधियों की विस्तार पूर्वक विवेचना कीजिए।
4. संरचनात्मक असन्तुलन के मापन के लिए प्रयुक्त विधियों की विस्तार पूर्वक विवेचना कीजिए।
5. औद्योगिक संकेन्द्रण के मापन के लिए प्रयुक्त सूचकांकों को स्पष्ट कीजिए।

इकाई-9 औद्योगीकरण एवं क्षेत्रीय विकास

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 औद्योगिक असन्तुलन के प्रभाव
 9.3.1. आर्थिक प्रभाव
 9.3.2. सामाजिक प्रभाव
 9.3.3. राजनीतिक प्रभाव
9.4 सन्तुलित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकताएं
9.5 सन्तुलित क्षेत्रीय विकास के उपाय
 9.5.1. निषेधात्मक उपाय
 9.5.2. प्रेरणात्मक उपाय
9.6 अभ्यास प्रश्न
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई के अन्तर्गत औद्योगिक असन्तुलन की अवधारणा तथा इसके विभिन्न स्वरुपों को अत्यन्त ही व्यापक रुप में स्पष्ट किया गया तथा इस बात को भी स्पष्ट किया गया कि किसी देश विशेष में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न होने के लिए कौन-कौन से कारक उत्तरदायी होते हैं।। इसके साथ ही साथ उन विधियों को भी स्पष्ट किया गया जिनके द्वारा इस बात का पता लगाया जा सकता है कि किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति है कि नहीं। परन्तु औद्योगिक असन्तुलन के सन्दर्भ में इन बातों के अलावा यह भी समझना आवश्यक है कि क्या यह स्थिति किसी देश के लिए वांछनीय है कि नहीं। वस्तुत: इसको समझने के लिए पहले यह समझना होगा कि औद्योगिक असन्तुलन के किसी देश पर क्या-क्या प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं। इस इकाई के अन्तर्गत प्रमुख रुप से इन्हीं दो बातों को स्पष्ट किया जायेगा।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातों को समझ सकेंगें -

- ✓ औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति का किसी देश पर क्या-क्या प्रभाव उत्पन्न हो सकता है।
- ✓ किसी देश के लिए सन्तुलित औद्योगिक विकास क्यों आवश्यक होता है।
- ✓ औद्योगिक असन्तुलन की समस्या के निराकरण के लिए कौन-कौन से उपाय आवश्यक होते हैं।

9.3 औद्योगिक असन्तुलन के प्रभाव

एक देश के अन्तर्गत औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर अनेक प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं। ये प्रभाव ऐसे होते हैं जिससे देश की अर्थव्यस्था तो प्रभावित हो ही सकती है साथ ही साथ देश की सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था भी प्रभावित हो सकती है। वस्तुत: एक देश के अन्तर्गत औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर तीन प्रकार के प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं। ये तीनों प्रभाव हैं-

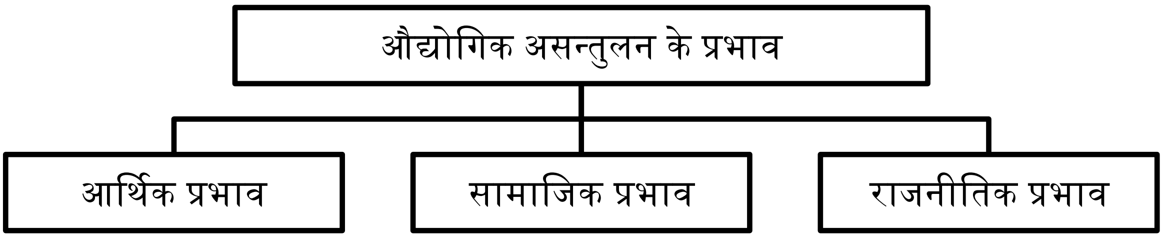

आगे की पंक्तियों में इन विभिन्न प्रभावों को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया जा रहा है-

9.3.1. आर्थिक प्रभाव

किसी देश के अन्तर्गत औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने के कारण निम्नलिखित आर्थिक प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं-

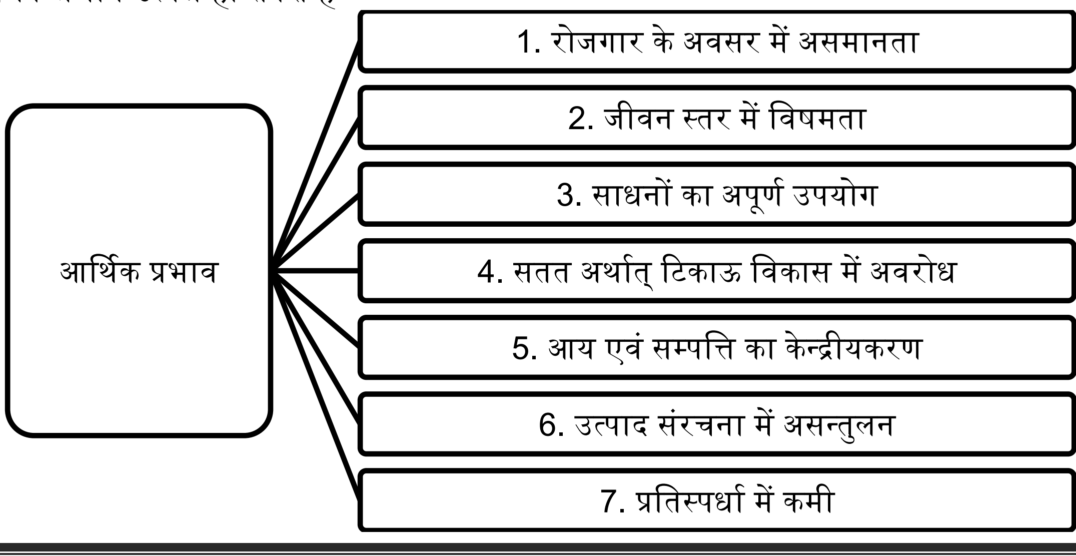

1. **रोजगार के अवसर में असमानता** - यदि किसी देश के अन्तर्गत औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान है तो जिन क्षेत्रों का औद्योगिक विकास तीव्र गति से होगा उन क्षेत्रों में रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध होंगे जबकि औद्योगिक रुप से अविकसित क्षेत्रों में रोजगार के कम अवसर उपलब्ध होंगे। इस प्रकार औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर देश के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों के बीच रोजगार के अवसरों में असमानता होगी और देश में बेरोजगारी की स्थिति विद्यमान होगी।
2. **जीवन स्तर में विषमता** - किसी देश के अन्तर्गत औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने की स्थिति में चूँकि रोजगार के अवसरों में असमानता होगी, इसलिए जो क्षेत्र औद्योगिक रुप से विकसित होंगे उन क्षेत्रों में तो लोगों की आय अर्जन क्षमता अधिक होगी जबकि औद्योगिक रुप से पिछड़े क्षेत्रों में लोगों की आय अर्जन क्षमता अपेक्षाकृत कम होगी। इतना ही नहीं बल्कि औद्योगिक रुप से विकसित क्षेत्रों में पिछड़े क्षेत्रों की अपेक्षा अनेक आधारभूत सुविधाओं जैसे- आवास, चिकित्सा, पेयजल इत्यादि की उपलब्धता भी अधिक होती हैं। इसलिए औद्योगिक रुप से विकसित क्षेत्रों में लोगों के रहन सहन का स्तर पिछड़े क्षेत्रों की अपेक्षा उत्कृष्ट होता है। इस प्रकार औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर एक देश के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों के बीच जीवन स्तर में असमानता होती है।
3. **साधनों का अपूर्ण उपयोग** - सामान्य रुप से किसी भी देश के सम्पूर्ण क्षेत्रों की भौगोलिक संरचना में एकरुपता का अभाव होता है। इसके कारण देश के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन के साधनों, विशेषकर प्राकृतिक संसाधनो जैसे- भूमि, खनिज पदार्थ, जल संसाधन, वन सम्पदा इत्यादि की उपलब्धता में असमानता होती है। परन्तु एक तथ्य यहाॅ जान लेना आवश्यक है कि प्रत्येक क्षेत्र में कुछ न कुछ संसाधन अवश्य उपलब्ध होतें हैं। औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति में औद्योगिक रुप से विकसित क्षेत्रों में तो वहाँ के संसाधनों का उपयोग होता रहता है जबकि पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों के अल्पता अथवा अभाव के कारण या तो संसाधनों का उपयोग कम होता है अथवा हो ही नहीं पाता है और इस प्रकार इन क्षेत्रों में काफी मात्रा में संसाधन बेकार पड़े रहते हैं। इस प्रकार औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर एक देश के अन्तर्गत उपलब्ध सम्पूर्ण साधनों का उपयोग होने के बजाए अपूर्ण उपयोग होता है।
4. **सतत अर्थात् टिकाऊ विकास में अवरोध** - किसी भी देश अथवा क्षेत्र विशेष के 'सतत विकास' के लिए यह आवश्यक होता है कि उस देश अथवा क्षेत्र का विकास वर्तमान में इस प्रकार से हो कि भविष्य की आवश्यकताएं संरक्षित हों। परन्तु किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जिनमें औद्योगिक विकास की प्रक्रिया निरन्तर आगे बढ़ती रहती है और इस प्रक्रिया में इन क्षेत्रों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की प्रक्रिया निरन्तर आगे बढ़ती रहती है। यह दोहन की प्रक्रिया इस प्रकार की जाती है कि इसमें भविष्य की आवश्यकताओं के प्रति उपेक्षा की प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगती है। इस प्रकार औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति देश के सतत विकास के लक्ष्य की प्राप्ति में अवरोध उत्पन्न कर सकता है।
5. **आय एवं सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण** - चूँकि किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर एक देश के अन्तर्गत कुछ क्षेत्र ही ऐसे होते हैं जहाँ औद्योगिक विकास की प्रक्रिया एवं रोजगार के अवसरों का केन्द्रीयकरण होता रहता है। इसलिए विकास की प्रक्रिया में यही वे क्षेत्र हैं जिनकी आय एवं सम्पत्ति में लगातार वृद्धि होता रहता है। इस प्रकार क्षेत्रीय औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति में आय एवं सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण उन्हीं क्षेत्रों में होता रहता है जो औद्योगिक रुप से विकसित होते हैं। आय एवं सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण उस स्थिति में भी हो सकता है जब औद्योगिक असन्तुलन का स्वरुप 'औद्योगिक संकेन्द्रण' के रुप में विद्यमान हो। क्योंकि इस प्रकार के असन्तुलन की स्थिति में उद्योग अर्थात् बाजार का अधिकांश हिस्सा केवल कुछ ही फर्मों के नियन्त्रण में होता है। ऐसी स्थिति में आय एवं सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण इन्हीं औद्योगिक इकाईयों अथवा फर्मों के पास होता है।

6. **उत्पाद संरचना में असन्तुलन -** यदि किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति 'संरचनात्मक असन्तुलन' के रुप में विद्यमान है तो यह स्थिति उस देश के उत्पाद संरचना में असन्तुलन उत्पन्न कर सकती है। इसका कारण यह है कि संरचनात्मक असन्तुलन की स्थिति में कुछ उद्योग ऐसे होगें जिनका विकास तीव्र गति से होगा जबकि बाकी उद्योगों का विकास या तो धीमी गति से होगा या होगा ही नहीं। औद्योगिक विकास की इस प्रक्रिया में कुछ उत्पादों का उत्पादन अधिक मात्रा में होगा जबकि अन्य उत्पादों का उत्पादन अल्प मात्रा में होगा। उदाहरण के लिए यदि एक देश में पूँजीगत उद्योगों का विकास तीव्र गति से हो जबकि उपभोक्ता उद्योगों का विकास धीमी गति से हो तो देश के औद्योगिक उत्पादन में पूँजीगत उत्पादों की अधिकता होगी। चूँकि पूँजीगत उत्पादों की प्रयोग अन्तत: उपभोक्ता उत्पादों के उत्पादन के लिए ही किया जाता है इसलिए पूँजीगज उत्पादों की अधिकता की स्थिति में अतिउत्पादन की स्थिति होगी। दूसरी तरफ यदि एक देश में पूँजीगत उद्योगों का विकास धीमी गति से हो जबकि उपभोक्ता उद्योगों का विकास तीव्र गति से हो तो देश के औद्योगिक उत्पादन में पूँजीगत उत्पादों की अल्पता होगी। ऐसी स्थिति में पूँजीगत उत्पादों की कमी को पूरा करने के लिए देश को आयातों पर निर्भर रहना पड़ेगा। उपरोक्त असन्तुलन की स्थिति को भारतीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में समझा जा सकता हैं। ब्रिटिश शासन काल के दौरान भारत के औद्योगिक विकास में संरचनात्मक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान थी। यह असन्तुलन इस रुप में थी कि औद्योगिक क्षेत्र में पूँजीगत उद्योगों का विकास नहीं के बराबर था। जो कुछ भी उद्योग संचालित हो रहे थे उनमें उपभोक्ता उद्योगों की ही बहुलता थी और इन उपभोक्ता उद्योगों को संचालित करने के लिए देश को आवश्यक पूँजीगत उत्पादों की पूर्ति के लिए आयातों पर निर्भर रहना पड़ता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी देश के औद्योगिक विकास में संरचनात्मक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान रही परन्तु इसका स्वरुप पहले से अलग रहा। वस्तुत: स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में जिस औद्योगिकीकरण की नीति को अपनाया गया उसमें पूँजीगत एवं आधारभूत उद्योगों को काफी महत्व दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में जिस गति से पूँजीगत उद्योगों का विकास हुआ उपभोक्ता उद्योगों का विकास उसकी अपेक्षा काफी कम रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि 1960 के दशक के मध्य वर्षों के आते-आते अर्थव्यवस्था में पूँजीगत उत्पादों की अधिकता परिलक्षित होने लगी। औद्योगिक क्षेत्र में इस असन्तुलन का देश औद्योगिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हुआ।
7. **प्रतिस्पर्धा में कमी -** औद्योगिक असन्तुलन के कारण एक देश में एकाधिकारी शक्तिओं के प्रबल होने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है और बाजार में प्रतिस्पर्धा के कमी आती है। यह प्रभाव उस स्थिति में उत्पन्न होता है जब औद्योगिक असन्तुलन की प्रकृति औद्योगिक संकेन्द्रण के रुप में हो। इसका कारण यह है कि जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है, औद्योगिक संकेन्द्रण की स्थिति में एक उद्योग के समस्त क्रिया-कलापों पर कुछ ही फर्मों का नियन्त्रण रहता है। ये फर्में अन्य फर्मों अथवा नये निवेशकों के व्यवसाय संचालन में अनेक प्रकार के अवरोध उत्पन्न कर सकती हैं।

9.3.2. सामाजिक प्रभाव

एक देश के अन्तर्गत औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर कुछ क्षेत्रों में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से होती रहती है जिसके फलस्वरुप शहरीकरण की प्रक्रिया भी प्रोत्साहित होती है। शहरीकरण की प्रवृत्ति में वृद्धि होने से इन क्षेत्रों में 'अति-आबादी' तथा 'भीड़-भाड़' की स्थिति उत्पन्न होने लगती है। इसके फलस्वरुप इन क्षेत्रों में अनेक प्रकार की सुविधाओं, जैसे- आवासीय सुविधाओं, स्वास्थ सुविधाओं, विद्युत आपूर्ति, जलापूर्ति, इत्यादि की माँग में वृद्धि होने लगती हैं। साधनों के अभाव में इन सामाजिक सुविधाओं की लागतों में वृद्धि होने लगती हैं और एक सीमा के बाद इनकी आपूर्ति करने में भी समस्या उत्पन्न होने लगती है। इतना ही नहीं, एक सीमा के बाद इन क्षेत्रों में भी सभी व्यक्तियों के लिए रोजगार का अवसर उपलब्ध नहीं हो पाता है। इन सभी समस्याओं के कारण समाज में आक्रोश उत्पन्न हो सकता है तथा अनेक प्रकार की असामाजिक कृत्यों में वृद्धि हो सकती है।

9.3.3. राजनीतिक प्रभाव

एक देश में विद्यमान औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति वहाँ की राजनीतिक स्थिति को भी प्रभावित कर सकती है। इसका कारण यह है कि जिन क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं होगी अथवा धीमी गति से होगी उन क्षेत्रों में असन्तोष की भावना उत्पन्न हो सकती है तथा समाज में आक्रोश की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। कभी-कभी आक्रोश की यह स्थिति अविकसित क्षेत्रों में अलगाव की प्रकृति को भी प्रोत्साहित कर सकती है। इसका परिणाम यह हो सकता है कि देश के अन्तर्गत राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इतना ही नहीं जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जिन क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया तीव्र गति से होता है उन क्षेत्रों में भी कुछ ऐसी सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं जो स्थानीय स्तर पर राजनीतिक अस्थिरता को जन्म दे सकती हैं।

9.4 औद्योगिक असन्तुलन की आवश्यकताएं

औद्योगिक असन्तुलन के प्रभावों के सन्दर्भ में किये गये उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि यदि एक राज्य की दृष्टिकोंण से अथवा एक उद्योग की दृष्टिकोण से अथवा एक फर्म की दृष्टिकोण से देखें तो औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति वांछनीय हो सकती है परन्तु यदि सम्पूर्ण देश के परिपेक्ष्य में विचार करें तो यह स्थिति वांछनीय नहीं होती है। इसका कारण यह है कि एक कल्याणकारी राज्य के अन्तर्गत किसी भी देश के लिए यह कदापि स्वीकार्य नहीं होता है कि देश के औद्योगिक विकास में असमानता की स्थिति विद्यमान हो। इसीलिए विश्व के उन सभी देशों की सरकारें, जो कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्य पर आधारित होती हैं, अपनी नीतियों में सन्तुलित औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक उपायों को अपनाती रहती हैं। उदाहरण के लिए भारत में ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् आर्थिक विकास के लिए जिन नीतियों को अपनाया गया उनमें समानता के साथ विकास को काफी महत्व दिया गया।

प्रश्न यह उठता है कि वे कौन-कौन से उद्देश्य अर्थात् कौन सी आवश्यकताएं होती हैं जिनके लिए एक देश के लिए सन्तुलित औद्योगिक विकास को प्राप्त करना आवश्यक होता है। व्यापक रुप में देखा जाए तो इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि कोई भी देश यदि सम्पूर्ण देश का समग्र रुप में विकास करना चाहता है उसके लिए यह आवश्यक होता है कि देश के सभी क्षेत्रों, उद्योगों तथा औद्योगिक इकाईयों का समानता के साथ विकास हो। परन्तु इस व्यापक उद्देश्य की प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित आवश्यकताएं होती है-

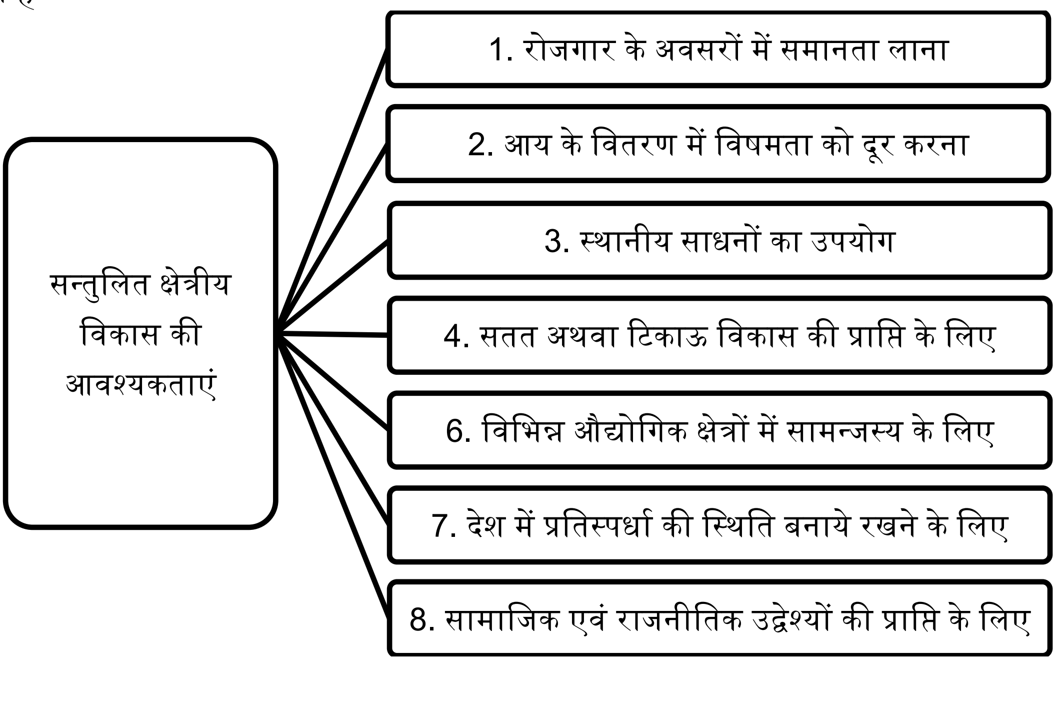

1. **रोजगार के अवसरों में समानता लाना -** औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर एक देश के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों के बीच रोजगार के अवसरों में असमानता तथा देश के अविकसित क्षेत्रों में बेरोजगारी की स्थिति विद्यमान होती है तथ यह स्थिति अविकसित क्षेत्रों लोगों के आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करती है। इतना ही नहीं लोग इन क्षेत्रों से रोजगार की तलाश में विकसित क्षेत्रों की तरफ पलायन करने लगते हैं जिससे विकसित क्षेत्रों में भी अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ जाती है। अत: यह स्थिति किसी भी देश के लिए वांछनीय नहीं होती है और ऐसे देश के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस प्रकार की नीति अपनायी जाए जिससे कि देश सभी क्षेत्रों में रोजगार के समान अवसर उपलब्ध हो सके। यह तभी संभव है जबकि देश औद्योगिक विकास सन्तुलित रुप में हो।
2. **आय के वितरण में विषमता को दूर करना -** किसी देश के अन्तर्गत औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने की स्थिति में आय के वितरण में विषमता की स्थिति पायी जाती है। औद्योगिक रुप से विकसित क्षेत्रों में लोगों की आय अधिक होती है जबकि पिछड़े क्षेत्रों में लोगों की आय अपेक्षाकृत काफी कम होती है। यह परिस्थिति समाज में विशेषकर अविकसित क्षेत्रों में असन्तोष की भावना को जन्म दे सकती है तथा इन क्षेत्रों के सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के लिए अनेक समस्याओं को जन्म दे सकती है। अत: एक देश के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस प्रकार की नीति अपनायी जाए जिससे कि देश सभी क्षेत्रों का सन्तुलित रुप से विकास हो जिससे कि आय के वितरण में विषमता दूर हो सके।
3. **स्थानीय साधनों का उपयोग -** जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया कि किसी भी देश के प्रत्येक क्षेत्र में कुछ न कुछ संसाधन अवश्य उपलब्ध होतें हैं। परन्तु औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति में औद्योगिक रुप से विकसित क्षेत्रों में तो वहाँ के संसाधनों का उपयोग होता रहता है जबकि पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों के अल्पता अथवा अभाव के कारण काफी मात्रा में संसाधन अविकसित अवस्था में बेकार पड़े रहते हैं। इनमें से कुछ संसाधन ऐसे होते हैं जिनको अन्य स्थानों पर स्थानान्तरित भी नहीं किया जा सकता। जैसे - भूमि, जल, खनिज पदार्थों के खदान, वन सम्पदा इत्यादि। अत: यदि इन संसाधनों का देश के उत्पादन प्रक्रिया में उपयोग करना है तो यह आवश्यक होगा कि सन्तुलित विकास की नीति को अपनाते हुए इन क्षेत्रों के विकास को भी प्रोत्साहित किया जाए।
4. **सतत अथवा टिकाऊ विकास की प्राप्ति के लिए -** एक देश न केवल वर्तमान बल्कि भविष्य के पीढ़ी के लिए उत्तरदायी होता है। इसलिए यह आवश्यक होता है कि देश के प्रत्येक क्षेत्र का विकास इस प्रकार से हो कि इन क्षेत्रों में उपलब्ध संसाधन, विशेषकर प्राकृतिक संसाधन, भविष्य की आवश्यकताओं के लिए भी संरक्षित रहें। विकास का यह स्वरुप सतत विकास अर्थात् टिकाऊ विकास कहलाता है परन्तु किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जिनमें औद्योगिक विकास की प्रक्रिया निरन्तर आगे बढ़ती रहती है और इस प्रक्रिया में इन क्षेत्रों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की प्रक्रिया निरन्तर आगे बढ़ती रहती है। यह दोहन की प्रक्रिया इस प्रकार की जाती हैं कि इसमें भविष्य की आवश्यकताओं के प्रति उपेक्षा की प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगती है। यदि इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना है अर्थात् विकसित क्षेत्रों के विकास की प्रक्रिया को सतत विकास की अवधारणा के अनुरुप आगे बढ़ाना है तो इसके लिए आवश्यक होगा कि देश की विकास प्रक्रिया में सभी क्षेत्रों को शमिल करते हुए उपलब्ध संसाधनों का उपयोग किया जाए।
6. **विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में सामन्जस्य के लिए -** जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया कि यदि किसी देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति 'संरचनात्मक असन्तुलन' के रुप में विद्यमान है तो यह स्थिति उस देश के विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में असन्तुलन उत्पन्न कर सकती है। यह स्थिति देश के कुछ उद्योगों में अतिउत्पादन की स्थिति तथा कुछ उद्योगों में अल्प उत्पादन की स्थिति उत्पन्न कर सकती है जो देश की विकास एवं आश्यकता की दृष्टिकोण से अवांछनीय होती है। अत: देश के लिए आवश्यक होता है कि सभी प्रकार के उद्योगों का सन्तुलित रुप से विकास किया जाए।

7. **देश में प्रतिस्पर्धा की स्थिति बनाये रखने के लिए -** औद्योगिक असन्तुलन के कारण एक देश में एकाधिकारी शक्तिओं के प्रबल होने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार की परिस्थिति एक फर्म अथवा एक निवेशक के लिए तो वांछनीय होती है परन्तु देश के लिए नहीं। इसका कारण यह है कि बाजार में एकाधिकारी शक्तियां उपभोक्ताओं के हितों को नुकसान पहुँचा सकती है। इतना ही नहीं इस प्रकार की परिस्थिति में पहले से स्थापित निवेशक नये निवेशकों के व्यवसाय में विभिन्न प्रकार के अवरोध उत्पन्न कर सकते हैं जिससे देश के औद्योगिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। अत: देश के लिए यह आश्यक होता है कि विकास की प्रक्रिया इस प्रकार हो कि सभी उद्योगों में प्रतिस्पर्धा का माहौल विद्यमान रहे और एकाधिकारी शक्तियों पर अंकुश रहे।
8. **सामाजिक एवं राजनीतिक उद्वेश्यों की प्राप्ति के लिए -** जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर अनेकों सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याएं जैसे भीड़-भाड़ की समस्या, आवास की कमी, बिजली एवं जलपूर्ति की समस्या, औद्योगिक प्रदूषण, श्रमिकों का पलायन, राजनीतिक अस्थिरता इत्यादि उत्पन्न हो सकती हैं। अत: यदि इन समस्याओं से निजात पाना है तो यह आवश्यक होता है कि देश के विकास प्रक्रिया में सभी क्षेत्रों को शामिल किया जाए।

9.5 औद्योगिक असन्तुलन को दूर करने के उपाय

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति चाहे यह क्षेत्रीय असन्तुलन के रुप में हो या संरचनात्मक असन्तुलन के रुप में हो या औद्योगिक संकेन्द्रण के रुप में हो, किसी भी देश के लिए वांछनीय नहीं होती है। इसलिए यह आवश्यक होता है कि एक देश का औद्योगिक विकास इस प्रकार से हो कि देश के अन्तर्गत सभी क्षेत्रों एवं उद्योगों का सन्तुलित रुप से विकास हो तथा सभी निवेशकों को विकास की प्रक्रिया में समान अवसर उपलब्ध हों। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि एक देश के अन्तर्गत सन्तुलित औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को किस प्रकार सुनिश्चित किया जा सकता है अर्थात् देश में विद्यमान औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति को किन उपायों के द्वारा दूर किया जा सकता है। आगे की पंक्तियों में इन्हीं उपायों को स्पष्ट किया जा रहा है।

वस्तुत: औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति के निराकरण के लिए एक देश की सरकार विभिन्न उपायों को अपना सकती है। ये समस्त उपाय दो प्रकार के हो सकते हैं-

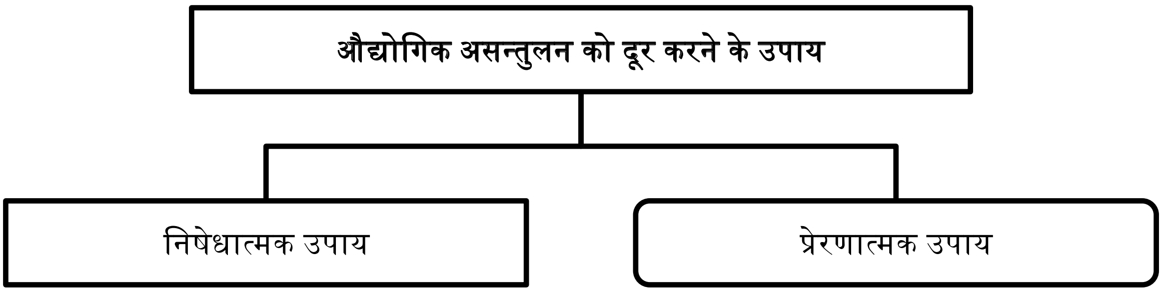

9.5.1. निषेधात्मक उपाय

इन उपायों के अन्तर्गत सरकार उन क्षेत्रों के लिए, जो औद्योगिक दृष्टि से विकसित होते हैं अर्थात् जिन क्षेत्रों में औद्योगिक केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति अधिक होती है, ऐसी नीति अपना सकती है जिससे कि इन क्षेत्रों में नयी औद्योगिक इकाईयों की स्थापना तथा पहले से स्थापित इकाईयों की विस्तार प्रक्रिया पर अंकुश लगाया जा सके। इन उपायों के अन्तर्गत सरकार औद्योगिक रुप से विकसित क्षेत्रों में औद्योगिक लासेंसिग नीति एवं पंजीकरण की शर्तो को कठोर रुप में लागू कर सकती है। इसके अलावा सरकार इन क्षेत्रों में उत्पादन से सम्बन्धित करों में वृद्धि कर सकती है तथा अलग से औद्योगिक स्थानीय कर अथवा औद्योगिक विकास कर निर्धारित कर सकती है। इतना ही नहीं सरकार इन क्षेत्रों में नयी औद्योगिक इकाईयों के स्थापना पर रोक भी लगा सकती है।

9.5.2. प्रेरणात्मक उपाय

औद्योगिक असन्तुलन के निराकरण के लिए केवल विकसित क्षेत्रों में औद्योगिक प्रक्रिया पर रोक लगाना ही पर्याप्त नहीं होता है बल्कि औद्योगिक रुप से पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक निवेश की प्रक्रिया को प्रोत्साहित भी करना आवश्यक होता है। अत: औद्योगिक असन्तुलन के निराकरण के लिए कुछ प्रेरणात्मक उपाय की भी आवश्यकता होती है। इसके लिए सरकार पिछड़े क्षेत्रों के लिए अनेक प्रकार के उपाय अपना सकती है जो निम्नलिखित रुप मे हो सकते हैं-

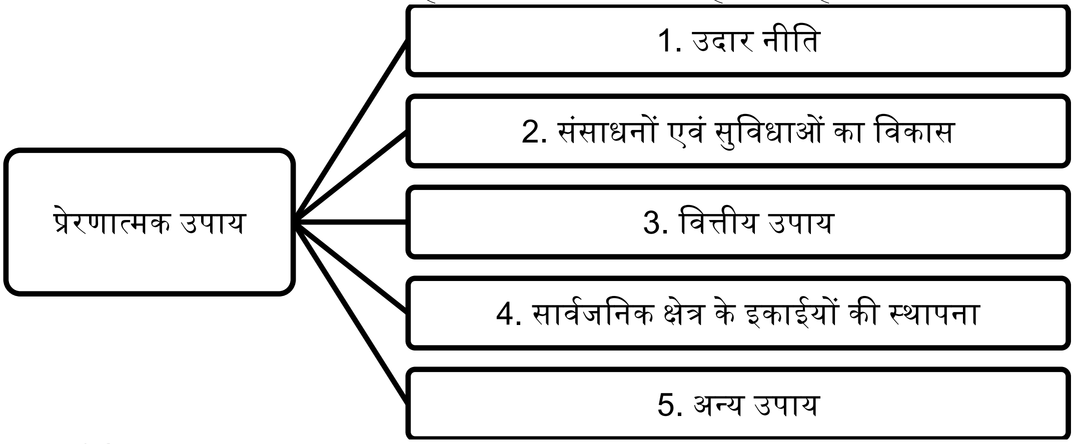

1. **उदार नीति -** औद्योगिक असन्तुलन के निराकरण के लिए सरकार औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में उदार नीतियों को अपना सकती है जिससे कि इन क्षेत्रों में नयी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना प्रोत्साहित हो सके। इन उपायों के अन्तर्गत सरकार औद्योगिक रुप से अविकसित क्षेत्रों में औद्योगिक लासेंसिग नीति एवं पंजीकरण की शर्तो को उदार कर सकती है।
2. **संसाधनों एवं सुविधाओं का विकास -** सरकार पिछड़े क्षेत्रों में अनेक प्रकार के आवश्यक संसाधनों एवं आधारभूत सुविधाओं को विकसित करके इन क्षेत्रों में नयी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना को प्रोत्साहित कर सकती है। जैसे- सरकार इन क्षेत्रों में निवेशकों को सस्ते दर पर भूमि के आबंटन की व्यवस्था कर सकती है। इसके अलावा सरकार इन क्षेत्रों में औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक अनेक प्रकार की आधारभूत सुविधाओं जैसे- सड़क, बिजली, जलपूर्ति के साधनों, संचार साधनों इत्यादि को विकसित करके औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित कर सकती है। साथ ही साथ सरकार अनेक प्रकार की जनउपयोगी सुविधाओं जैसे- चिकित्सा, शिक्षा, आवास इत्यादि को विकसित करके भी पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित कर सकती है।
3. **वित्तीय उपाय -** सरकार पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास को प्रेरित करने के लिए अनेक प्रकार की वित्तीय सहायता तथा प्रोत्साहन दे सकती है। जैसे सरकार पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक इकाईयों के लिए अनुदान तथा विभिन्न प्रकार के करों में रियायत का प्रावधान कर सकती है। इसके अलावा सरकार बैंको तथा वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित किये जाने वाले औद्योगिक इकाईयों को कम ब्याज दर एवं आसान शर्तों पर पूँजी उपलब्ध करा सकती है।
4. **सार्वजनिक क्षेत्र के इकाईयों की स्थापना -** पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार खुद औद्योगिक इकाईयों को स्थापित कर सकती है। इस प्रकार के औद्योगिक इकाईयों की स्थापना से जहाँ एक तरफ पिछड़े क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों से वृद्धि होगी वहीं दूसरी तरफ विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की मांग में वृद्धि होने के कारण अनेक सहायक उद्योगों के विकास की सम्भवनायें भी विकसित होने लगते हैं।
5. **अन्य उपाय-** उपरोक्त उपायों के अतिरिक्त सरकार अनेक प्रकार के प्रशासनिक एंव मनोवैज्ञानिक उपायों को अपना कर पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित कर सकती है। जैसे कि सरकार पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग विभागों के कार्यालय स्थापित कर सकती है जिससे कि इन क्षेत्रों में स्थापित होने वाली इकाईयों को आवश्यक औद्योगिक सूचनाएं, परामर्श एवं मार्गदर्शन

प्राप्त हो सके। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक उपायों के अन्तर्गत सरकार उद्योगपतियों से विचार-विमर्श करके उन्हें पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक इकाई स्थापित करने के लिए प्रेरित कर सकती है। साथ ही साथ सरकार स्थानीय उद्यमियों के लिए समय-समय पर आवश्यक शिक्षण एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों आयोजित कर सकती है अथवा इनके आयोजन को प्रायोजित कर सकती है।

9.6 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति में देश के साधनों का समुचित उपयोग नहीं होता है।।
2. औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति आय के वितरण में समानता उत्पन्न करती है।
3. औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति एक देश के केवल आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है।
4. सन्तुलित क्षेत्रीय विकास के द्वारा रोजगार के अवसरों में समानता लायी जा सकती है।
5. सन्तुलित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता केवल वर्तमान की दृष्टिकोंण से महत्वपूर्ण होता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. सन्तुलित औद्योगिक विकास आय एवं सम्पत्ति के .... में सहायक होता है।
(केन्द्रीयकरण **या** विकेन्द्रीयकरण **या** दोनों)
2. संरचनात्मक असन्तुलन एक देश में...............को बढ़ावा दे सकती है।
(अतिउत्पादन **या** अल्पउत्पादन **या** दोनों)
3. क्षेत्रीय असन्तुलन को...............उपायों के द्वारा दूर किया जा सकता है।
(निषेधात्मक **या** प्रेरणात्मक **या** दोनों)
4. असन्तुलित क्षेत्रीय विकास की स्थिति को सरकार...............से दूर कर सकती है।
(कठोर नीति **या** उदार नीति **या** दोनों)

9.7 सारांश

एक देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति अनेक प्रकार के आथिक कुप्रभावों जैसे- रोजगार के अवसरों में असमानता, आय एवं सम्पत्ति के वितरण में विषमता, संसाधनों के दुरुपयोग,उत्पाद संरचना में असन्तुलन, एकाधिकारी शक्तियों में वृद्धि इत्यादि को जन्म दे सकती है। इतना ही नहीं बल्कि इस प्रकार की स्थिति समाज में असन्तोष उत्पन्न कर सकती है जिससे देश राजनीतिक व्यवस्था भी प्रभावित हो सकती है। इसीलिए औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति किसी भी देश के लिए वांछनीय नही होती है। अत: एक देश के लिए यह आवश्यक होता है कि इसके सभी क्षेत्रों तथा उद्योगों का सन्तुलित रुप से विकास हो। इसके लिए आवश्यक होता है कि देश के सभी क्षेत्रों में रोजगार के समान अवसर उपलब्ध हो, आय एवं सम्पत्ति के वितरण में विषमता न हो, संसाधनों का समुचित उपयोग हो, देश में सभी प्रकार के उद्योगों का सन्तुलित रुप में विकास हो तथा बाजार में प्रतिस्पर्धा का माहौल कायम हो।

सन्तुलित विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक देश की सरकार विभिन्न उपायों को अपना सकती है। इन उपायों में कुछ उपाय ऐसे होते हैं जिनके द्वारा औद्योगिक रुप से विकसित क्षेत्रों में औद्योगिक स्थानीयकरण की क्रिया को हतोत्साहित किया जाता है जबकि कुछ उपाय ऐसे होते हैं जिनके द्वारा पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक स्थानीयकरण की क्रिया को प्रोत्साहित किया जाता है। जैसे कि सरकार विकसित क्षेत्रों में नयी औद्योगिक इकाईयों के स्थापना एवं पुरानी इकाईयों के विस्तार क्रिया को कठोर नीति के माध्यम से निषिद्ध कर सकती है। दूसरी तरफ सरकार पिछड़े क्षेत्रों के लिए उदार नीति अपना कर उद्यमियों को निवेश के लिए प्रेरित कर सकती है। सरकार पिछड़े क्षेत्रों में संसाधनों एवं अनेक प्रकार के सुविधाओं को विकसित करके भी औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित कर सकती है। इसके अलावा सरकार पिछड़े क्षेत्रों में निवेशकों को अनुदान तथा करों में रियायत प्रदान करके भी औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित

कर सकती है। इतना ही नहीं बल्कि सरकार पिछड़े क्षेत्रों में खुद सार्वजनिक इकाईयां स्थापित करके इन क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को प्रेरित कर सकती है।

9.8 शब्दावली

- **उद्योगों की अल्पता -** इस शब्द का प्रयोग किसी क्षेत्र में औद्योगिक इकाईयों के सीमित संख्या को व्यक्त करने के लिए किया गया है।
- **सतत विकास -** इस शब्द का अभिप्राय किसी देश के विकास की उस प्रक्रिया से होता है जिसमें देश के वर्तमान स्थिति का विकास इस प्रकार होता है जिसमें कि देश के भविष्य के हितों का भी संरक्षित रहे।
- **संसाधनों का दोहन -** किसी क्षेत्र विशेष के स्थानीय संसाधनों को विकसित करके उत्पादन प्रक्रिया में उपयोग करने की क्रिया ही संसाधनों के दोहन को व्यक्त करती है।
- **संरचनात्मक असन्तुलन -** यदि किसी देश का औद्योगिक विकास इस प्रकार से होता है कि देश के विभिन्न उद्योगों के बीच असामन्जस्य अर्थात् असन्तुलन की स्थिति विद्यमान हो तो इस प्रकार का असन्तुलन संरचनात्मक असन्तुलन कहलाता है।
- **औद्योगिक संकेन्द्रण -** यदि किसी देश का औद्योगिक जगत के अन्तर्गत किसी उद्योग विशेष अथवा कुछ उद्योगों के अन्तर्गत औद्योगिक इकाईयों का वितरण समान नहीं है तो यह स्थिति औद्योगिक संकेन्द्रण की स्थिति कहलाती है।
- **अतिउत्पादन -** किसी भी उत्पाद का उत्पादन अर्थात् आपूर्ति उसकी माँग की तुलना में अधिक हो जाए तो यह स्थिति अतिउत्पादन की स्थिति को व्यक्त करती है।
- **अल्पउत्पादन -** किसी भी उत्पाद का उत्पादन अर्थात् आपूर्ति उसकी माँग की तुलना में कम हो जाए तो यह स्थिति अल्पउत्पादन की स्थिति को व्यक्त करती है।
- **अति-आबादी -** इस शब्द का अभिप्राय घनी आबादी से होता है। वस्तुत: यदि किसी क्षेत्र अथवा नगर में उपलब्ध सुविधाओं की क्षमता की तुलना में उस क्षेत्र अथवा नगर में निवासियों की संख्या अधिक हो जाए तो यह स्थिति अति-आबादी को व्यक्त करेगी।
- **इकाईयों का विस्तार -** यदि कोई पहले से स्थपित औद्योगिक इकाई अपने उत्पादन क्षमता अथवा व्यवसाय के आकार में वृद्धि करती है तो इस प्रक्रिया को इकाई का विस्तार कहा जाता है।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. सत्य
2. असत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. असत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. विकेन्द्रीकरण
2. दोनों
3. दोनों
4. दोनों

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Kuchhal, S.C. (1978): ***Industrial Economy of India*** Chaitanya Publishing House, Allahabad.
- Mishra and Puri (2010): ***Indian Economy***, Himalaya Publication, New Delhi.
- Dutt and Sundaram (2010): ***Indian Economy***, S. Chand Publication, New Delhi.

9.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Barthwal, R.R. (2005): ***Industrial Economics – An Introductory Textbook***, New Age International Publishers, New Delhi.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, New Delhi.
- Singh, A. and A.N. Sadhu (1988): ***Industrial Economics***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति विद्यमान होने पर कौन-कौन से प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं? अपने उत्तर की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।
2. "औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति एक क्षेत्र विशेष के लिए तो वांछनीय हो सकती है परन्तु देश की दृष्टिकोण से नहीं।" इस वाक्यांश की विवेचना कीजिए।
3. उन उद्वेश्यों को स्पष्ट कीजिए जिनको प्राप्त करने के लिए एक देश के लिए सन्तुलित औद्योगिक विकास को प्राप्त करना आवश्यक होता है।
4. एक देश में औद्योगिक असन्तुलन की स्थिति का निराकरण किन उपायों के द्वारा किया जा सकता है?
5. किसी देश में क्षेत्रीय सन्तुलन की आवश्यकता एवं इसकी प्राप्ति के लिए विभिन्न आवश्यक उपायों की विवेचना कीजिए।

इकाई-10 उत्पादकता- मापदण्ड और मापन

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 औद्योगिक उत्पादकता का अर्थ
10.4 औद्योगिक उत्पादकता के मापदण्ड
10.5 औद्योगिक उत्पादकता का मापन
10.5.1. अनुपात विधि
10.5.2. रेखीय प्रोग्रामिंग विधि
10.5.3. अर्थमिति विधि
10.6 अभ्यास प्रश्न
10.7 सारांश
10.8 शब्दावली
10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

औद्योगिक इकाईयों अथवा सम्पूर्ण औद्योगिक जगत के निष्पादन के आकलन के दृष्टिकोंण से एक महत्वपूर्ण पहलू होता है औद्योगिक उत्पादकता । इसलिए औद्योगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत औद्योगिक उत्पादकता के अध्ययन का भी अपना अलग महत्व है । इस इकाई के अन्तर्गत औद्योगिक उत्पादकता के अर्थ तथा इसके मापन के लिए प्रचलित पद्धतियों का वर्णन किया जायेगा । इससे सम्बन्धित अन्य पहलुओं की विवेचना आगे की इकाईयों में किया जायेगा ।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रमुख रुप से निम्नलिखित तीने बातों को समझने में सक्षम हो सकेंगे -

- ✓ औद्योगिक उत्पादकता का अभिप्राय क्या होता है ।
- ✓ औद्योगिक उत्पादकता को किन मापदण्डों के रुप में व्यक्त किया जाता है ।
- ✓ औद्योगिक उत्पादकता का मापन किस प्रकार से किया जाता है ।

10.3 औद्योगिक उत्पादकता का अर्थ

औद्योगिक उत्पादकता सामान्य रुप से औद्योगिक उत्पादन की मात्रा तथा इसके लिए प्रयुक्त किये गये साधनों की मात्रा के बीच के सम्बन्ध को व्यक्त करता है। वस्तुतः इसका अभिप्राय उस अनुपात से होता है जो कुल औद्योगिक उत्पादन तथा उत्पादन में प्रयुक्त किये गये साधनों की मात्रा के बीच होता है । इसको गणितीय रुप में निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है-

$$\text{उत्पादकता} = \frac{\text{कुल उत्पादन की मात्रा}}{\text{प्रयुक्त साधनों की मात्रा}}$$

यदि किसी औद्योगिक इकाई अथवा उद्योग के लिए साधनों की तुलना में उत्पादन की मात्रा अधिक है तो यह इस बात का प्रतीक होगा कि उत्पादकता अधिक है । इस तथ्य को और स्पष्ट रुप से इस रुप में समझ सकते हैं कि यदि एक निश्चित समय अवधि अर्थात् दो समय बिन्दुओं के बीच साधनों की मात्रा स्थिर रहे परन्तु उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हो जाए तो यह स्थिति उत्पादकता में वृद्धि को व्यक्त करेगी । जैसे यदि एक औद्योगिक इकाई में प्रयुक्त साधन की मात्रा 100 इकाई के बराबर हो तथा उत्पादन की मात्रा 120 से बढ़कर 150 इकाई के बराबर हो जाए तो उत्पादकता 1.2 से बढ़कर 1.5 के बराबर हो जायेगा ।

ठीक इसी प्रकार यदि एक निश्चित समय बिन्दु पर दो औद्योगिक इकाईयों अथवा दो उद्योगों में प्रयुक्त साधनों की मात्रा स्थिर रहे परन्तु उत्पादन की मात्रा में भिन्नता हो तो इस स्थिति में दोनों इकाईयों की उत्पादकता भिन्न-भिन्न होगी । जैसे कि यदि दोनों औद्योगिक इकाई में प्रयुक्त साधन का मात्रा 200 इकाई के बराबर हो तथा एक इकाई में उत्पादन की मात्रा 250 हो जबकि दूसरी इकाई में उत्पादन की मात्रा 280 इकाई के बराबर हो तो ऐसी स्थिति में दोनों औद्योगिक इकाइयों की उत्पादकता क्रमशः 1.25 तथा 1.40 होगी ।

यहाँ एक बात समझ लेना आवश्यक है कि दो औद्योगिक इकाईयों में उत्पादन की मात्रा स्थिर रहे फिर भी उत्पादकता भिन्न-भिन्न हो सकती है यदि दोनों इकाईयों में प्रयुक्त साधनों की मात्रा में भिन्नता हो । उदाहरण के लिए यदि दो औद्योगिक इकाईयों में उत्पादन की मात्रा 150 इकाई के बराबर हो परन्तु एक इकाई में प्रयुक्त साधन की मात्रा 50 हो जबकि दूसरे में प्रयुक्त साधन की मात्रा 75 इकाई के बराबर हो तो पहली इकाई की उत्पादकता 150/50 अर्थात् 3.0 के बराबर होगी जबकि दूसरी इकाई की उत्पादकता 150/75 अर्थात् 2.0 के बराबर होगी।

10.4 औद्योगिक उत्पादकता के मापदण्ड

परम्परागत रुप में औद्योगिक उत्पादकता को किसी एक साधन की उत्पादकता के रुप में व्यक्त किया जाता था और इसके लिए साधनों के अन्तर्गत 'श्रम साधन' को ही प्रमुख साधन के रुप में स्वीकार किया जाता था और इसीलिए इसे 'श्रम उत्पादकता' के रुप में ही व्यक्त किया जाता रहा। परन्तु उत्पादन

प्रक्रिया में चूँकि श्रम के अलावा अन्य साधनों जैसे- भूमि, पूँजी, मशीन, कच्चे माल इत्यादि का भी प्रयोग किया जाता है इसलिए उत्पादकता को श्रम उत्पादकता के अतिरिक्त अन्य रुपों में भी व्यक्त किया जाता है। अत: औद्योगिक उत्पादकता को इन रुपों में भी व्यक्त किया जाता है- 'भूमि उत्पादकता', 'पूँजी उत्पादकता', 'मशीन उत्पादकता', 'पदार्थ उत्पादकता' इत्यादि।

यदि औद्योगिक उत्पादकता को 'श्रम उत्पादकता' के रुप में व्यक्त किया जाए तो उत्पादकता का यह मापदण्ड उत्पादन प्रक्रिया में श्रम के योगदान का मापन करेगा तथा श्रम साधन के अनुकूलतम उपयोग की स्थिति का आंकलन प्रस्तुत करेगा। इसी प्रकार यदि औद्योगिक उत्पादकता को 'भूमि उत्पादकता' के रुप में व्यक्त किया जाए तो उत्पादकता का यह मापदण्ड उत्पादन प्रक्रिया में भूमि संसाधन के योगदान का मापन करेगा तथा इसके के अनुकूलतम उपयोग की स्थिति का आंकलन प्रस्तुत करेगा। इसी प्रकार 'पूँजी उत्पादकता' उत्पादन प्रक्रिया में पूँजी के योगदान का मापन करता है तथा पूँजी के अनुकूलतम उपयोग की स्थिति का आंकलन प्रस्तुत करता है।

उत्पादकता के आंकलन के लिए उपरोक्त मापदण्ड आंशिक आंकलन पर आधारित हैं क्योंकि उपरोक्त मापदण्डों में से कोई भी मापदण्ड किसी एक साधन के कुशलता के आधार पर उत्पादकता की स्थिति का आंकलन प्रस्तुत करता है। एक औद्योगिक इकाई अथवा सम्पूर्ण उद्योग के समग्र उत्पादकता का आकलन उसके 'अनुकूलतम स्थिति' के आधार पर किया जाता है। किसी औद्योगिक इकाई की अनुकूलतम स्थिति का निर्धारण वस्तुत: इस बात से होता है कि वह इकाई अपने व्यवसाय का संचालन किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करता है। विभिन्न उद्देश्यों के अन्तर्गत एक फर्म के अनुकूलतम स्थिति अर्थात् उत्पादकता के भिन्न-भिन्न मापदण्ड हो सकते हैं।

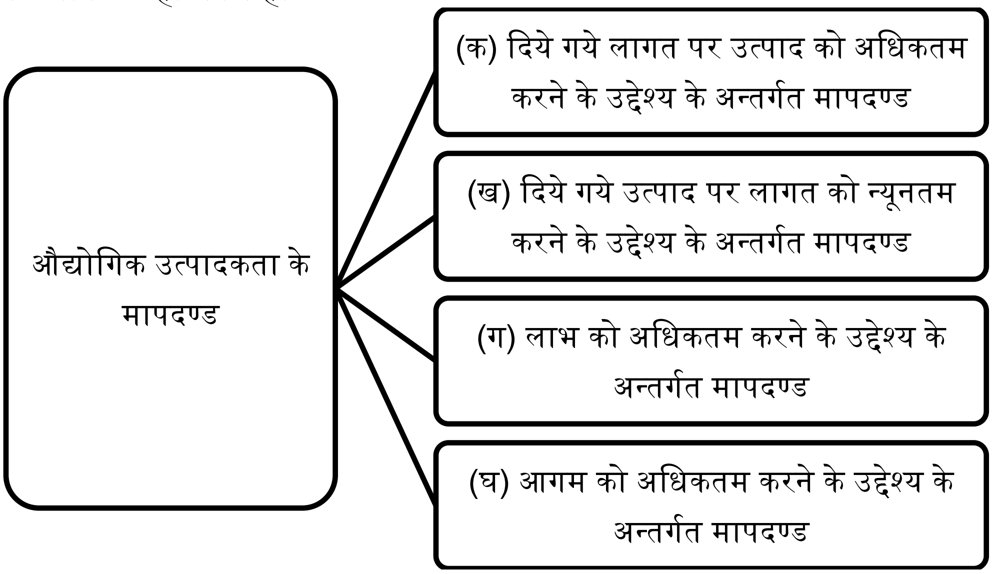

ये विभिन्न मापदण्ड निम्न प्रकार हो सकते हैं-

(क) दिये गये लागत पर उत्पाद को अधिकतम करने के उद्देश्य के अन्तर्गत मापदण्ड

यदि कोई फर्म किसी उत्पाद X का उत्पादन दो साधनों F_1 तथा F_2 का उपयोग करके इस उद्देश्य के आधार पर करती है कि दी गयी लागत की दशा में उत्पादन का अधिकतम स्तर प्राप्त हो तो ऐसी स्थिति में कुशलतम उत्पादन का स्तर वहाँ पर होगा जहाँ पर कि दोनों साधनों की 'सीमान्त उत्पाद' का अनुपात उनकी 'कीमतों के अनुपात' के बराबर होगा अर्थात्

$$\frac{\text{साधन } F_1 \text{ की सीमान्त उत्पाद}}{\text{साधन } F_2 \text{की सीमान्त उत्पाद}} = \frac{\text{साधन } F_1 \text{ की कीमत}}{\text{साधन } F_2 \text{ की कीमत}}$$

इस दशा में कुशलता के बिन्दू को निम्न चित्र में दर्शाया गया है।

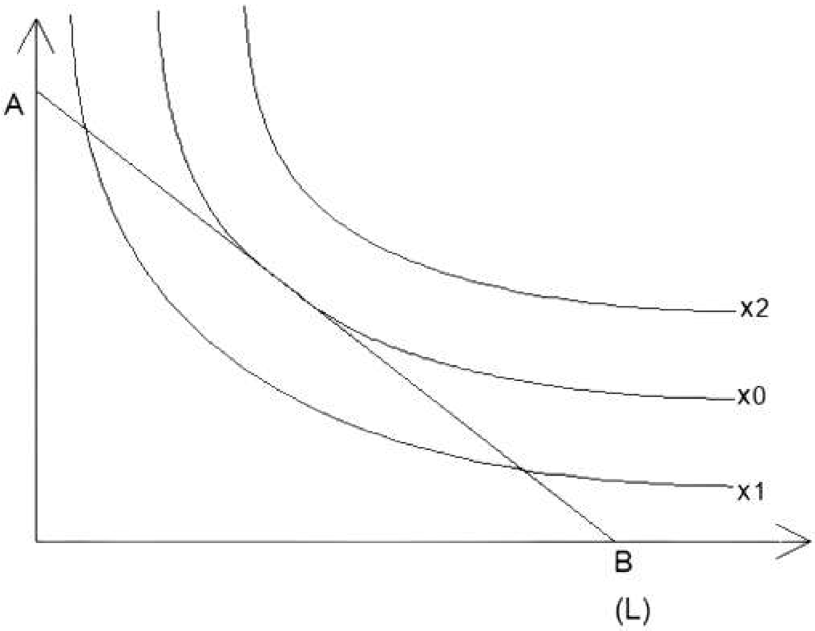

उपरोक्त चित्र में X_1, X_0 तथा X_2 फर्म के समउत्पाद वक्रों को व्यक्त करते हैं तथा प्रत्येक वक्र उत्पादन के एक निश्चित स्तर को व्यक्त करता है। रेखा AB दोनों साधनों के कीमत अनुपात को व्यक्त करता है तथा यह दी गयी लागत दशा को भी व्यक्त करता है। इस दी गयी लागत दशा के अन्तर्गत फर्म का अनुकूलतम बिन्दु वहाँ पर है जहाँ पर X_0 समउत्पाद वक्र,AB रेखा को स्पर्श करता है तथा ऐसी स्थिति में फर्म के अनुकूलतम उत्पादन का स्तर X_0 होगा। इसका अभिप्राय यह है कि यदि AB रेखा द्वारा व्यक्त लागत की दशा में उत्पादन का स्तर X_0 है तब तो उत्पादकता अधिकतम होगी परन्तु यदि इस लागत की दशा में उत्पादन का स्तर X_1 है तो उत्पादकता का स्तर अधिकतम नहीं होगा।

(ख) दिये गये उत्पाद पर लागत को न्यूनतम करने के उद्देश्य के अन्तर्गत मापदण्ड

यदि कोई फर्म किसी उत्पाद X का उत्पादन दो साधनों F_1 तथा F_2 का उपयोग करके इस उद्देश्य के आधार पर करता है कि एक निश्चित उत्पादन के स्तर को प्राप्त करने के लिए लागत का स्तर न्यूनतम हो तो इस उद्देश्य के अन्तर्गत भी उत्पादन की अनुकूलतम स्थिति वही प्राप्त होती है जो कि उत्पाद को अधिकतम करने की स्थिति में होता है। अर्थात् इस स्थिति में भी फर्म का कुशलतम बिन्दु वहाँ पर होता है जहाँ पर कि साधनों की सीमान्त उत्पाद का अनुपात साधनों की कीमत के बराबर होगा। अर्थात्

$$\frac{\text{साधन } F_1 \text{ की सीमान्त उत्पाद}}{\text{साधन } F_2 \text{की सीमान्त उत्पाद}} = \frac{\text{साधन } F_1 \text{ की कीमत}}{\text{साधन } F_2 \text{ की कीमत}}$$

इस दशा में कुशलता के बिन्दू को निम्न चित्र में दर्शाया गया है।

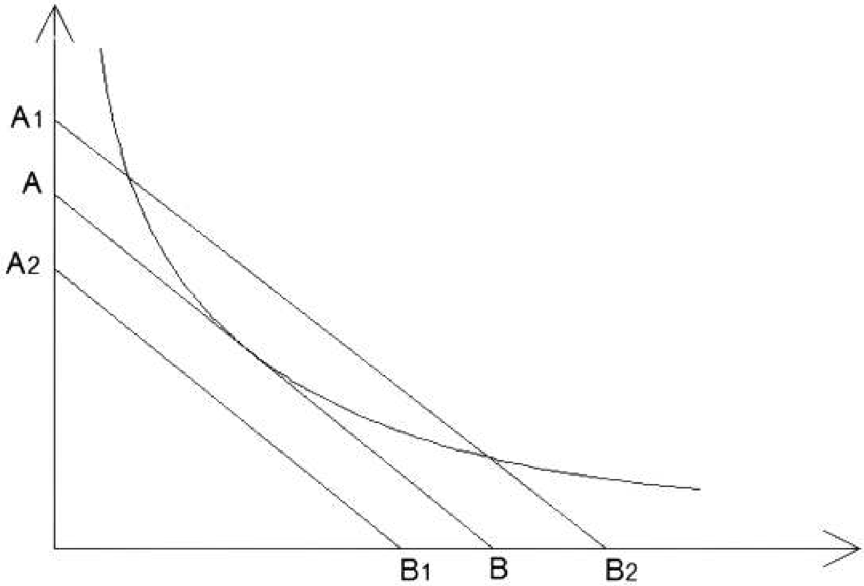

उपरोक्त चित्र में A_1B_2, AB तथा A_2B_1 फर्म के विभिन्न समलागत वक्रों को व्यक्त करते हैं तथा प्रत्येक वक्र उत्पादन के एक निश्चित लागत के स्तर को व्यक्त करता है। समउत्पाद वक्र उत्पादन के एक निश्चित स्तर को व्यक्त करता है जिसे प्राप्त करने लिए फर्म लागत को न्यूनतम करना चाहता है। इस दशा के अन्तर्गत फर्म का अनुकूलतम बिन्दु वहाँ पर है जहाँ पर X_0 समउत्पाद वक्र AB रेखा को स्पर्श करता है तथा ऐसी स्थिति में फर्म के अनुकूलतम उत्पादन का स्तर X_0 होगा तथा लागत का स्तर AB रेखा के द्वारा व्यक्त होगा। इसका अभिप्राय यह है कि यदि X_0 उत्पादन का स्तर A_1B_2 रेखा द्वारा व्यक्त लागत की दशा पर प्राप्त हो तो उत्पादकता अधिकतम नहीं होगी बल्कि कम होगी।

(ग) लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य के अन्तर्गत मापदण्ड

यदि कोई फर्म दो साधनों F_1 तथा F_2 का उपयोग करके किसी उत्पाद X का उत्पादन करती है और अपने लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य निर्धारित करती है तो ऐसी स्थिति में कुशलतम उत्पादन का स्तर वह होगा जहाँ पर निम्नलिखित दो दशाए पायी जाती हो-

(1) फर्म के सीमान्त आगम का मान, सीमान्त लागत के मान के बराबर होना चाहिए

(2) फर्म का सीमान्त लागत वक्र, सीमान्त आगम वक्र को नीचे से प्रतिच्छेदित करता हो।

इस दशा में फर्म के कुशलतम बिन्दु को निम्न चित्र में दर्शाया गया है।

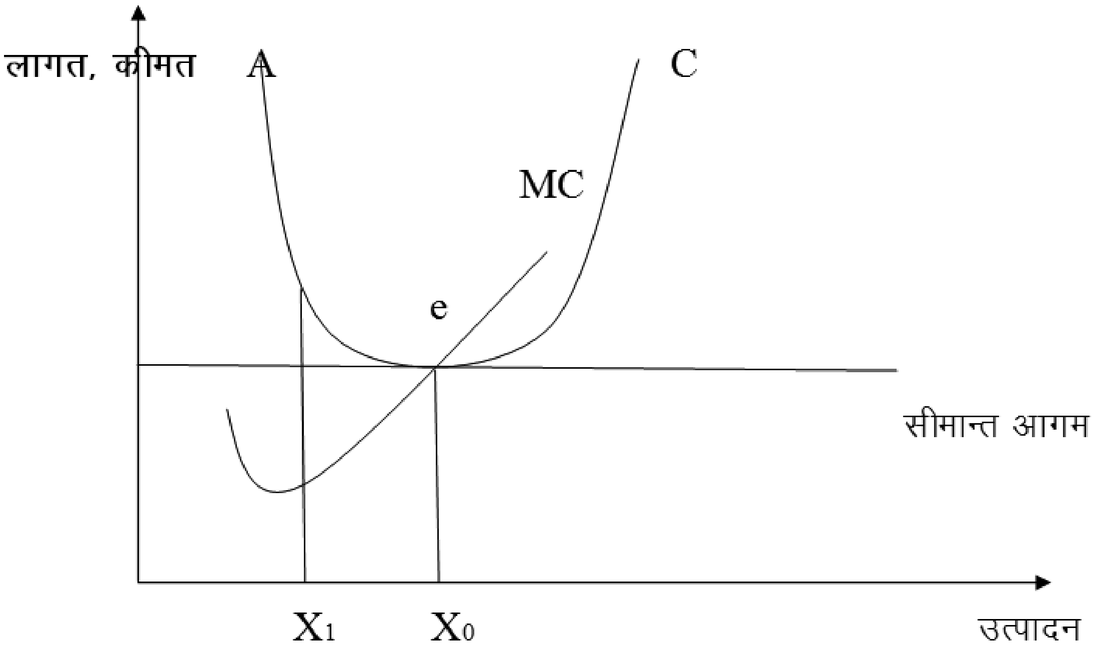

चित्र में वक्र MC फर्म के सीमान्त लागत वक्र को व्यक्त कर रहा है। बिन्दु e पर सीमान्त लागत, सीमान्त आगम के बराबर है तथा सीमान्त लागत वक्र, सीमान्त आगम वक्र को नीचे से प्रतिच्छेदित कर रहा है। अत: X_0 उत्पादन का स्तर अनुकूलतम उत्पादन अर्थात् अधिकतम उत्पादकता की स्थिति को व्यक्त कर रहा है। यदि फर्म का उत्पादन X_1 स्तर पर हो तो इस स्थिति में उत्पादकता कम होगी।

(घ) आगम को अधिकतम करने के उद्देश्य के अन्तर्गत मापदण्ड

यदि कोई फर्म एक आगत F का प्रयोग करके दो उत्पादों q_1 तथा q_2 का उत्पादन करती है और अपने आगम को अधिकतम करने का उद्देश्य निर्धारित करता है तो ऐसी स्थिति में कुशलतम उत्पादन का स्तर वह होगा जबकि दोनो उत्पादों की सीमान्त लागतों का अनुपात उन उत्पादों की कीमतों के अनुपात के बराबर हो। अर्थात्

$$\frac{\text{उत्पाद } q_1 \text{ की सीमान्त लागत}}{\text{उत्पाद } q_2 \text{ की सीमान्त लागत}} = \frac{\text{उत्पाद } q_1 \text{ की कीमत}}{\text{उत्पाद } q_2 \text{ की कीमत}}$$

इस दशा में फर्म के कुशलतम बिन्दु को निम्न चित्र में दर्शाया गया है।

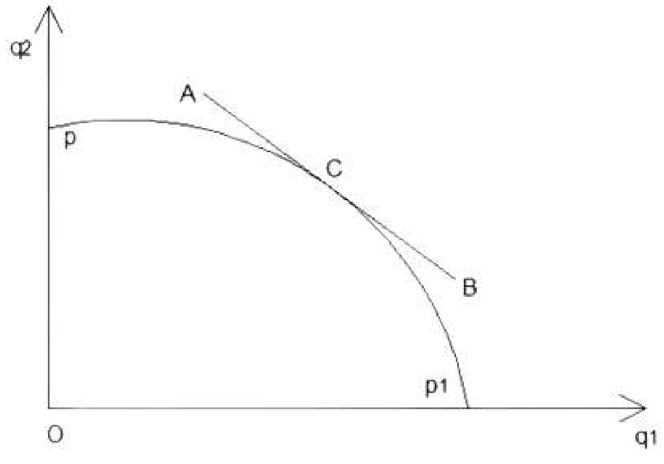

उपरोक्त चित्र में वक्र pp1 फर्म के 'उत्पादन सम्भावना वक्र' को व्यक्त करता है तथा रेखा AB दोनों उत्पादों के कीमत अनुपात को व्यक्त करता है। बिन्दु C अनुकूलतम स्थिति अर्थात् अधिकतम उत्पादकता की स्थिति को व्यक्त कर रहा है। यदि फर्म की स्थिति वक्र pp1 पर C बिन्दु के अलावा किसी अन्य बिन्दु पर होगी तो वह स्थिति अधिकतम उत्पादकता की नहीं होगी।

10.5 औद्योगिक उत्पादकता का मापन

परम्परागत रुप में औद्योगिक उत्पादकता का मापन उत्पादन की मात्रा का अलग-अलग साधनों के अनुपात की गणना के द्वारा किया जाता है। इसीलिए इस पद्धति को 'अनुपात विधि' कहा जा सकता है। औद्योगिक उत्पादकता का यह मापक उत्पादकता का केवल आंशिक मापन ही प्रस्तुत करता है क्योंकि यह मापक केवल किसी एक साधन के उत्पादकता को ही व्यक्त करता है। अत: यदि उत्पादन प्रक्रिया की समस्त साधनों की उत्पाकता को एक साथ अर्थात् समग्र रुप में देखना हो या औद्योगिक इकाई की कुशलता का आंकलन करना हो तो उपरोक्त मापक उपयुक्त नहीं हो सकते। इसके लिए अन्य विधियों को अपनाना होगा। इन्हीं विधियों में दो विधियां प्रचलित हैं- 'रेखीय प्रोग्रामिंग विधि' तथा 'अर्थमिति विधि'।

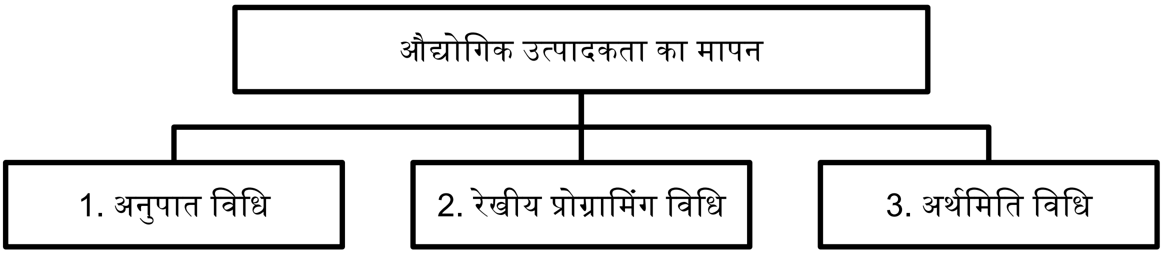

आगे इन विधियों को स्पष्ट किया जा रहा है।

10.5.1. अनुपात विधि

इस विधि के अन्तर्गत औद्योगिक उत्पादकता को उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त किये गयें साधनों के पृथक-पृथक उत्पादकता के रुप में व्यक्त किया जाता है जैसे- श्रम की उत्पादकता,भूमि की उत्पादकता, मशीन की उत्पादकता, पूँजी की उत्पादकता।

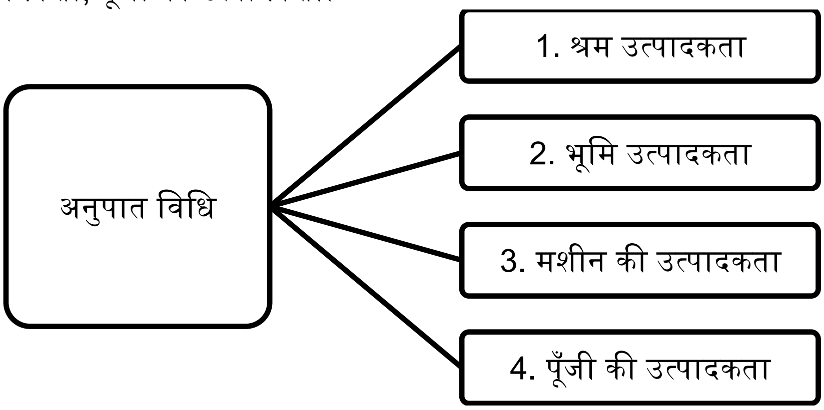

इन उत्पादकताओं का मापन निम्न प्रकार से किया जाता है-

1. श्रम उत्पादकता - श्रम उत्पादकता का मापन सामान्य रुप से निम्न सूत्र के आधार पर किया जाता है-

$$\text{श्रम उत्पादकता} = \frac{\text{कुल उत्पादन की मात्रा}}{\text{कुल विनियोजित श्रमिकों की संख्या}}$$

उत्पादकता का उपरोक्त मान प्रति श्रमिक उत्पादकता को व्यक्त करता है परन्तु श्रम की मात्रा को कुल कार्य-घण्टे के रुप में व्यक्त किया जाए तो श्रम उत्पादकता का मापन निम्न सूत्र के रुप में किया जाता है-

$$\text{श्रम उत्पादकता} = \frac{\text{कुल उत्पादन की मात्रा}}{\text{कुल विनियोजित श्रमिकों की संख्या}}$$

2. भूमि उत्पादकता - भूमि की उत्पादकता का मापन निम्न सूत्र के द्वारा किया जाता है-

$$\text{भूमि उत्पादकता} = \frac{\text{कुल उत्पादन की मात्रा}}{\text{कुल विनियोजित भूमि का क्षेत्रफल}}$$

यह अनुपात वस्तुत: भूमि के उपयोग की कुशलता के मापन को व्यक्त करता है। इसे 'औसत प्रति हेक्टेयर उत्पादन' के नाम से भी जाना जाता है।

3. मशीन की उत्पादकता - मशीन की उत्पादकता को कुल उत्पादन की मात्रा तथा उत्पादन प्रक्रिया में संचालित मशीनों के कुल प्रयुक्त समय के अनुपात के रुप में व्यक्त किया जाता है। इसका मापन निम्न सूत्र के द्वारा किया जाता है-

$$\text{मशीन उत्पादकता} = \frac{\text{कुल उत्पादन की मात्रा}}{\text{कुल विनियोजित मशीन} - \text{घंटो की संख्या}}$$

स्पष्ट है कि उपरोक्त उनुपात उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त मशीनों की कुशलता को व्यक्त करता है।

4. पूँजी की उत्पादकता - पूँजी की उत्पादकता का मापन निम्न सूत्र के आधार पर किया जाता है-

$$\text{पूँजी की उत्पादकता} = \frac{\text{कुल उत्पादन की मात्रा}}{\text{कुल विनियोजित पूँजी की मात्रा}}$$

10.5.2. रेखीय प्रोग्रामिंग विधि

यह पद्धति इस धारणा पर आधारित है कि कोई भी औद्योगिक इकाई अर्थात् फर्म अपने व्यवसाय का संचालन कुछ उद्देश्यों को प्राप्त करने लिए करती है। परन्तु इन उद्देश्यों की प्राप्ति उपलब्ध संसाधनों के सीमाओं के अन्तर्गत ही करना होता है। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि फर्म के अनुकूलतम उत्पादन की स्थिति का आंकलन किया जाए। वस्तुत: एक फर्म का अनुकूलतम बिन्दु ही साधनों के कुशलतम उपयोग अर्थात् अधिकतम उत्पादकता के स्तर को व्यक्त करता है। रेखीय प्रोग्रामिंग पद्धति के अन्तर्गत इसी अनुकूलतम बिन्दु का आंकलन किया जाता है।

रेखीय प्रोग्रामिंग पद्धति के अन्तर्गत फर्म के उद्धेश्य को एक 'उद्देश्य फलन' तथा साधनों की सीमाओं को कुछ 'प्रतिबन्ध समीकरणों' के रुप में व्यक्त किया जाता है। इन समीकरणों के आधार पर फर्म के अनुकूलतम बिन्दु का आंकलन किया जाता है। इस पद्धति को निम्न उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है-

माना कि कोई फर्म तीन साधनों- श्रम, मशीन तथा कच्चे माल का प्रयोग करके दो उत्पादों- X1 एवं X2 का उत्पादन करती है। X1 उत्पाद के 1 इकाई के उत्पादन में 1 इकाई श्रम-घण्टा, 1 इकाई मशीन-घण्टा तथा 2 इकाई कच्चे माल की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, X2 उत्पाद के 1 इकाई के उत्पादन में 3 इकाई श्रम-घण्टा, 1 इकाई मशीन-घण्टा तथा 1 इकाई कच्चे माल की आवश्यकता होती है। फर्म के पास कुल 18 इकाई श्रम-घण्टे, 8 इकाई मशीन-घण्टे तथा 14 इकाई कच्चे माल के रुप में संसाधन उपलब्ध हैं। दोनों उत्पादों की बाजार में प्रत्याशित कीमत क्रमश: 10 तथा 20 रूपयें है। फर्म के कुशलतम उत्पादन प्रक्रिया के आकलन के लिए यह आवश्यक होगा कि दिए गये संसाधनों की स्थिति में फर्म के दोनों उत्पादों के अनुकूलतम उत्पादन स्तर का आंकलन किया जाए।

यदि फर्म अपने उत्पादन प्रक्रिया का संचालन इस उद्देश्य के आधार पर करती है कि उसको प्राप्त होने वाला आगम अधिकतम हो तथा इस अधिकतम आगम पर दोनों उत्पादों X1 एवं X2 के उत्पादन का स्तर क्रमश: q1 एवं q2 हो तो ऐसी स्थिति में फर्म का उद्देश्य फलन निम्नवत् होगा-

$$R = 10\,q1 + 20\,q2 \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots.(1)$$

जहाँ पर R फर्म के आगम को व्यक्त करता है।

इस स्थिति में फर्म के 'प्रतिबन्ध समीकरण' निम्नवत् होंगे-

$$q1 + 3q2 \leq 18 \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(2)$$
$$q1 + q2 \leq 8 \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(3)$$
$$2q1 + q2 \leq 14 \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(4)$$

उपरोक्त प्रतिबन्ध समीकरणों में से प्रत्येक समीकरण इस बात को प्रदर्शित करता है कि आगतों अर्थात् संसाधनों का उपयोग उनकी उपलब्ध सीमा के भीतर हो रहा है। उदाहरण के लिए X1 एवं X2 उत्पादों के प्रति इकाई उत्पादन में चूँकि क्रमश: 1 इकाई तथा 3 इकाई श्रम-घण्टों की आवश्यकता होती है इसलिए दोनों उत्पादों के q1 एवं q2 मात्रा के लिए आवश्यक श्रम की मात्रा क्रमश: 1 x q1 तथा 3 x q2 के बराबर होगी। अत: कुल आवश्यक श्रम की मात्रा q1 +3q2 के बराबर होगी। और चूँकि फर्म के पास कुल उपलब्ध श्रम संसाधन 18 घण्टे है इसलिए आवश्यक श्रम की मात्रा इससे अधिक नहीं होनी चाहिए। समीकरण (2) इसी तथ्य को स्पष्ट कर रहा है। ठीक इसी प्रकार समीकरण (3) तथा (4) भी मशीन एवं कच्चे माल की उपलब्ध सीमाओं को व्यक्त करते हैं।

रेखीय प्रोग्रामिंग पद्धति के अन्तर्गत उपरोक्त चारों समीकरणों को बीजगणितीय विधि अथवा ग्राफीय विधि के द्वारा हल कर लिया जाता है और q1 तथा q2 के मानों को ज्ञात कर लिया जाता है। q1 तथा q2 के ये ज्ञात मान ही फर्म के अनुकूलतम उत्पादन स्तर अर्थात् कुशलतम स्तर को व्यक्त करेंगे। इसका अभिप्राय यह है कि यदि दी गयी संसाधनों की स्थिति में किसी भी समय फर्म के उत्पादन का स्तर उपरोक्त अनुकूलतम स्तर के जितना ही निकट होगा फर्म की उत्पादकता उतनी ही अधिक होगी और दूसरी तरफ फर्म के उत्पादन का स्तर उपरोक्त अनुकूलतम स्तर के जितना ही दूर होगा फर्म की उत्पादकता उतनी ही कम होगी।

10.5.3. अर्थमिति विधि

अर्थमिति विधि के अन्तर्गत उत्पादकता का आकलन औद्योगिक इकाई अथवा सम्पूर्ण उद्योग के 'उत्पादन फलन' के आंकलन के आधार पर किया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत उत्पादकता का जो आकलन प्राप्त होता है वह समस्त संसाधनों के उत्पादकता को व्यक्त करता है। संक्षेप में इस विधि को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा रहा है-

सामान्य रुप से उत्पादन फलन को निम्न रुप में व्यक्त किया जाता है-

$$Q = \mathbf{A}\,f(X_1, X_2, X_3 \ldots\ldots)$$

जहाँ पर Q उत्पादन की मात्रा तथा $X_1, X_2, X_3\ldots$ इत्यादि उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त किये जाने वाले विभिन्न संसाधनों को व्यक्त करते हैं। A उत्पादन प्रक्रिया की उत्पादकता अर्थात् कुशलता को व्यक्त करता है। यदि उत्पादन Q तथा संसाधनों $X_1, X_2, X_3\ldots$ इत्यादि के लिए विभिन्न समय बिन्दुओं पर आंकड़े प्राप्त हों तो अर्थमिति पद्धति के द्वारा A के मान का आंकलन किया जा सकता है।

यह पद्धति अत्यन्त ही जटिल सांख्यिकी तकनीक पर आधारित होती है इसलिए इस पद्धति का विस्तृत वर्णन इस इकाई में सम्भव नहीं है। वस्तुत: उत्पादकता के आकलन के लिए विभिन्न प्रकार के उत्पादन फलन का प्रयोग किया जाता है जिनमें प्रमुख हैं- 'कॉब-डगलस उत्पादन फलन', 'सी इ एस उत्पादन फलन', 'ट्रान्सलॉग उत्पादन फलन' इत्यादि। उदाहरण के लिए यदि किसी औद्योगिक इकाई के उत्पादन फलन को कॉब-डगलस उत्पादन फलन के रुप में लिया जाए तो इसको निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है-

$$Q = \mathbf{A}\,\mathbf{K}^{a}\,L^{a'}$$

उपरोक्त उत्पादन फलन में A सम्बन्धित इकाई के कुशलता अर्थात् उत्पादकता को व्यक्त करता है। इसका तात्पर्य यह कि यदि दो फर्मे एक समान मात्रा में संसाधनों का प्रयोग करती हों परन्तु दोनों के लिए A का मान अलग-अलग प्राप्त हो तो दोनों फर्मों की उत्पादकता अलग-अलग होगी। जिस फर्म के लिए A का मान अधिक होगा उसकी उत्पादकता अधिक होगी।

10.6 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. उत्पादकता का अभिप्राय साधनों के प्रयोग से प्राप्त उत्पादन की मात्रा से होता है।
2. परम्परागत रुप में उत्पादकता को श्रम उत्पादकता के रुप में व्यक्त किया जाता है।
3. वास्तविक रुप में एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता का आकलन उसके अनुकूलतम बिन्दु के आधार पर किया जाता है।
4. आनुपातिक विधि के द्वारा उत्पादकता का आंशिक आंकलन ही प्राप्त होता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. व्यापक अर्थों में उत्पादकता उत्पादन में प्रयुक्त..............के योगदान को व्यक्त करता है।
(किसी एक साधन **या** समस्त साधनों)
2. एक निश्चित उत्पादन के लिए अधिकतम उत्पादकता की स्थिति में एक फर्म की...............होती है।
(लागत न्यूनतम **या** उत्पादन अधिकतम)
3. रेखीय प्राग्रामिंग पद्धति के अन्तर्गत उत्पादकता का आंकलन फर्म के..............के आधार पर किया जाता है।
(उद्देश्यों **या** सीमाओं **या** दोनों)
4. अर्थमिति पद्धति के अन्तर्गत उत्पादकता के आंकलन के लिए फर्म के..............की जानकारी आवश्यक होती है।
(उद्देश्य **या** उत्पादन फलन **या** दोनों)

10.7 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत उत्पादकता की अवधारणा एवं मापदण्ड तथा इसके मापन के विभिन्न पद्धतियों की विवेचना किया गया। सामान्य रुप से उत्पादकता का अभिप्राय उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादन की मात्रा तथा इसके लिए प्रयुक्त किये गये साधनों की मात्रा के बीच के अनुपात से होता है। परम्परागत रुप में उत्पादकता को किसी एक साधन की उत्पादकता के रुप में व्यक्त किया जाता था और इसके लिए साधनों के अन्तर्गत श्रम साधन को ही प्रमुख साधन के रुप में स्वीकार किया जाता था। इसीलिए परम्परागत रुप में उत्पादकता को 'श्रम उत्पादकता' के रुप में ही व्यक्त किया जाता रहा। परन्तु उत्पादन प्रक्रिया में श्रम के अलावा अन्य साधनों जैसे- भूमि, पूँजी, मशीन, कच्चे माल, इत्यादि का भी प्रयोग किया जाता है इसलिए उत्पादकता को श्रम उत्पादकता के अतिरिक्त अन्य रुपों में भी व्यक्त किया जाता है। अत: औद्योगिक उत्पादकता को इन रुपों में भी व्यक्त किया जाता है- भूमि उत्पादकता, पूँजी उत्पादकता, मशीन उत्पादकता, पदार्थ उत्पादकता इत्यादि। इसीलिए उत्पादकता के मापदण्डों के लिए इन्हीं रुपों पर विचार किया जाता है।

उत्पादकता के मापदण्ड के रुप में उपरोक्त दृष्टिकोण आंशिक आकलन पर आधारित है क्योंकि उपरोक्त मापदण्डों में से कोई भी मापदण्ड किसी एक साधन के कुशलता के आधार पर उत्पादकता की स्थिति का आकलन प्रस्तुत करता है। एक औद्योगिक इकाई अथवा सम्पूर्ण उद्योग के समग्र उत्पादकता का आकलन उसके 'अनुकूलतम स्थिति' के आधार पर किया जाता है। किसी औद्योगिक इकाई की अनुकूलतम स्थिति का निर्धारण वस्तुत: इस बात से होता है कि वह इकई अपने व्यवसाय का संचालन किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करता है।

जहाँ तक उत्पादकता के मापन का सम्बन्ध है तो परम्परागत रुप में इसका मापन उत्पादन की मात्रा का अलग-अलग साधनों के अनुपात की गणना के द्वारा किया जाता है। परन्तु आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत इसकी गणना समस्त साधनों की उत्पादकता के रुप में किया जाता है। इसीलिए उत्पादकता के मापन के लिए तीन पद्धतियां प्रचलित हैं- अनुपात विधि, रेखीय प्रोग्रामिंग विधि तथा अर्थमिति विधि। अनुपात विधि के अन्तर्गत औद्योगिक उत्पादकता को उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त किये गयें साधनों के पृथक-पृथक उत्पादकता के रुप में व्यक्त किया जाता है जैसे- श्रम की उत्पादकता, भूमि की उत्पादकता, मशीन की उत्पादकता, पूँजी की उत्पादकता। रेखीय प्रोग्रामिंग पद्धति के अन्तर्गत उत्पादकता का मापन फर्म के अनुकूलतम बिन्दु के आकलन के आधार पर किया जाता है। अर्थमिति विधि के अन्तर्गत उत्पादकता का मापन औद्योगिक इकाई अथवा सम्पूर्ण उद्योग के उत्पादन फलन के आकलन के आधार पर किया जाता है। रेखीय प्रोग्रामिंग विधि एवं अर्थमिति विधि के अन्तर्गत उत्पादकता का जो आकलन प्राप्त होता है वह समस्त संसाधनों के उत्पादकता को व्यक्त करता है।

10.8 शब्दावली

- **मापदण्ड -** मानदंड (मानदंड का बहुवचन) उन मानकों, सिद्धांतों या आवश्यकताओं को संदर्भित करता है जिनका उपयोग किसी चीज़ का मूल्यांकन, मूल्यांकन या निर्णय लेने के लिए किया जाता है, जो नौकरी के आवेदन, परियोजनाओं या नीति निर्माण जैसे कार्यों में सफलता या चयन के लिए दिशानिर्देश के रूप में कार्य करते हैं। मूलत:, ये वे मानक हैं जो यह निर्धारित करते हैं कि कोई चीज़ किसी वांछित गुणवत्ता या लक्ष्य को पूरा करती है या नहीं।
- **अनुकूलतम उपयोग -** इसका अर्थ है किसी संसाधन, कौशल या परिस्थिति जैसी किसी चीज़ का सर्वोत्तम संभव या सबसे प्रभावी तरीके से उपयोग करना ताकि न्यूनतम अपव्यय के साथ सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त किए जा सकें। इसमें किसी विशिष्ट लक्ष्य, जैसे कि इष्टतम दक्षता, प्रदर्शन या लाभ प्राप्त करने, की क्षमता को अधिकतम करने के लिए आदर्श परिस्थितियों या अनुप्रयोग का पता लगाना शामिल है।
- **समग्र उत्पादकता -** यह मापती है कि कोई व्यक्ति, समूह या अर्थव्यवस्था किसी निश्चित समयावधि में इनपुट (जैसे श्रम, समय या पूँजी) को आउटपुट (जैसे वस्तुएँ या सेवाएँ) में कितनी कुशलता से परिवर्तित करती है। इसकी गणना आउटपुट और इनपुट के अनुपात के रूप में की जाती है और उच्च अनुपात अधिक उत्पादकता दर्शाता है, जिसका अर्थ है कि समान या कम संसाधनों से अधिक उत्पादन किया जाता है। उत्पादकता आर्थिक विकास, लाभप्रदता और जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए महत्वपूर्ण है।
- **समलागत वक्र -** सम-लागत वक्र एक रेखा है जो श्रम और पूंजी जैसे दो इनपुटों के सभी संयोजनों को दर्शाती है, जिन्हें एक फर्म एक विशिष्ट कुल लागत पर खरीद सकती है।
- **समउत्पाद वक्र -** यह दो इनपुटों (जैसे श्रम और पूंजी) के सभी संयोजनों को दर्शाता है जो समान मात्रा में आउटपुट का उत्पादन करते हैं तथा उपभोक्ता के उदासीनता वक्र के समतुल्य उत्पादन के रूप में कार्य करते हैं; ये वक्र नीचे की ओर झुके होते हैं, मूल बिंदु के उत्तल होते हैं तथा ऊंचे वक्र उच्च आउटपुट स्तरों को दर्शाते हैं, जिससे उत्पादकों को सबसे कुशल इनपुट मिश्रण खोजने में मदद मिलती है। ।
- **सीमान्त आगम -** वह अतिरिक्त आय है जो किसी फर्म को किसी उत्पाद या सेवा की एक अतिरिक्त इकाई बेचकर प्राप्त होती है। यह सूक्ष्मअर्थशास्त्र की एक मूलभूत अवधारणा है जो व्यवसायों को लाभ को अधिकतम करने के लिए इष्टतम उत्पादन स्तर निर्धारित करने में मदद करती है।
- **सीमान्त लागत -** किसी उत्पाद या सेवा की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन की अतिरिक्त लागत है, जिसकी गणना कुल लागत में परिवर्तन को मात्रा में परिवर्तन से विभाजित करके की जाती है ($MC = \Delta TC / \Delta Q$)। यह व्यवसायों को विस्तार की लागत दिखाकर उत्पादन स्तर तय करने में मदद करती है, परिवर्तनीय लागतों (सामग्री- श्रम) पर ध्यान केंद्रित करती है जबकि निश्चित लागतें

(किराया) अल्पावधि में समान रहती हैं, जिससे लाभ अधिकतमीकरण की दिशा में मार्गदर्शन मिलता है जहाँ सीमांत लागत सीमांत राजस्व के बराबर होती है।

- **उत्पादन फलन -** उत्पादन फलन एक आर्थिक सूत्र है जो किसी फर्म द्वारा दी गई तकनीक के साथ इनपुट (श्रम, पूंजी, भूमि, आदि) के विशिष्ट संयोजनों से उत्पादित अधिकतम आउटपुट (वस्तुएं एवं सेवाएं) को दर्शाता है, जिसे Q = f (L,K) के रूप में व्यक्त किया जाता है, जहां Q आउटपुट है, L श्रम है और K पूंजी है, जो यह बताता है कि इनपुट कैसे आउटपुट में बदलते हैं और दक्षता और पैमाने का विश्लेषण करने में मदद करते हैं।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. समस्त साधन 2. लागत न्यूनतम 3. दोनों 4. उत्पादन फलन

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Ahluwklia, I.J. (1991): ***Productivity and Growth in Indian Manufacturing,*** Oxford Universirty Press, Delhi.
- Ahluwklia, I.J. (1994): ***TFPG in Manufacturing Industry,*** Economic and Political Weekly, Vol. 29, October 22.
- B.B. Lal (1960): ***Concept and Measurement of Productivity,*** Productivity, Vol. 1, No. 4, April-May.
- M.M. Mehta (1955): ***Measurement of Industrial Productivity,*** World Press, Calcutta.
- Rao, J.M. (1996): ***Manufacturing Productivity Growth – Method and Measurement,*** Economic and Political Weekly, Vol. 31, November 2.

10.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Barthwal, R.R. (2005): ***Industrial Economics – An Introductory Textbook***, New Age International Publishers, New Delhi.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, New Delhi.
- Singh, A. and A.N. Sadhu (1988): ***Industrial Economics***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक उत्पादकता की अवधारणा को उदाहरण के साथ स्पष्ट कीजिए। उन मापदण्डों का भी उल्लेख कीजिए जिनके द्वारा इसको व्यक्त किया जाता है।
2. श्रम उत्पादकता, भूमि उत्पादकता, पूँजी उत्पादकता एवं मशीन उत्पादकता की अवधरणा एवं अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
3. औद्योगिक उत्पदाकता के मापन के लिए प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न विधियों की विवेचना कीजिए।

इकाई-11 उत्पादकता और क्षमता उपयोग के प्रभावकारी कारक

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 क्षमता उपयोग की अवधारणा
11.4 क्षमता उपयोग तथा उत्पादकता के बीच सम्बन्ध
11.5 उत्पादकता एवं क्षमता उपयोग के प्रभावकारी कारक
11.5.1. आन्तरिक कारक
11.5.2. बाह्य कारक
11.6 अभ्यास प्रश्न
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई के अन्तर्गत हम लागों ने औद्योगिक उत्पादकता की अवधारणा तथा इसके विभिन्न मापदण्डों को स्पष्ट किया। साथ ही साथ इसके मापन की विभिन्न पद्धतियों को भी स्पष्ट किया गया। प्रश्न यह उठता है कि वे कौन से प्रभावी कारक होते हैं जो एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता के स्तर को प्रभावित करते हैं। इस इकाई के अन्तर्गत इन्हीं कारकों को स्पष्ट किया जा रहा है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातों को समझने में सक्षम हो सकेंगे -

- ✓ एक व्यावसायिक इकाई के क्षमता उपयोग से क्या अभिप्राय होता है।
- ✓ एक व्यावसायिक इकाई के क्षमता उपयोग तथा उत्पादकता के बीच क्या सम्बन्ध होता है।
- ✓ एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता को कौन-कौन से कारक प्रभावित करते हैं।

11.3 क्षमता उपयोग की अवधारणा

किसी भी औद्योगिक इकाई के पास उपलब्ध समस्त संसाधनों से सम्बन्धित उत्पादन का एक निश्चित स्तर होता है जो औद्योगिक इकाई के 'अनुकूलतम आकार' को व्यक्त करता है। उत्पादन के इस स्तर पर औद्योगिक इकाई की उत्पादन लागत न्यूनतम होती है जिसका तात्पर्य यह होता है कि यदि औद्योगिक इकाई दी हुयी संसाधनों की स्थिति में इस उत्पादन स्तर से कम अथवा अधिक उत्पादन होगी तो उत्पादन लागत अधिक होगी। इसका अभिप्राय यह होता है कि किसी औद्योगिक इकाई के अनुकूलतम उत्पादन का स्तर वह स्तर होता है जिस पर उपलब्ध संसाधनों के क्षमता का पूर्ण उपयोग होता रहता है। यदि उत्पादन का स्तर अनुकूलतम स्तर से कम होता है तो ऐसी स्थिति में उपलब्ध संसाधनों की कुछ क्षमता बेकार पड़ी रहेगी अर्थात् इकाई की उत्पादन प्रक्रिया अपूर्ण क्षमता अर्थात् अल्प क्षमता के साथ संचालित होगी। एक औद्योगिक इकाई के पूर्ण क्षमता एवं अपूर्ण क्षमता की अवधारणा को निम्न चित्र के माध्यम से स्पष्ट किया गया है-

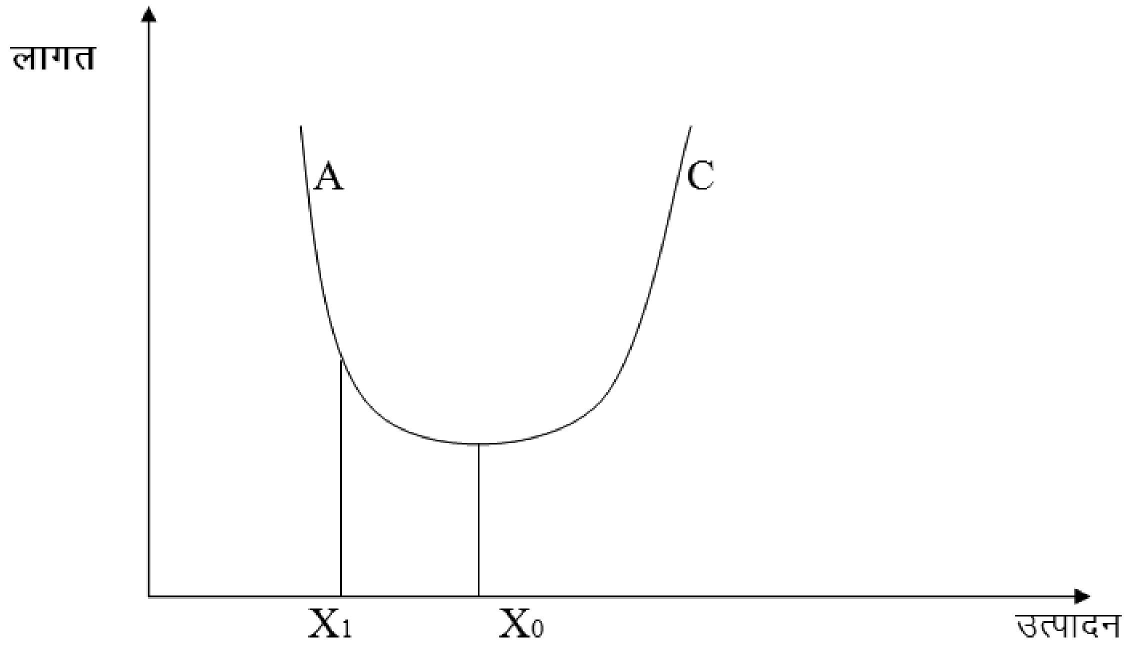

उपरोक्त चित्र में वक्र AC व्यावसायिक इकाई के औसत लागत वक्र को व्यक्त करता है। चित्र में X_0 उत्पादन का स्तर उत्पादन के कुशलतम अर्थात् अनुकूलतम स्तर को व्यक्त करता है क्योंकि उत्पादन के इस स्तर पर औसत लागत न्यूनतम है। X_0 उत्पादन का स्तर ही फर्म के पूर्ण क्षमता के उत्पादन स्तर को व्यक्त

करता है। दूसरी तरफ यदि उत्पादन का स्तर X_1 है जो X_0 उत्पादन स्तर से कम है तो यह उत्पादन स्तर फर्म के अल्प क्षमता अर्थात् अपूर्ण क्षमता उपयोग को व्यक्त करेगा।

11.4 क्षमता उपयोग तथा उत्पादकता के बीच सम्बन्ध

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि औद्योगिक इकाई के अनुकूलतम उत्पादन स्तर पर उत्पादन लागत न्यूनतम होती है। अत: एक औद्योगिक इकाई के अनुकूलतम उत्पादन का स्तर ही उत्पादन प्रक्रिया के कुशलतम बिन्दु अर्थात् अधिकतम उत्पादकता की स्थिति को व्यक्त करता है। चूँकि इस कुशलतम बिन्दु की प्राप्ति के लिए आवश्यक शर्त है कि औद्योगिक इकाई के पूर्ण क्षमता का उपयोग होता रहे अत: जब तक औद्योगिक इकाई अपने उत्पादन प्रक्रिया को पूर्ण क्षमता के साथ संचालित करती रहती है उसकी उत्पादकता अधिकतम होती है। परन्तु यदि औद्योगिक इकाई अपने उत्पादन प्रक्रिया को अल्प क्षमता के साथ संचालित करती है तो उसकी उत्पादकता कम होती है। उपरोक्त चित्र में X_0 उत्पादन के स्तर पर, जो फर्म के पूर्ण उत्पादन क्षमता को व्यक्त करता है, फर्म की उत्पादकता अधिकतम होगी। यदि फर्म का उत्पादन स्तर X_0 उत्पादन स्तर से कम है अर्थात् फर्म की उत्पादन प्रक्रिया अपूर्ण क्षमता के साथ संचालित हो रही है तो फर्म की उत्पादकता कम होगी।

11.5 उत्पादकता एवं क्षमता उपयोग के प्रभावकारी कारक

उपरोक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि यदि एक औद्योगिक इकाई अपने उत्पादन प्रक्रिया को पूर्ण क्षमता के साथ संचालित करती रहती है तो उसकी उत्पादकता अधिकतम होती है। परन्तु यदि औद्योगिक इकाई अपने उत्पादन प्रक्रिया को अल्प क्षमता के साथ संचालित करती है तो उसकी उत्पादकता कम होती है। प्रश्न यह उठता है कि वे कौन से प्रभावी कारक होते हैं जो इस बात को निर्धारित करते हैं कि कोई फर्म अपने उत्पादन प्रक्रिया को पूर्ण क्षमता के साथ संचालित करेगी अथवा अपूर्ण क्षमता के साथ संचालित करेगी। इस सन्दर्भ में प्रमुख रुप से दो प्रकार के कारक उत्तरदायी होते हैं- आन्तरिक कारक तथा बाह्य कारक। आगे की पंक्तियों में इन कारकों को स्पष्ट किया जा रहा है।

11.5.1. आन्तरिक कारक

आन्तरिक कारक का अभिप्राय उन कारकों से होता है जिनका सम्बन्ध व्यावसायिक इकाईयों के संगठनात्मक कुशलता से होता है। ये कारक व्यावसायिक इकाई के नियन्त्रण में होते हैं।

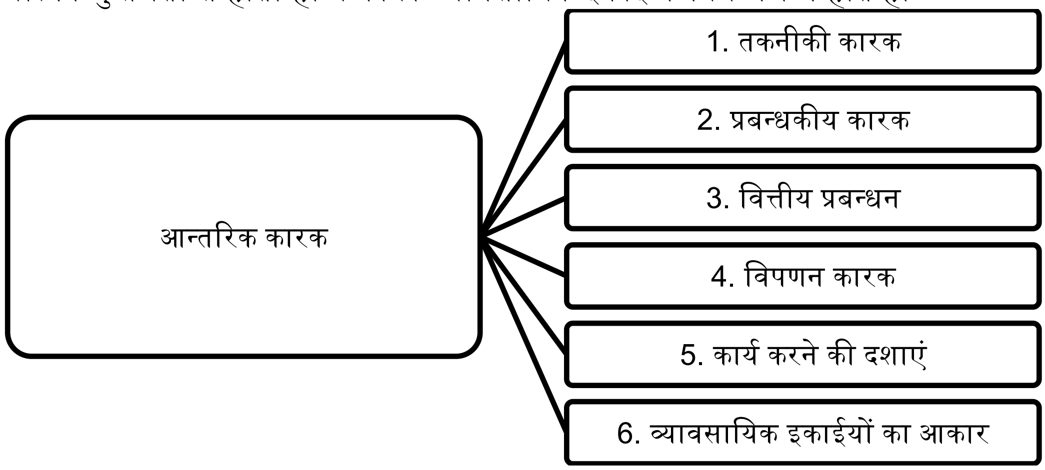

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कारक हो सकते हैं-

1. तकनीकी कारक - इस श्रेणी के अन्तर्गत वे सभी कारक आते हैं जिनका सम्बन्ध व्यावसायिक इकाई के उत्पादन तकनीक से होता है। इन कारकों में एक कारक जो महत्वपूर्ण है वह है व्यावसायिक इकाईयों की प्लाण्ट एवं मशीनरी। यदि व्यावसायिक इकाईयों द्वारा प्रयोग की जाने वाली प्लाण्ट एवं मशीनरी दोषपूर्ण है तो इसके फलस्वरुप इन इकाईयों को पूर्ण क्षमता के साथ उत्पादन करने में कठिनाई उत्पन्न होगी और इसके परिणामस्वरुप इन इकाईयों की कुशलता तथा उत्पादकता प्रतिकूल रुप से प्रभावित होगी। ठीक इसी प्रकार, तकनीकी कारक के अन्तर्गत एक दूसरा महत्वपूर्ण

कारक होता है व्यावसायिक इकाईयों की उत्पादन तकनीक। यदि व्यावसायिक इकाईयों की उत्पादन तकनीक का आधुनिकीकरण होता रहता है तो कुशलता एवं उत्पादकता में वृद्धि होती रहती है परन्तु यदि व्यावसायिक इकाईयों की उत्पादन प्रक्रिया परम्परागत तकनीक पर आधारित होती है तो ऐसी स्थिति में व्यावसायिक इकाईयों की कुशलता तथा उत्पादकता प्रतिकूल रुप से प्रभावित होती है।

2. **प्रबन्धकीय कारक -** आधुनिक औद्योगिक जगत में व्यावसायिक इकाईयों के संचालन में प्रबन्ध तन्त्र की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। वस्तुत: प्रबन्ध तन्त्र की भूमिका 'श्रम विभाजन' एवं 'उत्पादन में विशिष्टीकरण' की अवधारणा पर आधारित होती है। व्यावसायिक इकाईयों का प्रबन्ध तन्त्र उत्पादन प्रक्रिया में श्रम विभाजन एवं उत्पादन में विशिष्टीकरण को अपनाकर मानव संसाधन का समुचित उपयोग कर सकता है और व्यावसायिक इकाईयों के कुशलता एवं उत्पादकता में वृद्धि कर सकता है। इतना ही नहीं बल्कि व्यावसायिक इकाईयों का प्रबन्ध तन्त्र, अन्य संसाधनों का भी समुचित उपयोग करके व्यावसायिक इकाईयों के कुशलता एवं उत्पादकता में वृद्धि कर सकता है। परन्तु यदि व्यायसायिक इकाईयों का प्रबन्ध तन्त्र कुशल नही हैं तो इससे इन इकाईयों की कुशलता तथा उत्पादकता प्रतिकूल रुप से प्रभावित होगी।
3. **वित्तीय प्रबन्धन -** व्यावसायिक इकाईयों के कुशलता एवं उत्पादकता के निर्धारण में इन इकाईयों के वित्तीय प्रबन्धन की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। वित्तीय प्रबन्धन का तात्पर्य वस्तुत: दो बातों से होता है। एक तो यह कि व्यवसाय के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन किन स्रोतों से प्राप्त किये जाते हैं तथा इनकी लागत क्या है। दूसरा यह कि उपलब्ध वित्तीय संसाधनों का आबंटन एवं प्रयोग किस प्रकार किया जाता है। यदि वित्तीय संसाधनों को प्राप्त करने की लागत अधिक है तो इसके फलस्वरुप व्यावसायिक इकाईयों की कुशलता तथा उत्पादकता प्रतिकूल रुप से प्रभावित होगी। ठीक इसी प्रकार यदि वित्तीय संसाधनों का प्रयोग आबंटन के अनुरुप नहीं है तो इसके फलस्वरुप व्यावसायिक इकाईयों की कुशलता तथा उत्पादकता प्रतिकूल रुप से प्रभावित होगी। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यावसायिक इकाई कच्चे माल अथवा श्रमिको के लिए आबंटित वित्तीय संसाधनों को किसी अन्य प्रयोजन के लिए उपयोग कर लेती है तो इसके फलस्वरुप इस इकाई को उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चा माल अथवा श्रमिकों को प्राप्त करने में कठिनाई हो सकती है और इसके परिणामस्वरुप इस इकाई के लिए पूर्ण क्षमता पर उत्पादन करने में समस्या उत्पन्न हो सकती है। यह परिस्थिति इन इकाईयों की कुशलता तथा उत्पादकता को प्रतिकूल रुप से प्रभावित कर सकती हैं।
4. **विपणन कारक -** व्यावसायिक इकाईयों की विपणन क्रिया भी इन इकाईयों के कुशलता एवं उत्पादकता को प्रभावित कर सकती हैं। इसका कारण यह है कि यदि विपणन क्रिया में कुशलता का अभाव होगा तो व्यावसायिक इकाई उत्पादित वस्तुओं को बाजार में बेचने में सक्षम नहीं होंगी। इसका परिणाम यह होगा कि व्यावसायिक इकाई के गोदाम पहले से ही उत्पादित वस्तुओं से भरे रहेगें और इसलिए इस प्रकार की इकाईयों के लिए अपने उत्पादन के पूर्ण क्षमता पर उत्पादन करते रहना सम्भव नहीं होगा। अत: ऐसी परिस्थिति में व्यावसायिक इकाई का उत्पादन अनुकूलतम स्तर से कम होगा और उत्पादकता भी कम होगी।
5. **कार्य करने की दशाएं -** व्यावसायिक इकाईयों में श्रमिकों के लिए विद्यमान कार्य करने की दशाऐं भी कुशलता तथा उत्पादकता को प्रभावित कर सकती हैं। यदि एक व्यावसायिक इकाई में श्रमिकों के लिए विद्यमान कार्य करने की दशाऐं उपयुक्त नहीं है तो ऐसी परिस्थिति में श्रमिकों को अपनी पूर्ण क्षमता के कार्य करने में कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि व्यावसायिक इकाई का उत्पादन स्तर पूर्ण क्षमता के उत्पादन स्तर से कम होगा और इस इकाई की उत्पादकता कम होगी।
6. **व्यावसायिक इकाईयों का आकार -** एक व्यावसायिक इकाई के कुशलता एवं उत्पादकता के निर्धारण में इसके आकार की भूमिका भी हो सकती है। इस सन्दर्भ में आर्थिक साहित्य में दो दृष्टिकोण

प्रचलित हैं। एक दृष्टिकोण यह मत व्यक्त करता है कि व्यावसायिक इकाईयों के आकार तथा उत्पादकता के बीच धनात्मक सम्बन्ध होता है जबकि दूसरा दृष्टिकोण इसके विपरीत अर्थात् ऋणात्मक सम्बन्ध की बात करता है। पहले दृष्टिकोण का तात्पर्य यह है कि व्यावसायिक इकाईयों के आकार में जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे उनकी कुशलता एवं उत्पादकता में भी वृद्धि होती जाती है। अर्थात् इस दृष्टिकोण के अनुसार विशाल आकार वाली इकाईयों की कुशलता एवं उत्पादकता अधिक होती है। जबकि दूसरे दृष्टिकोण का तात्पर्य यह है कि व्यावसायिक इकाईयों के आकार में जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे उनकी कुशलता एवं उत्पादकता कम होती जाती है।

स्पष्ट है कि उत्पादकता एवं क्षमता उपयोग के निर्धारण के सन्दर्भ में उपरोक्त समस्त कारक ऐसे कारक हैं जो व्यावसायिक इकाई के नियन्त्रण में होते हैं। अत: यदि इन कारकों के कारण उत्पादकता एवं क्षमता उपयोग पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न होता है तो व्यावसायिक इकाई इसे स्वयं अपने प्रयासों से नियन्त्रित कर सकती है।

11.5.2. बाह्य कारक

आन्तरिक कारकों के अलावा भी कुछ कारक हो सकते हैं जो एक व्यावसायिक इकाई के कुशलता एवं उत्पादकता के स्तर को प्रभावित कर सकते हैं। ये कारक ऐसे होते हैं जिन पर व्यावसायिक इकाई का कोई नियन्त्रण नहीं होता है क्योंकि ये कारक बाह्य शक्तियों से नियन्त्रित होते हैं। इसीलिए इन कारकों को बाह्य कारक कहा जाता है।

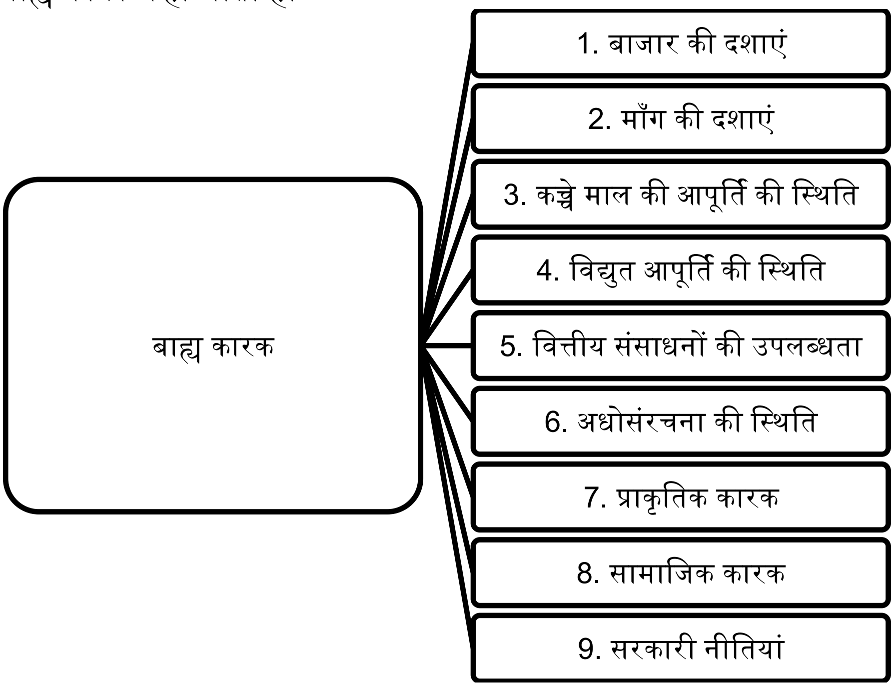

इन कारकों के अन्तर्गत जो प्रमुख कारक आते हैं वे निम्नलिखित हैं-

1. बाजार की दशाएं - एक व्यावसायिक इकाई की उत्पादकता इस बात से भी प्रभावित होती है कि उस बाजार की स्थिति किस प्रकार की है जिसके अन्तर्गत व्यावसायिक इकाई अपने व्यावसाय को सम्पादित कर रही है। यदि व्यावसायिक इकाई का बाजार 'पूर्ण प्रतियोगी' है तो ऐसी दशा में व्यावसायिक इकाई का उत्पादन अनुकूलतम स्तर पर होगा और उत्पादकता का स्तर अधिकतम होगा। इसका कारण यह है कि एक पूर्ण प्रतियोगी बाजार के अन्तर्गत उत्पादन अनुकूलम स्तर पर होता है और इसलिए ऐसी दशा में सभी इकाईयों पर यह दबाव होता है कि वे अपने संसाधनों का इस्तेमाल इस प्रकार करें जिससे कि उनका उत्पादन का स्तर अनुकूलतम स्तर का हो। जो इकाईयां ऐसा करने में सक्षम नहीं होती हैं वे स्वत: बाजार से बाहर हो जाती हैं। दूसरी तरफ यदि व्यावसायिक इकाई का बाजार 'एकाधिकार प्रकृति' का है तो ऐसी दशा में व्यावसायिक इकाई का

उत्पादन अनुकूलतम स्तर के उत्पादन से कम हो सकता है और उत्पादकता का स्तर भी कम हो सकता है। इसका कारण यह है कि एक एकाधिकार बाजार के अन्तर्गत व्यावसायिक इकाई का बाजार पर पूर्ण नियन्त्रण होता है और इसलिए ऐसी दशा में व्यावसायिक इकाई पर इस प्रकार का कोई दबाव नहीं होता कि वह अपने उत्पादन का स्तर अनुकूलतम स्तर पर रखे। अत: व्यावसायिक इकाई के बाजार में प्रतियोगिता में कमी होने पर उत्पादकता में गिरावट होती है और प्रतियोगिता में वृद्धि होने से उत्पादकता में वृद्धि होती है।

2. **माँग की दशाएं -** बाजार में माँग की दशाएं भी व्यावसायिक इकाईयों के उत्पादकता के स्तर का प्रभावित कर सकती हैं। व्यवहार में यह पाया जाता है कि बाजार में विभिन्न उत्पादों के माँग में उतार-चढ़ाव उत्पन्न होते रहते हैं। अत: यदि एक व्यावसायिक इकाई के उत्पाद की माँग में गिरावट हो तो ऐसी स्थिति में इस इकाई के लिए अपने पूर्ण क्षमता के उत्पादन स्तर को बनाये रख पाना सम्भव नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति में व्यावसायिक इकाई का उत्पादन पूर्ण क्षमता के उत्पादन स्तर से कम होगा और इकाई के उत्पादकता में भी गिरावट हो जायेगी।
3. **कच्चे माल की आपूर्ति की स्थिति -** व्यावसायिक इकाईयों को पूर्ण क्षमता के उत्पादन स्तर को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि उनको आवश्यक कच्चे माल की आपूर्ति पर्याप्त मात्रा में होता रहे। परन्तु यदि कच्चे माल की आपूर्ति में अवरोध उत्पन्न होता है तो ऐसी स्थिति में व्यावसायिक इकाईयां सभी संसाधनों एवं सुविधाओं के उपलब्ध होने के बावजूद भी अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग करने में सक्षम नहीं हो पाती हैं। अत: कच्चे माल की आपूर्ति में अवरोध व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता को प्रतिकूल रुप से प्रभावित कर सकती हैं।
4. **विद्युत आपूर्ति की स्थिति -** आधुनिक औद्योगिक जगत में विद्युत शक्ति औद्योगिक उत्पादन का प्रमुख आधार है। छोटी से लेकर बड़ी मशीनों का संचालन विद्युत शक्ति के द्वारा ही होता है। व्यावसायिक इकाईयों के सुचारु रुप से संचालन के लिए यह आवश्यक होता है कि बिना किसी अवरोध के इन इकाईयों के लिए पर्याप्त मात्रा में विद्युत आपूर्ति होता रहे। यदि विद्युत आपूर्ति पर्याप्त मात्रा में नहीं होगी अथवा इसमें अवरोध उत्पन्न होते रहेगें तो ऐसी परिस्थिति में व्यावसायिक इकाईयों के संचालन पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न होगा और उत्पादकता एवं क्षमता उपयोग भी प्रतिकूल रुप से प्रभावित होगी।
5. **वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता -** एक व्यावसायिक इकाई के सुचारु रुप से संचालन के लिए यह आवश्यक है कि उसको आवश्यक वित्तीय संसाधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों। उदाहरण के लिए,यदि एक व्यावसायिक इकाई को अपनी उत्पादन तकनीक में सुधार करना हो तो इसके लिए उसे आधुनिकीकरण एवं तकनीकी उन्नयन की नीति को अपनाना होगा। परन्तु इस कार्य के लिए व्यावसायिक इकाई को वित्तीय संसाधन की आवश्यकता होगी। यदि आवश्यक वित्तीय संसाधन उपलब्ध नहीं हो पाता तो व्यावसायिक इकाई के लिए उत्पादन तकनीक में सुधार कर पाना सम्भव नहीं होगा और उसे परम्परागत तकनीक के आधार पर ही अपनी उत्पादन प्रक्रिया को जारी रखना पड़ेगा और ऐसी परिस्थिति में व्यावसायिक इकाई के कुशलता एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न होगा। इतना ही नहीं, एक व्यवासायिक इकाई को अपने उत्पादन प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के दैनिक कार्यों, जैसे- कच्चे माल तथा वेतन एवं मजदूरी के भुगतान के लिए भी वित्तीय संसाधन की आवश्यक होती है। यदि इन कार्यों के लिए वित्तीय संसाधन की आपूर्ति में अवरोध उत्पन्न होता है तो इसके फलस्वरुप भी व्यवासायिक इकाई के उत्पादन प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न हो सकता है और इससे कुशलता एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकता है।
6. **अधोसंरचना की स्थिति -** देश में उपलब्ध अधोसंरचना तथा आधारभूत सुविधाओं की स्थिति भी व्यावसायिक इकाईयों के कुशलता एवं उत्पादकता को प्रभावित कर सकती हैं। एक व्यावसायिक इकाई को अपने उत्पादों को बाजार में आपूर्ति करनी पड़ती है तथा उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल को किसी एक स्थान से उत्पादन के केन्द्र तक लाना पड़ता है। इन कार्यों के लिए परिवहन सुविधाओं जैसे- सड़क तथा रेल परिवहन की आवश्यकता होगी। इतना ही नहीं, कुछ व्यावसायिक

इकाईयां अपने उत्पादों को विदेशी बाजार में निर्यात करती हैं तथा कच्चे माल का आयात करती हैं। इन कार्यों के लिए देश में बन्दरगाह जैसी सुविधाओं की आवश्यकता होती है। स्पष्ट है कि यदि देश में इस प्रकार की सुविधाओं की अनुपलब्धता है या इनकी गुणवत्ता ठीक नहीं है तो इससे व्यासायिक इकाईयों को अपने उत्पादों को बाजार में आपूर्ति करने में तथा कच्चा माल प्राप्त करने में अवरोध उत्पन्न हो सकता है और इससे व्यासायिक इकाई की उत्पादन प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न हो सकता है। इसका परिणाम यह होगा कि व्यावसायिक इकाईयों की कुशलता एवं उत्पादकता प्रतिकूल रुप से प्रभावित हो सकती है।

7. **प्राकृतिक कारक -** व्यावसायिक इकाईयों के उत्पादकता को प्रभावित करने के सन्दर्भ में सम्बन्धित देश के प्राकृतिक स्थिति की भी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। एक अत्यन्त ही ठण्डे अथवा अत्यन्त ही गर्म प्रदेशों में श्रमिकों की कार्यकुशलता अपेक्षाकृत कम होती है जबकि एक अनुकूलतम जलवायु वाले प्रदेशों में श्रमिकों की कार्यकुशलता अधिक होती है। स्पष्ट है कि अत्यन्त ही ठण्डे अथवा अत्यन्त ही गर्म प्रदेशों में श्रमिकों की क्षमता का पूर्ण उपयोग कर पाना सम्भव नहीं होता है। अत: ऐसे प्रदेशों में एक व्यावसायिक इकाई के पास अन्य सभी संसाधन होने के बावजूद पूर्ण क्षमता के साथ उत्पादन कर पाना सम्भव नही होता है और ऐसे प्रदेशों में व्यावसायिक इकाईयों के उत्पादकता का स्तर अपेक्षाकृत कम होता है। इतना ही नहीं कुछ उद्योग ऐसे होते हैं, जैसे- कृषि पर आधारित उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, सूचना प्रौद्योगिकी इत्यादि उद्योग विशेष प्रकार के जलवायु वाले प्रदेशों में ही सुचारु रुप से संचालित हो सकते हैं। अत: इन उद्योगों के लिए अनुकूल जलवायु नही होगी तो इन उद्योगों के उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकता है।
8. **सामाजिक कारक -**एक देश की अथवा एक क्षेत्र विशेष की सामाजिक दशाएं, सामाजिक मूल्य, परम्पराएं एवं संस्थाओं की प्रकृति भी व्यावसायिक इकाईयों के उत्पादकता को प्रभावित कर सकती हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसे समाज में जहाँ अज्ञानता, अशिक्षा, भाग्यवाद, रुढ़िवाद, अन्धविश्वास इत्यादि व्याप्त हो वहाँ उत्पादकता कम होगी क्योंकि ऐसे समाज में लोग उत्पादन की नयी तकनीक तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को अपनाने में हिचकचाते हैं। दूसरी तरफ शिक्षित एवं प्रगतिशील समाज में इस प्रकार के परिवर्तनों को सरलता के साथ स्वीकार किया जाता है और इसलिए इस प्रकार के समाज में उत्पादकता अधिक हो सकती है।
9. **सरकारी नीतियां -** सरकार की नीतियां भी व्यावसायिक इकाईयों के कुशलता एवं उत्पदकता को प्रभावित कर सकती हैं। उदाहरण के लिए यदि सरकार व्यावसायिक इकाईयों के उत्पादन प्रक्रिया पर करों में वृद्धि कर देती है तो इस प्रकार का करारोपण इन इकाईयों के लागत संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न कर सकता है और इससे व्यावसायिक इकाईयों की उत्पादन क्षमता प्रतिकूल रुप से प्रभावित हो सकती है। इतना ही नहीं यदि सरकार कच्चे माल पर करों में वृद्धि कर देती है तो इस प्रकार का करारोपण भी इन इकाईयों के लागत संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न कर सकता है और इससे व्यावसायिक इकाईयों की उत्पादन क्षमता प्रतिकूल रुप से प्रभावित हो सकती है। ठीक इसी प्रकार यदि सरकार कुछ उद्योगों को बहुत अधिक संरक्षण प्रदान करती है तो इसके फलस्वरुप बाजार में एकाधिकारी शक्तियां पनप सकती हैं जिसके परिणामस्वरुप अकुशलता एवं अक्षमता को प्रोत्साहन मिल सकता है।

ऐसा नही है कि सरकार की नीतियां उत्पादकता को प्रतिकूल रुप से ही प्रभावित कर सकती हैं। सरकार अपने नीतियों के माध्यम से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप में उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव भी उत्पन्न कर सकती है। उदाहरण के लिए सरकार वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से व्यावसायिक इकाईयों को तकनीकी उन्नयन तथा आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन उपलब्ध करा कर इन इकाईयों के उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। इसी प्रकार, सरकार अपनी नीतियों के माध्यम से औद्योगिक जगत में विद्यमान एकाधिकारी शक्तियों को पनपने से रोक सकती है और प्रतियोगिता के माहौल को प्रोत्साहित कर सकती है। सरकार की इस प्रकार के नीति का उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकती है।

11.6 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. अनुकूलतम उत्पादन के स्तर पर उत्पादन की मात्रा अधिकतम होती है।
2. पूर्ण उत्पादन क्षमता उत्पादकता के अधिकतम स्तर को व्यक्त करता है।
3. एक व्यावसायिक इकाई स्वतन्त्र रुप से उत्पादकता के अनुकूलतम स्तर को प्राप्त कर सकती है।
4. सरकार की नीतियों का उत्पादकता पर सदैव प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न होता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. अनुकूलतम उत्पादन के स्तर पर दी गयी परिस्थितियों में..............होती है।
   (लागत न्यूनतम **या** अधिकतम उत्पादन **या** दोनों)
2. क्षमता उपयोग तथा उत्पादकता के बीच..............सम्बन्ध होता है।
   (धनात्मक **या** ऋणात्मक)
3. पूर्ण प्रतियोगी बाजार में क्षमता का..............किया जाता है।
   (पूर्ण उपयोग **या** अपूर्ण उपयोग **या** दोनों)
4. उत्पादन प्रक्रिया में..............का उपयोग उत्पादकता में सुधार लाती है।
   (श्रम विभाजन **या** विशिष्टीकरण **या** दोनों)

11.7 सारांश

क्षमता उपयोग, किसी औद्योगिक इकाई द्वारा उपलब्ध संसाधनों का किस सीमा तक उपयोग किया जा रहा है, इसका सूचक है। प्रत्येक औद्योगिक इकाई का एक अनुकूलतम उत्पादन स्तर होता है जिस पर औसत उत्पादन लागत न्यूनतम होती है। इस स्तर पर सभी संसाधनों का पूर्ण उपयोग होता है और इसे ही पूर्ण क्षमता कहा जाता है। यदि उत्पादन इस स्तर से कम होता है तो मशीनरी, श्रम तथा अन्य संसाधनों की कुछ क्षमता निष्क्रिय रहती है, जिसे अपूर्ण या अल्प क्षमता उपयोग कहा जाता है।

क्षमता उपयोग और उत्पादकता के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनुकूलतम उत्पादन स्तर पर जहां औसत लागत न्यूनतम होती है, वहीं उत्पादकता अधिकतम होती है। अत: पूर्ण क्षमता पर चलने वाली इकाइयों की उत्पादकता उच्च होती है जबकि अल्प क्षमता पर चलने वाली इकाइयों की उत्पादकता घट जाती है।

उत्पादकता और क्षमता उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों को दो वर्गों में बाँटा गया है- आन्तरिक कारक और बाह्य कारक। आन्तरिक कारक वे हैं जिन पर व्यावसायिक इकाई का नियंत्रण होता है। इनमें सबसे पहले तकनीकी कारक आते हैं - यदि मशीनरी पुरानी हो या उत्पादन तकनीक परम्परागत हो, तो इकाई पूर्ण क्षमता पर नहीं चल पाती। आधुनिक तकनीक, नियमित रखरखाव और दक्ष मशीनरी उत्पादकता बढ़ाती हैं। दूसरा महत्वपूर्ण कारक प्रबंधकीय कुशलता है। अच्छा प्रबंधन श्रम विभाजन, विशेषज्ञता और संसाधनों के कुशल उपयोग द्वारा उत्पादन क्षमता को बढ़ाता है। तीसरा कारक वित्तीय प्रबंधन है, जिसमें वित्त उपलब्धता और उसका सही उपयोग शामिल है। यदि वित्तीय संसाधनों का गलत उपयोग हो या उनकी लागत अधिक हो, तो क्षमता उपयोग प्रभावित होता है। विपणन प्रबंधन भी महत्वपूर्ण है- यदि वस्तुएँ बाजार में नहीं बिकेंगी तो गोदाम भर जाएंगे और उत्पादन घटेगा। काम करने की दशाएँ यानी कार्यस्थल का वातावरण भी श्रमिकों की क्षमता और उत्पादन को प्रभावित करता है। अंत में, व्यावसायिक इकाई का आकार भी उत्पादकता को प्रभावित कर सकता है- कुछ मत आकार बढ़ने से उत्पादकता बढ़ने की बात करते हैं जबकि कुछ इसके विपरीत।

बाह्य कारक वे हैं जिन पर व्यावसायिक इकाई का सीधा नियंत्रण नहीं होता। बाजार की स्थिति इनमें प्रमुख है। पूर्ण प्रतियोगी बाजार में फर्मों पर दबाव होता है कि वे अनुकूलतम स्तर पर उत्पादन करें, जिससे उत्पादकता बढ़ती है; जबकि एकाधिकार में यह दबाव नहीं होता, इसलिए उत्पादकता कम हो सकती है। माँग में उतार-चढ़ाव भी क्षमता उपयोग को प्रभावित करते हैं-माँग घटने पर उत्पादन कम करना पड़ता है।

कच्चे माल और विद्युत आपूर्ति में बाधाएँ उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता भी बाहरी कारक है क्योंकि तकनीकी सुधार और दैनिक कार्य सुचारु रखने के लिए वित्त आवश्यक है।

अधोसंरचना जैसे सड़क, रेल, बंदरगाह आदि की कमी परिवहन और आपूर्ति को बाधित कर उत्पादन प्रभावित कर सकती है। प्राकृतिक कारक जैसे अत्यधिक गर्मी/सर्दी भी श्रमिक क्षमता और उद्योगों की स्थिति को प्रभावित करते हैं। सामाजिक कारक-जैसे शिक्षा, आधुनिकता की स्वीकार्यता, परम्परावाद- भी उत्पादकता पर प्रभाव डालते हैं। अंत में,सरकारी नीतियाँ कराधान, संरक्षण, तकनीकी उन्नयन, प्रतिस्पर्धा और वित्तीय सहायता द्वारा उत्पादकता को अनुकूल या प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती हैं।

इस प्रकार, क्षमता उपयोग और उत्पादकता पर आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के कारकों का संयुक्त प्रभाव होता है और उच्च उत्पादकता बनाए रखने के लिए पूर्ण क्षमता उपयोग अत्यंत आवश्यक है।

11.8 शब्दावली

- **अनुकूलतम उत्पादन -** उत्पादन का वह स्तर जिस पर प्रति इकाई उत्पादन लागत न्यूनतम होती है।
- **पूर्ण क्षमता -** उत्पादन का वह स्तर, जिसके बाद उत्पादन में वृद्धि होने पर प्रति इकाई उत्पादन लागत में वृद्धि हो, पूर्ण क्षमता को व्यक्त करता है।
- **अपूर्ण क्षमता -** यदि उत्पादन प्रक्रिया में उतने ही संसाधनो की मात्रा से, जो पूर्ण क्षमता के उत्पादन के लिए आवश्यक होते है, प्राप्त उत्पादन का स्तर पूर्ण क्षमता के उत्पादन स्तर से कम है तो यह स्थिति अपूर्ण क्षमता को व्यक्त करती है।
- **परम्परागत तकनीक -** इसका अभिप्राय पुरानी पद्धतियों पर आधारित तकनीक से होता है।
- **संसाधनों का आबंटन -** इसका अभिप्राय समस्त संसाधनों का विभिन्न उपयोग के लिए वितरण से होता है।
- **विपणन क्रिया -** किसी उत्पाद के उत्पादन क्रिया सम्पन्न होने के पश्चात् से लेकर बाजार अथवा उपभोक्ता तक आपूर्ति करने तक के बीच की समस्त क्रियायें विपणन क्रिया कहलाती है। इसके अन्तर्गत भण्डारण, विज्ञापन, विक्रय इत्यादि सभी क्रिया आती हैं।
- **तकनीकी उन्नयन -** प्रयुक्त अथवा प्रचलित तकनीक का उत्तरोत्तर विकास ही तकनीकी उन्नयन की क्रिया कहलाती है।
- **बाज़ार की प्रकृति -** बाज़ार खरीदारों और विक्रेताओं के लिए वस्तुओं, सेवाओं या संसाधनों का आदान-प्रदान करने की कोई भी प्रणाली है, ज़रूरी नहीं कि यह कोई भौतिक स्थान हो, जो कीमतें तय करने के लिए आपूर्ति और मांग से संचालित होता हो। इसकी प्रकृति बाज़ार संरचना के अनुसार काफ़ी भिन्न होती है, जिसकी विशेषता प्रतिस्पर्धा के स्तर (पूर्ण प्रतिस्पर्धा, एकाधिकार, अल्पाधिकार, एकाधिकार), उत्पाद विभेदीकरण और प्रवेश में बाधाएँ होती हैं, जो मूल रूप से यह निर्धारित करती हैं कि कीमतें कैसे निर्धारित की जाती हैं और संसाधनों का आवंटन कैसे किया जाता है। बाज़ार व्यापार, संसाधन वितरण और मूल्य निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण आर्थिक तंत्र हैं, जो स्थानीय बाज़ारों से लेकर वैश्विक डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म तक फैले हुए हैं।
- **बाजार में माँग की दशाएं -** अर्थशास्त्र में, बाज़ार माँग की स्थितियाँ किसी वस्तु या सेवा की कुल मात्रा को दर्शाती हैं जिसे बाज़ार में सभी उपभोक्ता एक विशिष्ट अवधि के दौरान विभिन्न कीमतों पर खरीदने के लिए इच्छुक और सक्षम होते हैं। यह अवधारणा माँग के नियम द्वारा नियंत्रित होती है और कई प्रमुख निर्धारकों द्वारा आकार लेती है जो संपूर्ण माँग संबंध को बदल सकते हैं।
- **प्रबन्धकीय कुशलता -** प्रबंधकीय कौशल लोगों का नेतृत्व करने, संसाधनों का प्रबंधन करने और लक्ष्य प्राप्त करने की क्षमताएं हैं, जिनमें नेतृत्व, संचार, योजना, संगठन, कार्य सौंपना, समस्या समाधान और निर्णय लेने के साथ-साथ भावनात्मक बुद्धिमत्ता और रणनीतिक सोच जैसे महत्वपूर्ण पारस्परिक गुण शामिल हैं, जो टीमों का मार्गदर्शन करने और संगठनात्मक सफलता सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. लागत न्यूनतम 2. धनात्मक 3. पूर्ण उपयोग 4. दोनों

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- S. Elion, B. Gold and J. Soesan (1976): ***Applied Productivity Analysis for Industry***, Pergamon Press, Oxford.
- H. Speight (1970): ***Economics and Industrial Efficiency***, Macmillan, London.

11.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Barthwal, R.R. (2005): ***Industrial Economics – An Introductory Textbook***, New Age International Publishers, New Delhi.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, New Delhi.
- Singh, A. and A.N. Sadhu (1988): ***Industrial Economics***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पूर्ण उत्पादन क्षमता एवं अल्प उत्पादन क्षमता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इनके एवं उत्पादकता के बीच के सम्बन्ध को समझाइये।
2. औद्योगिक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले उन कारकों को स्पष्ट कीजिए जिनकों व्यावसायिक इकाईयां स्वयं नियन्त्रित कर सकती हैं।
3. औद्योगिक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले उन कारकों को स्पष्ट कीजिए जो व्यावसायिक इकाईयों के नियन्त्रिण से बाहर होती हैं।
4. औद्योगिक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले समस्त कारकों की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

इकाई-12 प्रतिस्पर्धा के वातावरण में उत्पादकता का महत्व

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 प्रतिस्पर्धा के वातावरण की विशेषताएं
12.4 प्रतिस्पर्धा एवं उत्पादकता के बीच सम्बन्ध
12.5 उत्पादकता का महत्व
12.5.1. उत्पादकता का महत्व
12.5.2. उत्पादकता माप का महत्व
12.6 अभ्यास प्रश्न
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व के अनेक देशों में उत्पादकता की विचारधारा को काफी महत्व प्राप्त हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् से इस विचारधारा को और अधिक समर्थन प्राप्त होने लगा तथा विश्व के अनेक देशों में उत्पादकता मापन एवं सुधार हेतु विभिन्न संस्थानों को स्थापित किया जाने लगा। भारत में भी इस सन्दर्भ में 1958 में एक परिषद 'राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद' का स्थापना किया गया तथा बाद के वर्षों में इस दिशा में अन्य अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किये जाते रहे। प्रश्न यह उठता है कि एक अर्थव्यवस्था में, विशेषकरके प्रतिस्पर्धा के वातावरण में औद्योगिक उत्पादकता की क्या उपयोगिता होती है अर्थात् इसका क्या महत्व होता है। इस इकाई के अन्तर्गत औद्योगिक उत्पादकता के इसी पहलू को स्पष्ट किया जा रहा है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातों को समझने में सक्षम हो सकेंगे -

- ✓ प्रतिस्पर्धा माहौल की विशेषताएं क्या होती हैं।
- ✓ प्रतिस्पर्धा माहौल तथा उत्पादकता के बीच क्या सम्बन्ध होता है।
- ✓ प्रतिस्पर्धा के वातावरण में उत्पादकता की क्या उपयोगिता होती है।

12.3 प्रतिस्पर्धा के वातावरण की विशेषताएं

प्रतिस्पर्धा के वातावरण का तात्पर्य औद्योगिक जगत की ऐसी परिस्थिति से होता है जिसमें उत्पादन प्रक्रिया कुशलतम तकनीकी पर आधारित होती है। इस प्रकार के परिस्थिति में व्यावसायिक इकाईयों का बाजार पर नियन्त्रण या तो होता ही नहीं है या अत्यन्त कम होता है और व्यावसायिक इकाईयों को बाजार द्धारा निर्धारित कीमतों के अनुसार ही अपने व्यवसाय का सम्पादन करना पड़ता है। अत: इस प्रकार के परिस्थिति में व्यावसायिक इकाईयों के लिए आवश्यक होता है कि वे अपने उत्पादन प्रक्रिया में ऐसी तकनीक का प्रयोग करें जिससे लागतों को कम से कम किया जा सके और उत्पादन प्रक्रिया को कुशलतम तकनीक के आधार पर सम्पादित किया जा सके। प्रतिस्पर्धा के वातावरण की एक विशेषता यह भी होती है कि यह परिस्थिति समाज की दृष्टिकोंण एवं उपभोक्ताओं की दृष्टिकोंण से अत्यन्त अनुकूल परिस्थिति प्रस्तुत करती है। इसका कारण यह है कि इस परिस्थिति में उत्पादन प्रक्रिया कुशलतम तकनीकी पर आधारित होती है, उत्पादों की कीमत अपेक्षाकृत कम होती है तथा उत्पादन की मात्रा भी अधिक होती है।

12.4 प्रतिस्पर्धा एवं उत्पादकता के बीच सम्बन्ध

प्रश्न यह उठता है कि प्रतिस्पर्धा माहौल तथा उत्पादकता के बीच किस प्रकार का सम्बन्ध होता है। इस बात को उत्पादकता के कारण उत्पन्न होने वाले प्रभावों के माध्यम से समझा जा सकता है। उत्पादकता में सुधार के फलस्वरुप लागतों में कमी होती है और वस्तुत: उत्पादकता में सुधार के माध्यम से उत्पादन के अनुकूलतम स्तर को प्राप्त किया जा सकता है। इतना ही नहीं, लागतों में गिरावट होने से कीमतों में भी कमी होती है। अत: स्पष्ट है कि प्रतिस्पर्धा के माहौल में व्यावसायिक इकाईयों के अस्तित्व तथा संवृद्धि के लिए उत्पादकता एक महत्वपूर्ण उपकरण के रुप में सहायक हो सकता है।

12.5 उत्पादकता का महत्व

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि एक ऐसे औद्योगिक जगत में जहाँ प्रतिस्पर्धा का वातावरण विद्यमान हो औद्योगिक उत्पादकता की प्राप्ति अत्यन्त उपयोगी होती है। वस्तुत: एक देश के औद्योगिक जगत में उत्पादकता के महत्व को दो रुपों में देखा जा सकता है- 'उत्पादकता का महत्व' तथा 'उत्पादकता माप का महत्व'।

आगे की पंक्तियों में इन महत्वों को विस्तार से प्रस्तुत किया जा रहा है-

12.5.1. उत्पादकता का महत्व

किसी देश के औद्योगिक जगत के सुचारु रुप से संचालन तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया में निरन्तरता बनाये रखने में उत्पादकता एक अत्यन्त ही उपयोगी कारक हो सकता है।

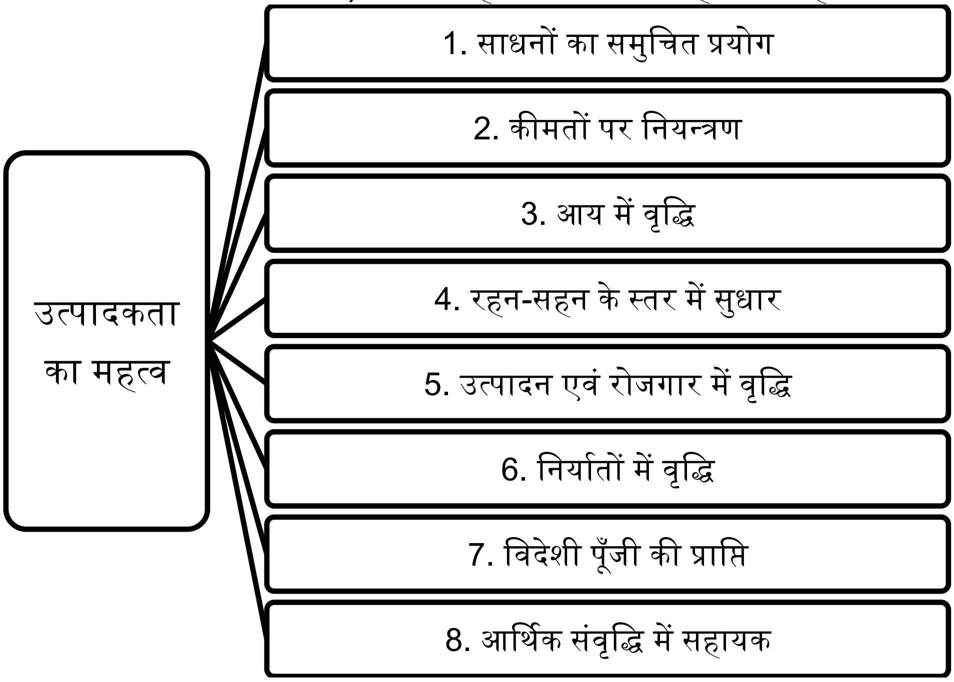

एक देश के औद्योगिक विकास में उत्पादकता में सुधार निम्नलिखित प्रकार से सहायक हो सकता है-

1. **साधनों का समुचित प्रयोग -** एक देश के सतत आर्थिक विकास के लिए आवश्यक होता है कि देश में उपलब्ध संसाधनों का उत्पादन प्रक्रिया में इस प्रकार प्रयोग किया जाय कि उनका अपव्यय न हो। ऐसा तभी सम्भव है जबकि उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त संसाधन अपनी पूर्ण क्षमता के स्तर पर उत्पादन करते रहें जिसका तात्पर्य यह है कि संसाधनों की उत्पादकता अधिक से अधिक होनी चाहिए। स्पष्ट है कि एक देश में साधनों के समुचित उपयोग होने के लिए यह आवश्यक है कि साधनों की उत्पादकता अधिक से अधिक होनी चाहिए।
2. **कीमतों पर नियन्त्रण -** किसी भी कल्याणकारी राज्य के लिए यह आवश्यक होता है कि कीमतो पर नियन्त्रण बना रहे जिससे स्फीतिक स्थितियों से बचा जा सके। कीमतों पर नियन्त्रण के लिए आवश्यक होता है कि उत्पादन प्रक्रिया ऐसी तकनीकी पर आधारित हो जिससे लागतों में बचत प्राप्त हो। लागतों में बचत उत्पादन प्रक्रिया में साधनों की उत्पादकता में सुधार करके प्राप्त किया जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि उत्पादकता में सुधार करके वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति में भी वृद्धि की जा सकती है जिससे कीमतों में वृद्धि पर अंकुश लगाया जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कीमतों पर नियन्त्रण की दृष्टि से उत्पादकता में सुधार काफी सहायक होता है।
3. **आय में वृद्धि -** जैसा कि ऊपर की पंक्तियों में स्पष्ट किया गया कि उत्पादकता में सुधार के माध्यम से एक तरफ उत्पादन लागत में कमी हो सकती है वहीं दूसरी तरफ कीमतों में कमी हो सकती है। लागतों में कमी होने से उत्पादकों के लाभ की मात्रा में वृद्धि हो सकती है और उत्पादकों के लिए श्रमिको एवं कर्मचारियों के वेतन में भी वृद्धि करना सम्भव हो सकता है। इसके फलस्वरुप लोगों के वास्तविक आय में वृद्धि हो सकती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्पादकता में सुधार लोगों की आय वृद्धि में काफी सहायक हो सकती है।
4. **रहन-सहन के स्तर में सुधार -** उत्पादकता में सुधार के माध्यम से कीमतों पर नियन्त्रण एवं वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति में वृद्धि के साथ-साथ चूँकि लोगों की आय में वृद्धि हो सकती है। इसलिए इन सबका संयुक्त प्रभाव यह हो सकता है कि लोगों के वास्तविक आय एवं क्रय शक्ति में वृद्धि हो सकती है और इसके परिणामस्वरुप लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार हो सकता है। इस प्रकार

स्पष्ट है कि लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार की दृष्टि से भी उत्पादकता काफी सहायक होता है।

5. **उत्पादन एवं रोजगार में वृद्धि -** उत्पादकता में सुधार के फलस्वरुप लोगों की वास्तविक आय तथा उत्पादकों के लाभ में होने वाली वृद्धि उपभोग माँग के साथ-साथ निवेश माँग को प्रेरित कर सकती है और निवेश क्रिया को प्रोत्साहित कर सकती है। इसके परिणामस्वरुप उत्पादन तथा रोजगार के स्तर में वृद्धि हो सकती है। इतना ही नहीं बल्कि उत्पादकता में सुधार के लिए चूँकि संसाधनों की पूर्ण क्षमता का प्रयोग आवश्यक होता है अत: इसके फलस्वरुप दिये गये संसाधनों के स्तर पर ही उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार उत्पादकता में सुधार उत्पादन तथा रोजगार के स्तर में वृद्धि में सहायक होती है।
6. **निर्यातों में वृद्धि -** किसी भी देश के निर्यातों में वृद्धि के लिए यह आवश्यक होता है कि उस देश के उत्पाद अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्द्धी हों। यह तभी सम्भव है कि देश में निर्मित उत्पाद की उत्पादन लागत कम हो तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इनकी कीमत कम हो। चूँकि उत्पादकता में सुधार के माध्यम से न केवल घरेलू बाजार में वस्तुओं की आपूर्ति को बढ़ाया जा सकता है बल्कि उत्पादन लागतों को कम करके देश में निर्मित वस्तुओं को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धी बनाया जा सकता है। अत: उत्पादकता में वृद्धि देश के निर्यातों के वृद्धि में सहायक होता है।
7. **विदेशी पूँजी की प्राप्ति -** एक देश, विशेषकर विकासशील देश, के विकास के लिए विदेशी सहायता की आवश्यकता पड़ती रहती है। यह विदेशी सहायता ऋण के रुप में भी हो सकती है और विदेशी निवेश के रुप में भी हो सकती है। यह पाया जाता है कि विदेशी सहायता प्रदान करने वाले राष्ट्र तथा संस्थाएं ऐसे देशों में कम रुचि लेती हैं जिनमें उत्पादन प्रक्रिया अकुशल तकनीक पर आधारित होती है। इसलिए विकासशील देशों के लिए यह आवश्यक होता है कि वे अपने देश में उत्पादकता को सन्तोषजनक स्तर पर बनायें रखें। इस प्रकार विदेशी पूँजी एवं सहायता प्राप्त करने के दृष्टि से भी उत्पादकता में सुधार एक उपयोगी माध्यम हो सकता है।
8. **आर्थिक संवृद्धि में सहायक -** आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया एक दीर्घकालीन प्रक्रिया होती है जिसमें उत्पादन में निरन्तर वृद्धि आवश्यक होता है। परन्तु किसी भी देश में उत्पादन के लिए आवश्यक संसाधन, विशेषकरके प्राकृतिक संसाधन जैसे- भूमि, जल, खनिज पदार्थ, वन उत्पाद इत्यादि सीमित होते हैं। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ इन संसाधनों की उपलब्धता कम होती जाती है। यदि इन संसाधनों का मितव्ययिता के साथ प्रयोग नहीं किया गया तो ये जल्द ही समाप्त हो सकते हैं और आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया अवरुद्ध हो सकती है। उत्पादकता में वृद्धि एक तरफ साधनों के मितव्ययी प्रयोग में सहायक होता है तो दूसरी तरफ साधनों के उत्पादकता में भी सहायक होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्पादकता में सुधार आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया में भी काफी सहायक होती है।

12.5.2. उत्पादकता माप का महत्व

किसी देश के औद्योगिक विकास में उत्पादकता का प्रत्यक्ष रुप में महत्व तो होता ही है साथ ही साथ इसकी माप भी औद्योगिक एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया में काफी उपयोगी होता है।

एक देश में उत्पाकता की माप किस प्रकार से उपयोगी हो सकती है इसको निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा रहा है-

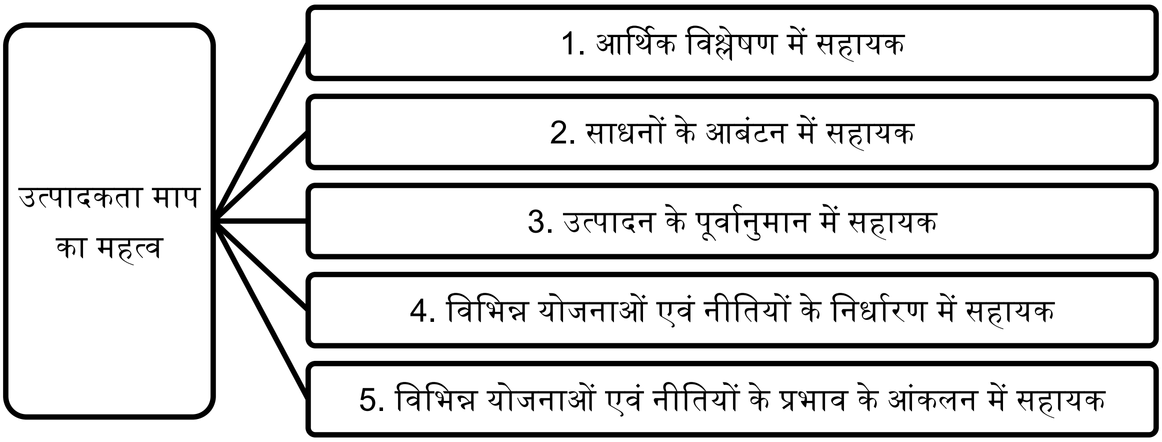

1. **आर्थिक विश्लेषण में सहायक -** उत्पादकता के माप द्वारा प्राप्त सूचकांक एक देश के आर्थिक विश्लेषण, विशेषकरके औद्योगिक जगत के विश्लेषण में काफी सहायक होते हैं। इन सूचकांकों के आधार पर किसी उद्योग विशेष में स्थित विभिन्न व्यावसायिक इकाईयों की उत्पादन कुशलता की तुलना की जा सकती है तथा विभिन्न संसाधनों के उत्पादकता की तुलना की जा सकती है। इसी प्रकार इन सूचकांकों के आधार पर एक देश के औद्योगिक जगत में स्थित विभिन्न उद्योगों की उत्पादकता की तुलना की जा सकती है। इतना ही नहीं बल्कि इन सूचकांकों के आधार पर विभिन्न देशों में किसी उद्योग विशेष की उत्पादकता के स्तर की भी तुलना की जा सकती है।
2. **साधनों के आबंटन में सहायक -** चाहे एक देश हो अथवा एक व्यावसायिक इकाई, दोनों के पास संसाधनों की उपलब्धता सीमित होती है। अत: दोनों के लिए यह आवश्यक होता है कि अपने उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संसाधनों का आबंटन समुचित रुप से किया जाय। इसके लिए यह आवश्यक होता है कि आर्थिक नियोजन अथवा निवेश नियोजन में ऐसे उद्योगों को प्राथमिकता प्रदान किया जाय जिनमें साधनों की उत्पादकता का स्तर अधिक हो। इतना ही नहीं यदि कम उत्पादकता वाले उद्योग देश के प्राथमिकता की दृष्टिकोंण से महत्वपूर्ण है तो ऐसे उद्योगों के लिए अपेक्षाकृत अधिक संसाधनों को आबंटित करना होगा। स्पष्ट है कि इस प्रकार के निर्णय के लिए उत्पादकता सूचकांकों की आवश्यकता होगी जिससे यह पता लगाया जा सके कि कौन से उद्योग में कम संसाधन तथा कौन से उद्योग में अधिक संसाधन की आवश्यकता होगी।
3. **उत्पादन के पूर्वानुमान में सहायक -** उत्पादकता सूचकांक एक देश के विभिन्न औद्योगकि क्षेत्रों के उत्पादन के संभावित प्रवृत्तियों के आंकलन में एक वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हैं। वस्तुत: इस सूचकांक को एक देश औद्योगिक विकास का 'बैरोमीटर' कहा जाता है क्योकि इसको देखकर ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी विशिष्ट उद्योग में उत्पादन में वृद्धि होगी या गिरावट होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्पादकता सूचकांक विभिन्न उद्योगों के उत्पादन के पूर्वानुमान में सहायक हो सकते हैं।
4. **विभिन्न योजनाओं एवं नीतियों के निर्धारण में सहायक -** उत्पादकता सूचकांक एक व्यावसायिक इकाई तथा सरकार के नीतियों के निर्धारण में भी सहायक हो सकते हैं। चूँकि उत्पादकता सूचकांक साधनों की उत्पादकता को व्यक्त करते हैं इसलिए ये सूचकांक एक व्यावसायिक इकाई अथवा सरकार के लिए संसाधनों के आबंटन में दिशा निर्देश प्रदान कर सकते हैं। इसके साथ ही साथ श्रमिकों के वेतन, मजदूरी, प्रोत्साहन एवं अनेक सुविधाओं के निधांरण में भी उत्पादकता सुचकांक की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इतना ही नहीं, उत्पादकता सूचकांक सरकार के कई अन्य नीति निर्धारण में भी सहायक होते हैं जैसे- विभिन्न उद्योगों को प्रदान किये जाने वाले संरक्षण के स्वरुप के आंकलन में, राजकोषीय नीति एवं सामाजिक कल्याण के योजनाओं के निर्धारण इत्यादि।
5. **विभिन्न योजनाओं एवं नीतियों के प्रभाव के आंकलन में सहायक -** उत्पादकता सूचकांक किसी व्यावसायिक इकाई तथा सरकार के नीतियों के प्रभाव के आंकलन में भी सहायक हो सकते हैं

क्योंकि इस सूचकांक के आधार पर यह मूल्यांकन किया जा सकता हैं कि किसी व्यावसायिक इकाई द्वारा अपनायी गयी उत्पादन की नयी तकनीकी से उत्पादकता में सुधार हुआ है कि नहीं। ठीक इसी प्रकार इस सूचकांक के आधार पर यह मूल्यांकन किया जा सकता हैं कि सरकार द्वारा अपनायी गयी किसी योजना विशेष अथवा नीति विशेष से उत्पादकता में सुधार हुआ है कि नहीं।

12.6 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. प्रतिस्पर्धा के वातावरण में उत्पादन अनुकूलतम स्तर पर होता है।
2. उत्पादकता में वृद्धि संसाधनों के समुचित प्रयोग में सहायक होती है।
3. उत्पादकता में वृद्धि से स्फीतिक स्थिति उत्पन्न होती है।
4. उत्पादकता में वृद्धि आर्थिक विकास को हतोत्साहित करती है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. उत्पादन में कुशलता का स्तर..............बाजार में अनुकूलतम होती है।
   (पूर्ण प्रतियोगी **या** एकाधिकार **या** दोनों)
2. उत्पादकता सूचकांक नीतियों के..............में सहायक होते हैं।
   (निर्धारण **या** आंकलन **या** दोनों)
3. उत्पादकता में वृद्धि संसाधनों के..............में सहायक होता है।
   (समुचित प्रयोग **या** अपव्यय **या** दोनों)
4. उत्पादकता में वृद्धि संसाधनों के मितव्ययिता में..............होता है।
   (सहायक **या** अवरोधक)

12.7 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत एक प्रतिस्पर्धा वातावरण वाले माहौल में उत्पादकता की उपयोगिता अर्थात् महत्व को स्पष्ट किया गया। किसी देश के औद्योगिक जगत के सुचारु रुप से संचालन तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया में निरन्तरता बनाये रखने में उत्पादकता एक अत्यन्त ही उपयोगी उपकरण हो सकता है। एक देश के औद्योगिक एवं आर्थिक विकास में उत्पादकता की महत्वपूर्ण उपयोगिता, साधनों के समुचित प्रयोग के दृष्टिकोंण से होता है। इसका कारण यह है कि उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादकता में सुधार के माध्यम से संसाधनों के अपव्यय को रोका जा सकता है। ठीक इसी प्रकार उतपादकता में सुधार कीमतों पर नियन्त्रण एवं रहन-सहन के स्तर सुधार में भी अत्यन्त उपयोगी होता है क्योंकि उत्पादकता में सुधार से जहाँ एक तरफ लागतों में बचत होती है तो दूसरी तरफ वस्तुओं की आपूर्ति में भी वृद्धि होती है और इसके परिणाम स्वरुप वस्तुओं की कीमतों में कमी हो सकती है। कीमतों में कमी लोगों के वास्तविक आय में वृद्धि उत्पन्न कर सकती है और इसके परिणामस्वरुप लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार हो सकता है। उत्पादकता में वृद्धि से एक देश में निर्मित उत्पाद अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धी हो सकते हैं और इसके परिणाम स्वरुप निर्यातों में वृद्धि हो सकती है।

किसी देश के औद्योगिक विकास में उत्पादकता का प्रत्यक्ष रुप में महत्व तो होता ही है साथ ही साथ इसका माप भी औद्योगिक एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया में काफी उपयोगी होता है। एक देश में उत्पाकता की माप औद्योगिक जगत अथवा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के आर्थिक विश्लेषण, साधनों के आबंटन, उत्पादन के पूर्वानुमान इत्यादि में सहायक हो सकती है। इतना ही नहीं उत्पादकता सूचकांक सरकार के विभिन्न योजनाओं एवं नीतियों के निर्धारण के साथ-साथ विभिन्न योजनाओं एवं नीतियों के प्रभाव के आंकलन में भी सहायक हो सकते हैं।

12.8 शब्दावली

- **प्रतिस्पर्धा -** प्रतिस्पर्धा, बेहतर उत्पाद, कम कीमत और अधिक वांछनीय शर्तें देकर ग्राहकों को आकर्षित करने की कोशिश करने वाले विक्रेताओं के बीच की प्रतिद्वंद्विता है। यह एक मूलभूत बाज़ार गतिशीलता है जो दक्षता और नवाचार को बढ़ावा देती है, जिससे उपभोक्ताओं के लिए वस्तुओं और सेवाओं की विविधता बढ़ती है। किसी बाज़ार में प्रतिस्पर्धा का स्तर पूर्ण प्रतिस्पर्धा से लेकर, जहाँ कई कंपनियाँ एक जैसे उत्पाद पेश करती हैं, एकाधिकार तक, जहाँ केवल एक ही फर्म मौजूद होती है, तक हो सकता है।
- **संसाधनों का अपव्यय -** अर्थशास्त्र में संसाधनों का अपव्यय उत्पादन के कारकों (श्रम, पूँजी, भूमि, सामग्री) का अकुशल उपयोग या कम उपयोग है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन या मूल्य संभव से कम होता है, जो उत्पादन संभावना सीमा के भीतर संचालित होता है और आवंटन दक्षता (सर्वोत्तम उपयोग नहीं) और उत्पादक दक्षता (लागत-प्रभावी नहीं) में हानि का कारण बनता है। यह बेरोजगारी, अप्रयुक्त भूमि, अतिउत्पादन, या ऐसी वस्तुओं के निर्माण के रूप में प्रकट होता है जो ज़रूरतों को पूरा नहीं करतीं, जो अक्सर बाज़ार की विफलताओं, खराब योजना या उपभोक्ता जागरूकता की कमी के कारण होती हैं, लेकिन इसे वृत्ताकार अर्थव्यवस्था मॉडल और बेहतर नीतियों द्वारा संबोधित किया जा सकता है।
- **संसाधनों की मितव्ययिता -** अर्थशास्त्र में, इसका मतलब है सीमित संसाधनों (जैसे भूमि, श्रम, पूंजी) का बुद्धिमानी और कुशलता से उपयोग करना ताकि अधिकतम लाभ या संतुष्टि मिल सके और बर्बादी से बचा जा सके।
- **उत्पादकता सूचकांक -** किसी प्रक्रिया, विभाग या पूरे संगठन की दक्षता मापने का एक मीट्रिक है, जो इनपुट (संसाधन) और आउटपुट (उत्पादन) की तुलना करता है, यह दर्शाता है कि कम संसाधनों में कितना अधिक काम हो रहा है और इसके विभिन्न रूप हैं जैसे औद्योगिक उत्पादन सूचकांक, कृषि उत्पादकता सूचकांक, या किसी तेल कुएँ की उत्पादन क्षमता मापने का सूचकांक। यह प्रदर्शन को ट्रैक करने, सुधार के क्षेत्रों की पहचान करने और सूचित निर्णय लेने में मदद करता है, जो वित्तीय और परिचालन लाभ के लिए महत्वपूर्ण है।
- **संसाधनों का आबंटन -** संसाधन आवंटन, विशिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सीमित संसाधनों (जैसे समय, धन, लोग, उपकरण) के वितरण की रणनीतिक प्रक्रिया है, जो यह सुनिश्चित करती है कि अधिकतम दक्षता और मूल्य के लिए सही संसाधन सही जगह पर पहुँचें, और अक्सर बाज़ार तंत्र या नियोजन के माध्यम से, असीमित आवश्यकताओं बनाम दुर्लभ साधनों की मूलभूत आर्थिक समस्या का समाधान करती है। व्यवसायों के लिए, श्रम, पूँजी, तकनीक और सामग्रियों का प्रभावी ढंग से प्रबंधन करके आवश्यकताओं में संतुलन बनाए रखना, उत्पादन को अनुकूलित करना और सफलता प्राप्त करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।
- **राजकोषीय नीति -** राजकोषीय नीति, सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने के लिए कराधान और व्यय का रणनीतिक उपयोग है, जिसका उद्देश्य समग्र मांग को समायोजित करके आर्थिक विकास, मुद्रास्फीति और रोजगार का प्रबंधन करना है, आमतौर पर विस्तारवादी (अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए अधिक खर्च, कम कर) या संकुचनकारी (मुद्रास्फीति को धीमा करने के लिए कम खर्च, उच्च कर) उपायों के माध्यम से, मौद्रिक नीति के साथ काम करना।

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. पूर्ण प्रतियोगी 2. दोनों 3. समुचित प्रयोग 4. सहायक

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- S. Elion, B. Gold and J. Soesan (1976): ***Applied Productivity Analysis for Industry***, Pergamon Press, Oxford.
- H. Speight (1970): ***Economics and Industrial Efficiency***, Macmillan, London.

12.11 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Barthwal, R.R. (2005): ***Industrial Economics – An Introductory Textbook***, New Age International Publishers, New Delhi.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, New Delhi.
- Singh, A. and A.N. Sadhu (1988): ***Industrial Economics***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रतिस्पर्धा माहौल की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए इसके साथ उत्पादकता तथा क्षमता उपयोग के सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।
2. एक प्रतिस्पर्धा के माहौल में औद्योगिक उत्पादकता की उपादेयता को स्पष्ट कीजिए।
3. 'एक देश के औद्योगिक जगत के साथ-साथ सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संचालन लिए उत्पादकता अत्यन्त महत्वपूर्ण उपकरण होता है'। इस वाक्यांश की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

इकाई-13 उत्पादकता और क्षमता उन्नयन के लिए आवश्यकताएं

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 उत्पादकता और क्षमता उन्नयन के लिए आवश्यकताएं
 13.3.1. प्रबन्धकीय उपाय
 13.3.2. तकनीकी उपाय
 13.3.3. संस्थागत उपाय
 13.3.4. सरकारी उपाय
13.4 अभ्यास प्रश्न
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.9 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में किये गये विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि चाहे एक व्यावसायिक इकाई हो या सम्पूर्ण औद्योगिक जगत, दोनों के दृष्टिकोंण से औद्योगिक उत्पादकता की काफी उपयोगिता होती है। वस्तुत: आर्थिक विकास के लिए उत्पादकता एक महत्वपूर्ण उपकरण होता है। प्रश्न यह उठता है कि वे कौन से उपाय होते हैं जो एक व्यावसायिक इकाई अथवा एक उद्योग के उत्पादकता में सुधार के लिए आवश्यक होते हैं। इस इकाई के अन्तर्गत इन्हीं आवश्यक उपायों को स्पष्ट किया जा रहा है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातों को समझने में सक्षम हो सकेंगे -

- ✓ एक देश के औद्योगिक जगत में उत्पादकता के स्तर में निरन्तर सुधार के लिए कौन-कौन से उपाय आवश्यक होते हैं।

13.3 उत्पादकता और क्षमता उन्नयन के लिए आवश्यकताएं

इस इकाई के पहले यह स्पष्ट किया जा चुका है कि किसी व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता के निर्धारण में अनेक कारकों की भूमिका हो सकती है। इन कारकों में कुछ का सम्बन्ध व्यावसायिक इकाई के प्रबन्ध तन्त्र से तो कुछ का सम्बन्ध व्यावसायिक इकाई के उत्पादन की तकनीकी से हो सकता है। इसी प्रकार कुछ कारकों का सम्बन्ध व्यावसायिक इकाई के संस्थागत परिस्थितियों से हो सकता है तो कुछ का सम्बन्ध सरकार के नीतियों से हो सकता है। स्पष्ट है कि किसी भी देश में उत्पादकता के उच्च स्तर को प्राप्त करने के लिए ऐसे उपाय आवश्यक होंगे जो इन सभी कारकों को प्रभावित कर सकें। अत: उत्पादकता में सुधार के लिए आवश्यक उपायों को चार श्रेणियों में रखकर समझा जा सकता है जो इस प्रकार हैं- प्रबन्धकीय उपाय, तकनीकी उपाय, संस्थागत उपाय तथा सरकारी उपाय।

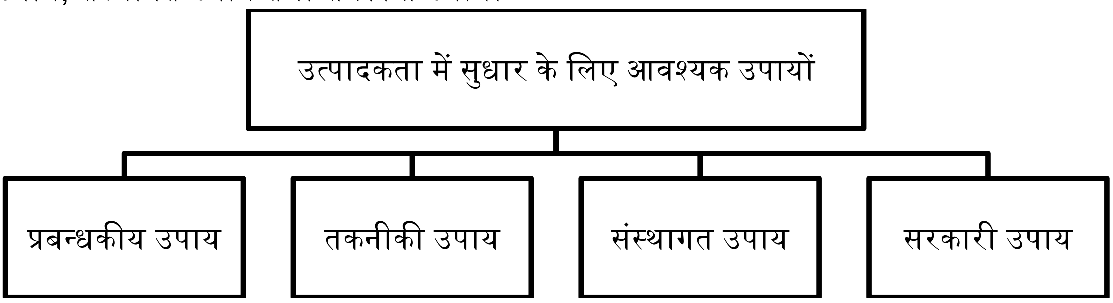

इन उपायों को निम्नलिखित पंक्तियों में विस्तार से स्पष्ट किया जा रहा है।

13.3.1. प्रबन्धकीय उपाय

किसी भी व्यावसायिक इकाई अथवा साधन के उत्पादकता में सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण उपाय यह होता है कि उत्पादन प्रक्रिया अथवा व्यवसाय के संचालन में प्रयुक्त होने वाले संसाधनों का प्रयोग कुशलतम स्तर पर किया जाय। ऐसा करने का एक उपाय यह है कि व्यवसाय का प्रबन्धन कुशल रुप से हो।

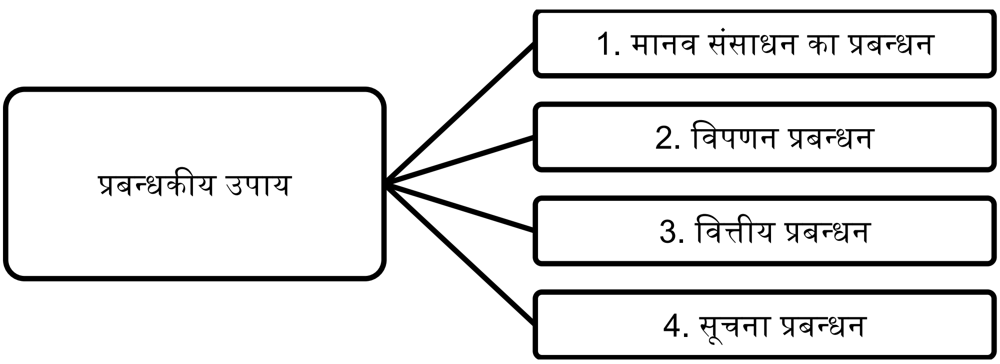

वस्तुत: एक व्यावसायिक इकाई के कुशल प्रबन्धन के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक होते हैं-

1. **मानव संसाधन का प्रबन्धन -** उत्पादकता के उच्च स्तर को प्राप्त करने के लिए एक आवश्यक शर्त यह होती है कि उपलब्ध श्रम संसाधन अर्थात मानव संसाधन का इस प्रकार प्रयोग किया जाय कि इनकी क्षमता का अपव्यय न हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि श्रमिकों को उनकी कुशलता अथवा दक्षता अनुरुप कार्यो में लगाया जाय और ऐसा एक कुशल प्रबन्ध तन्त्र के द्वारा ही किया जा सकता है। वस्तुत: एक कुशल प्रबन्ध तन्त्र उपलब्ध श्रम संसाधन का उपयोग 'श्रम विभाजन' के आधार पर करता है जिससे अनेक प्रकार की मितव्ययितायें प्राप्त हो सकती हैं और फलस्वरुप उत्पादकता का स्तर अधिक हो सकता है। वस्तुत: मानव संसाधन के कुशल प्रबन्धन के द्वारा उत्पादन कार्य की गति में वृद्धि करके तथा उत्पादन प्रक्रिया में समय की बचत करके उत्पादकता के स्तर में वृद्धि की जा सकती है।
2. **विपणन प्रबन्धन -** उत्पादकता के ऊँचे स्तर के लिए केवल उत्पादन प्रक्रिया का ही कुशल होना पर्याप्त नहीं होता है बल्कि विपणन क्रिया भी कुशलतम ढंग से सम्पादित होनी चाहिए। यदि विपणन क्रिया में अकुशलता हुयी तो इससे व्यावसायिक इकाई के विक्रय पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकता है और व्यावसायिक इकाई के उत्पाद का एक हिस्सा गोदामों में ही पड़ा रह सकता है। इससे व्यावसायिक इकाई के 'क्षमता उपयोग' एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। अत: व्यावसायिक इकाई के लिए आवश्यक होता है कि विपणन क्रियाओं में उत्पन्न होने वाले अवरोधों को दूर करते रहे तथा विपणन ही नयी-नयी तकनीकों का समावेश करती रहें जिससे कि उत्पादकता में सुधार होता रहे।
3. **वित्तीय प्रबन्धन -** एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता में सुधार के लिए कुशल वित्तीय प्रबन्धन की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। वित्तीय प्रबन्धन का तात्पर्य वस्तुत: दो बातों से होता है। एक तो यह कि व्यवसाय के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन किन स्रोतों से प्राप्त किये जाते हैं तथा इनकी लागत क्या है। दूसरा यह कि उपलब्ध वित्तीय संसाधनों का आबंटन एवं प्रयोग किस प्रकार किया जाता है। स्पष्ट है कि उत्पादकता में सुधार के लिए आवश्यक होगा कि आवश्यक वित्तीय संसाधनों को उन स्रोतों से प्राप्त करना जहाँ इनकी लागत कम हो। इसी प्रकार उत्पादकता के अनुकूलतम स्तर के लिए आवश्यक होता है वित्तीय संसाधनों का प्रयोग इनके आबंटन के अनुरुप होना चहिए। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यावसायिक इकाई कच्चे माल अथवा श्रमिको के लिए आबंटित वित्तीय संसाधनों को किसी अन्य प्रयोजन के लिए उपयोग कर लेती है तो इसके फलस्वरुप इस इकाई को उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चा माल अथवा श्रमिकों को प्राप्त करने में कठिनाई हो सकती है और इसके परिणामस्वरुप इस इकाई के लिए पूर्ण क्षमता पर उत्पादन करने में समस्या उत्पन्न हो सकती है। यह परिस्थिति इन इकाईयों की कुशलता तथा उत्पादकता को प्रतिकूल रुप से प्रभावित कर सकती हैं।
4. **सूचना प्रबन्धन -** एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता एवं क्षमता प्रयोग की दृष्टिकोण से व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाओं, जैसे- बाजार की दशाओं में होने वाले परिवर्तन, तकनीक में होने वाले परिवर्तन, सरकार की नीतियों में होने वाले परिवर्तन इत्यादि के प्रबन्धन की भी काफी उपयोगिता होती है। इसका कारण यह है कि यदि किसी व्यावसायिक इकाई को समय रहते इन सूचनाओं की जानकारी नही हो पाती है तो इससे क्षमता उपयोग एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकता है।

13.3.2. तकनीकी उपाय

तकनीकी उपायों का अभिप्राय उन उपायों से होता है जिसके अन्तर्गत उत्पादन प्रक्रिया में वैज्ञानिक विधियों एवं उन्नत उत्पादन तकनीक का समावेश करके उत्पादकता में निरन्तर सुधार किया जा सकता है।

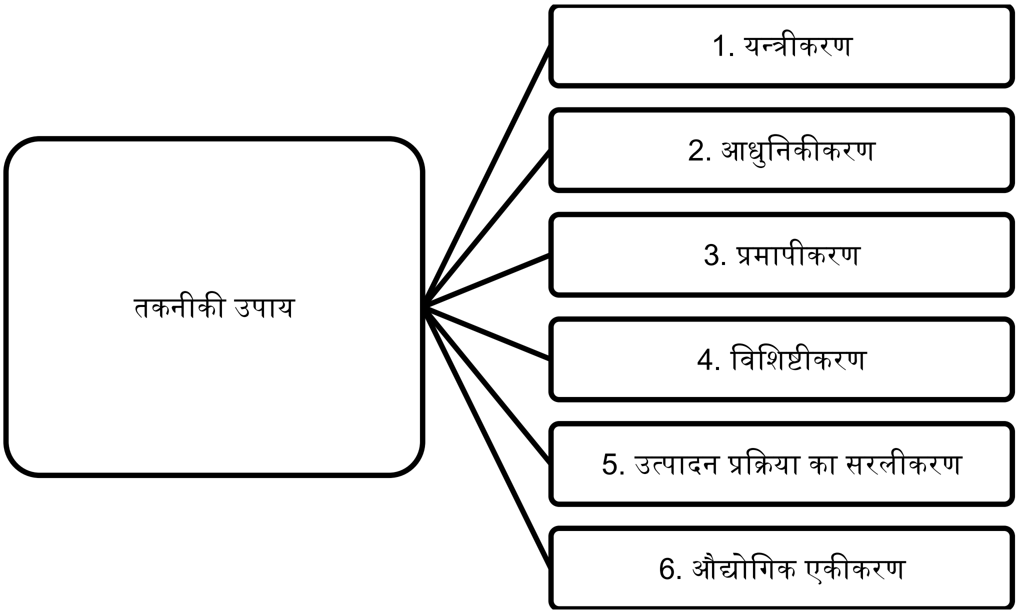

इसके अन्तर्गत मुख्य रुप से निम्न प्रकार के उपायों की आवश्यकता होती है-

1. **यन्त्रीकरण -** उत्पादकता के उच्च स्तर को प्राप्त करने का एक प्रमुख उपाय होता है उत्पादन क्रियाओं एवं व्यवसाय का यन्त्रीकरण। इसका अभिप्राय यह है कि उत्पादन प्रक्रिया में मशीनों एवं उपकरणों के प्रयोग के माध्यम से उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। इसका कारण यह है कि मशीनों एवं उपकरणों के प्रयोग से उत्पादन कार्यों को अपेक्षाकृत कम समय तथा तीव्र गति से सम्पादित किया जा सकता है। यहाँ एक प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि मशीनों के प्रयोग से श्रम साधन मे बेरोजगारी व्याप्त हो सकती है। परन्तु यदि कुशल प्रबन्धन के साथ मशीनों एवं श्रम साधन का प्रयोग किया जाय तो ये दोनों साधन एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं और एक दूसरे की उत्पादकता में वृद्धि कर सकते हैं।
2. **आधुनिकीकरण -** एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादन क्रियाओं एवं व्यवसाय का यन्त्रीकरण कर देने से एक समय में उत्पादकता एवं क्षमता उपयोग में वृद्धि तो की जा सकती है परन्तु इसें निरन्तर सुधार के लिए आवश्यक होता है उत्पादन क्रियाओं एवं व्यवसाय में प्रयुक्त मशीनों एवं उपकरणों का आधुनिकीकरण होते रहना चाहिए। क्योंकि यदि व्यावसायिक इकाईयों द्वारा प्रयोग की जाने वाली प्लाण्ट एवं मशीनरी दोषपूर्ण है तो इसके फलस्वरुप इन इकाईयों को पूर्ण क्षमता के साथ उत्पादन करने में कठिनाई उत्पन्न होगी और इसके परिणामस्वरुप इन इकाईयों की कुशलता तथा उत्पादकता प्रतिकूल रुप से प्रभावित होगी। ठीक इसी प्रकार, उत्पादकता में सुधार के लिए यह भी आवश्यक होता है कि व्यावसायिक इकाईयों की उत्पादन तकनीक का भी आधुनिकीकरण होता रहना चाहिए क्योंकि यदि व्यावसायिक इकाईयों की उत्पादन प्रक्रिया परम्परागत तकनीक पर आधारित होती है तो ऐसी स्थिति में व्यावसायिक इकाईयों की कुशलता तथा उत्पादकता प्रतिकूल रुप से प्रभावित होगी।
3. **प्रमापीकरण -** प्रमापीकरण क्रिया का अभिप्राय व्यावसायिक इकाईयों के उस क्रिया से होता है जिसमें इकाई अपने उत्पाद के लिए एक मानक निर्धारित कर देते हैं तथा उत्पादक अनेक उत्पादों के बजाय केवल कुछ विशिष्ट उत्पादों के उत्पादन पर ही अपने उत्पादन प्रक्रिया को केन्द्रित करते हैं। व्यावसायिक इकाईयों के इस क्रिया के फलस्वरुप उत्पादन प्रक्रिया में होने वाले अपव्ययों एवं साधनों की बर्बादी में कमी आती है। अत: स्पष्ट है कि प्रमापीकरण की क्रिया भी उत्पादकता में सुधार तथा क्षमता उपयोग के लिए एक आवश्यक उपाय होता है।
4. **विशिष्टीकरण -** विशिष्टीकरण की क्रिया वस्तुत: प्रमापीकरण क्रिया का ही अगला चरण होता है। उत्पादन प्रक्रिया के प्रमापीकरण के पश्चात् व्यावसायिक इकाईयां किसी एक प्रकार के उत्पाद में विशिष्टीकरण करती हैं अर्थात् अपने सम्पूर्ण साधनों को इसी उत्पाद के उत्पाद में नियोजित करती

हैं। इसके फलस्वरुप उत्पाद के गुणवत्ता में सुधार होता है और इन उत्पादों का उत्पादन व्यापक स्तर पर किया जाता है। इसके परिणामस्वरुप व्यावसायिक इकाईयों को उत्पादन प्रक्रिया में लागतों में मितव्ययिता प्राप्त होती हैं। अत: स्पष्ट है कि विशिष्टीकरण की क्रिया भी उत्पादकता में सुधार तथा क्षमता उपयोग के लिए एक आवश्यक उपाय होता है।

5. **उत्पादन प्रक्रिया का सरलीकरण -** सरलीकरण का अभिप्राय उत्पादन प्रक्रिया के अन्तर्गत अनेक प्रकार की अनावश्यक प्रक्रियायों एवं उत्पादों के उत्पादन को समाप्त करने से होता है। इसके परिणामस्वरुप व्यावसायिक इकाईयों को उत्पादन प्रक्रिया में लागतों में अनेक प्रकार की मितव्ययिता प्राप्त होती हैं। अत: सरलीकरण की क्रिया भी उत्पादकता में सुधार तथा क्षमता उन्नयन के लिए एक आवश्यक उपाय होता है।
6. **औद्योगिक एकीकरण -** औद्योगिक एकीकरण की प्रक्रिया को अपना करके भी एक व्यावसायिक इकाई अपने उत्पादकता में वृद्धि कर सकती है। इसका कारण यह है कि एकीकरण के माध्यम से एक व्यावसायिक इकाई अपने आकार में वृद्धि कर सकती है और अपने उत्पादन के स्तर को अनुकूलतम स्तर पर पहुँचा सकती है।

13.3.3. संस्थागत उपाय

एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता एवं क्षमता उपयोग के लिए प्रबन्धकीय एवं तकनीकी उपाय के साथ-साथ कुछ संस्थागत उपाय भी आवश्यक होते हैं।

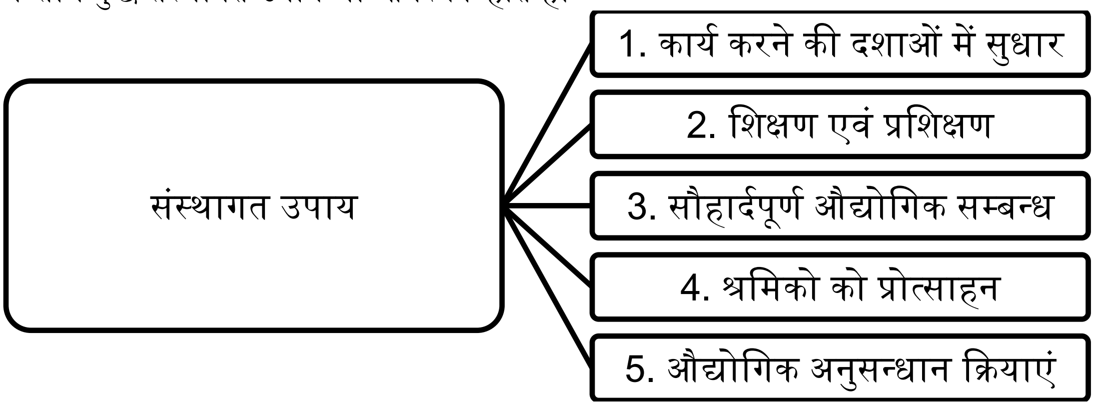

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित उपाय आवश्यक होते हैं-

1. **कार्य करने की दशाओं में सुधार -** एक व्यावसायिक इकाईयों में श्रमिकों के लिए उपलब्ध कार्य करने की दशाऐं, जैसे- कार्य करने के घण्टे, कार्य स्थल का वातावरण इत्यादि, भी उत्पादकता एवं क्षमता उपयोग को प्रभावित कर सकती हैं। यदि किसी संस्था में श्रमिकों के लिए विद्यमान कार्य करने की दशाएं अनुकूल नहीं है तो इसके परिणामस्वरुप उत्पादकता एवं क्षमता उपयोग प्रतिकूल प्रभावित हो सकती है। अत: संस्था के लिए यह आवश्यक होता है ऐसे आवश्यक उपाय अपनाए जांय जिससें कि संस्था में श्रमिकों के लिए उपलब्ध कार्य करने की दशाऐं अनुकूल बना रहे।
2. **शिक्षण एवं प्रशिक्षण -** इसके पूर्व तकनीकी उपायों के अन्तर्गत यह उल्लेख किया गया कि यन्त्रीकरण एवं आधुनिकीकरण के माध्यम से उत्पादकता में निरन्तर सुधार किया जा सकता है। परन्तु कोई भी मशीन अथवा उपकरण मानव संसाधनों के द्वारा ही संचालित की जाती है अत: यह आवश्यक होता है कि किसी भी व्यावसायिक इकाई में उपलब्ध श्रमिकों, कर्मचारियों तथा अधिकारियों के लिए लगातार शिक्षण एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था होती रहे जिससे कि ये लोग नये मशीनों तथा तकनीकी के संचालन में दक्षता प्राप्त करते रहें। यदि ऐसा नहीं सुनिश्चित किया गया तो मशीनों एवं श्रमिकों के कार्यप्रणाली में असामान्जस्य होगा और उत्पादन का स्तर अपूर्ण क्षमता का होगा। अत: उत्पादकता में सुधार एवं क्षमता उपयोग के लिए समय-समय पर श्रमिकों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की सुविधा भी आवश्यक होती है।

3. **सौहार्दपूर्ण औद्योगिक सम्बन्ध -** यदि किसी व्यावसायिक इकाई में औद्योगिक सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण नहीं हैं तो इससे आये दिन श्रमिकों एवं मालिकों के बीच टकराहट उत्पन्न होती रहती है जिससे उत्पादन प्रक्रिया बाधित होती है। ऐसे में उत्पादन क्षमता का एक भाग अप्रयुक्त पड़ा रहता है। अत: उत्पादन क्षमता का पूर्ण प्रयोग होने तथा उत्पादकता के अनुकूलतम स्तर के लिए आवश्यक है कि व्यावसायिक इकाई में औद्योगिक सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण बना रहना चाहिए।
4. **श्रमिको को प्रोत्साहन -** एक व्यावसायिक इकाई में उत्पादकता के अनुकूलतम स्तर को प्राप्त करते रहने के लिए यह आवश्यक होता है कि श्रमिकों को समय-समय पर प्रोत्साहन प्राप्त होता रहे जिससे कि कार्य के प्रति उनका उत्साह बना रहे और वे अपने पूरे मनोयोग एवं उत्साह के साथ उत्पादन प्रक्रिया में सहयोग करते रहें। श्रमिकों को प्रोत्साहन उनके वेतन में वृद्धि करके, बोनस एवं महंगाई भत्ते को प्रदान करके तथा श्रम कल्याण के कार्यक्रमों को सम्पादित करके दिया जा सकता है।
5. **औद्योगिक अनुसन्धान क्रियाएं -** जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि उत्पादकता में सुधार के लिए समय-समय पर उत्पादन की नयी-नयी तकनीक की आवश्यकता होती है। इसके लिए शोध एवं अनुसन्धान की क्रियाओं का होना आवश्यक होता है। तकनीकी तथा शोध संस्थाएं तो इस क्रिया को सम्पादित तो करती ही हैं साथ ही साथ व्यावसायिक इकाईयों, विशेषकरके कुछ विशिष्ट उद्योगों जैसे- रसायन, औषधि, ऑटोमाबाईल इत्यादि उद्योगों में कार्यरत इकाईयों के लिए यह आवश्यक होता है कि व्यवसाय में प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए तथा उत्पादकता को अनुकूलतम स्तर पर बनाये रखने के लिए स्वयं शोध एवं अनुसन्धान की क्रियाओं को सम्पादित करते रहें।

13.3.4. सरकारी उपाय

जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता तथा क्षमता उपयोग के प्रतिकूल होने के लिए 'आन्तरिक समस्यायों' के साथ-साथ कुछ 'बाह्य समस्यायें' भी उत्तरदायी हो सकती हैं। अत: उत्पादकता में सुधार के लिए यह आवश्यक होता है कि इन दोनों प्रकार के समस्याओं का निराकरण किया जाय क्योंकि किसी भी प्रकार के समस्या विद्यमान होने पर उत्पादन का स्तर 'अल्प क्षमता' का होगा और उत्पादकता का स्तर अनुकूल नहीं होगा। आन्तरिक समस्याओं के निराकरण के लिए आवश्यक जिन उपायों की आवश्यकता होती है वे सभी व्यावसायिक इकाई के नियन्त्रण में होती हैं और इन उपायों की विवेचना उपरोक्त पंक्तियों में की गयी है। परन्तु बाह्य समस्याओं के निराकरण के लिए ऐसे उपायों की आवश्यकता होती है जो देश की सरकार द्वारा सुनिश्चित किये जाते हैं।

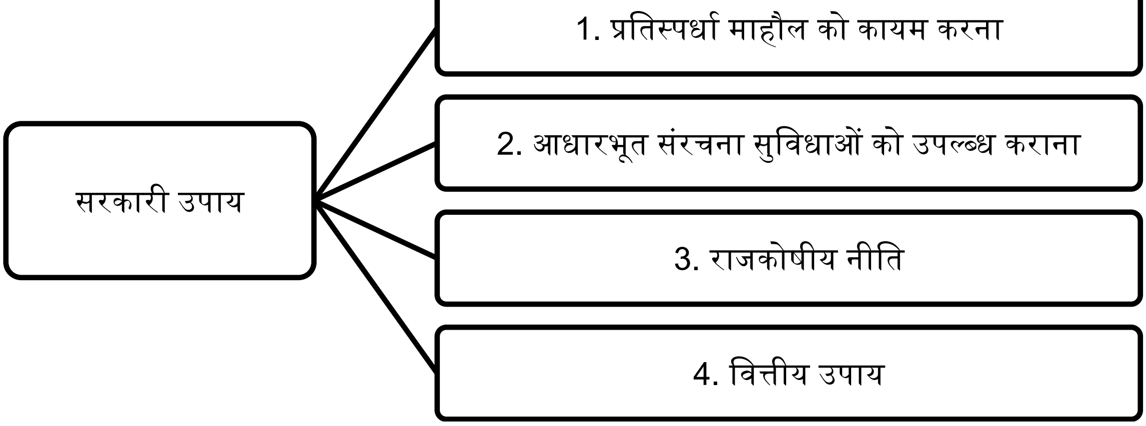

ये उपाय निम्नलिखित रुप में हो सकते हैं-

1. **प्रतिस्पर्धा माहौल को कायम करना -** औद्योगिक जगत में व्यावसायिक इकाईयों के अल्प क्षमता के उत्पादन एवं उत्पादकता के प्रतिकूल स्तर के लिए एक उत्तरदायी कारक यह हो सकता है कि

बाजार में माँग की दशाओं में तथा कच्चे माल की आपूर्ति में उतार-चढ़ाव हो सकता है। यह उतार-चढ़ाव होने का एक कारण बाजार में एकाधिकारी शक्तियों का विद्यमान होना हो सकता है क्योंकि ऐसी परिस्थिति में कुछ इकाईयां बाजार में वस्तुओं की माँग में कृत्रिम रुप से उतार-चढ़ाव उत्पन्न कर सकती हैं तथा कच्चे माल के आपूर्ति में अवरोध उत्पन्न कर सकती हैं। अत: ऐसी परिस्थिति में आवश्यक होता है कि सरकार अपने नीतियों के माध्यम से बाजार में एकाधिकारी शक्तियों पर अंकुश लगाये तथा प्रतिस्पर्धा के माहौल को कायम करे।

2. **आधारभूत संरचना सुविधाओं को उपल्ब्ध कराना -** एक देश में उपलब्ध अधो-संरचना तथा आधारभूत सुविधाओं की स्थिति भी व्यावसायिक इकाईयों के कुशलता एवं उत्पादकता को प्रभावित कर सकती हैं। यदि किसी देश में आधारभूत संरचना सुविधाओं जैसे- सड़क एवं रेल परिवहन, बन्दरगाह, इत्यादि सुविधाओं की स्थिति ठीक नहीं है तो इससे व्यावसायिक इकाईयों को अपने उत्पाद को बाजार में आपूर्ति करने तथा कच्चे माल को प्राप्त करने में कठिनाई हो सकती है। इसके परिणामस्वरुप इन इकाईयों की क्षमता उपयोग तथा उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। ठीक इसी प्रकार यदि कुछ अन्य आधारभूत सुविधाओं जैसे-विद्युत आपूर्ति, संचार इत्यादि की स्थिति ठीक नहीं है तो इसके कारण भी व्यावसायिक इकाईयों की क्षमता उपयोग तथा उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। सरकार इस प्रकार की सुविधाओं को विकसित करके क्षमता उपयोग एवं उत्पादकता के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर सकती है।
3. **राजकोषीय नीति -** कुछ परिस्थितियां ऐसी होती हैं जिनमें क्षमता उपयोग तथा उत्पादकता में सुधार के लिए सरकार के राजकोषीय नीति अर्थात् करारोपण तथा अनुदान की आवश्यकता होती है। जैसे- लघु उद्योग की इकाईयां अथवा रुग्ण इकाईयों को सरकार करों में रियायत अथवा अनुदान प्रदान करके इन इकाईयों के संचालन को प्रोत्साहित कर सकती है और इसके फलस्वरुप इन इकाईयों के क्षमता उपयोग तथा उत्पादकता में सुधार हो सकता है।
4. **वित्तीय उपाय -** व्यावसायिक इकाईयां कभी-कभी वित्तीय संसाधनों के अभाव में भी अल्प उत्पादन क्षमता अथवा निम्न उत्पादकता का शिकार हो जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में सरकार अपने नीतियों के माध्यम से परोक्ष रुप में इन इकाईयों के क्षमता उपयोग तथा उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव भी उत्पन्न कर सकती है। उदाहरण के लिए सरकार वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से व्यावसायिक इकाईयों को तकनीकी उन्नयन, आधुनिकीकरण इत्यादि के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन उपलब्ध करा कर इन इकाईयों के उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव उत्पन्न कर सकती है।

13.4 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. प्रबन्धकीय उपाय संसाधनों के अपव्यय में सहायक होता है।
2. दोषपूर्ण प्लाण्ट एवं मशीनरी उत्पादकता को प्रतिकूल रुप से प्रभावित करती है।
3. श्रमिकों के लिए शिक्षण एवं प्रशिक्षण की सुविधा उत्पादकता सुधार में सहायक होती है।
4. सरकार की नीतियां व्यावसायिक इकायों को वित्तीय संसाधन उपलब्ध करने में सहायक हो सकती हैं।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. औद्योगिक एकीकरण उत्पादकता पर..............प्रभाव उत्पन्न करती है।

(अनुकूल **या** प्रतिकूल)

2. उत्पादन प्रक्रिया का सरलीकरण लागत में..............उत्पन्न करता है।

(कमी **या** वृद्धि)

3. करारोपण में..............से उत्पादकता में सुधार होता है ।

(रियायत **या** वृद्धि)

4. श्रमिकों के वेतन में वृद्धि उत्पादकता सुधार में..............हो सकती है।

(सहायक **या** अवरोधक)

13.5 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत इस बात को स्पष्ट किया गया कि एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता में सुधार एवं क्षमता उन्नयन के लिए कौन-कौन से उपाय आवश्यक होते हैं। एक व्यावसायिक इकाई के क्षमता उन्नयन एवं उत्पादकता में सुधार के लिए आवश्यक उपायों को चार श्रेणियों में रखकर समझा जा सकता है- प्रबन्धकीय उपाय, तकनीकी उपाय, संस्थागत उपाय तथा सरकारी उपाय। प्रबन्धकीय उपाय का सम्बन्ध ऐसे उपायों से होता है जिनके माध्यम से व्यावसायिक इकाई अपने प्रबन्धन कुशलता में वृद्धि करके उतपादकता में सुधार कर सकती है। इसके लिए जो उपाय आवश्यक होते हैं उनमें से प्रमुख है- मानव संसाधन का प्रबन्धन, विपणन क्रिया प्रबन्धन, वित्तीय प्रबन्धन तथा सूचना प्रबन्धन। तकनीकी उपायों का अभिप्राय उन उपायों से होता है जिसके माध्यम से व्यावसायिक इकाई अपने उत्पादन प्रक्रिया में वैज्ञानिक विधियों एवं उन्नत उत्पादन तकनीक का समावेश करके उत्पादकता में निरन्तर सुधार कर सकती है।

एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता में सुधार एवं क्षमता उन्नयन के लिए प्रबन्धकीय एवं तकनीकी उपाय के साथ-साथ कुछ संस्थागत उपाय जैसे- श्रमिकों के कार्य करने की दशाओं में सुधार, श्रमिकों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था, सौहार्दपूर्ण औद्योगिक सम्बन्ध तथा श्रमिको को प्रोत्साहन की सुविधा इत्यादि भी आवश्यक होते हैं। सरकारी उपाय का सम्बन्ध उन उपायों से होता है जो औद्योगिक जगत के अन्तर्गत एक अनुकूल औद्योगिक वातावरण के निर्माण के लिए आवश्यक होते हैं। इन उपायों के अन्तर्गत जो उपाय आवश्यक होते हैं वे इस प्रकार हैं- औद्योगिक जगत में प्रतिस्पर्धा के माहौल को कायम करना, आधारभूत संरचना एवं सुविधाओं को उपलब्ध कराना, राजकोषीय नीति के माध्यम से औद्योगिक रुप से कमजोर व्यावसायिक इकाईयों प्रोत्साहन देना तथा वित्तीय उपाय के द्वारा तकनीकी उन्नयन, आधुनिकीकरण इत्यादि के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराना।

13.6 शब्दावली

- **क्षमता उन्नयन -** इस शब्द का अभिप्राय उत्पादन क्षमता एवं स्तर में सुधार से होता है। क्षमता उन्नयन का अर्थ है, विकास और दक्षता के लिए आवश्यक, अधिक कार्य को बेहतर ढंग से या तेज़ी से संभालने के लिए प्रणालियों, उपकरणों या लोगों की क्षमता में वृद्धि करना। इसमें अक्सर तकनीकी उन्नयन शामिल होते हैं, जैसे कि निष्क्रिय सर्वर कोर को सक्रिय करना, मशीनरी (जैसे क्रेन) को बेहतर बनाना, आईटी अवसंरचना में सुधार करना, या किसी संगठन के भीतर कौशल का निर्माण करना ताकि पूरी तरह से बदले बिना, उभरती हुई माँगों को पूरा किया जा सके। यह परिचालनों का विस्तार करने, लागत कम करने और प्रतिस्पर्धी बने रहने की एक रणनीतिक प्रक्रिया है।
- **समावेश -** इस शब्द का अभिप्राय शामिल करने से होता है। समावेशन का अर्थ है ऐसे वातावरण का निर्माण करना जहाँ हर कोई सम्मानित, मूल्यवान महसूस करे और उसे, पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना, भागीदारी के समान अवसर प्राप्त हों। इसके लिए बाधाओं को दूर करना और यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि विविध आवाज़ों को सुना जाए और निर्णय लेने में उन्हें शामिल किया जाए। यह केवल विविधता (अलग-अलग लोगों का होना) से आगे बढ़कर, सक्रिय रूप से यह सुनिश्चित करना है कि वे लोग महसूस करें कि वे संबंधित हैं, पूर्ण योगदान दे सकते हैं, और संसाधनों तक उनकी पहुँच हो, जिससे सभी व्यक्तियों में सुरक्षा और सशक्तिकरण की भावना का विकास हो।
- **यन्त्रीकरण -** उत्पादन प्रक्रिया में मशीनों तथा यन्त्रों का प्रयोग यन्त्रीकरण कहलाता है। उत्पादन में मशीनीकरण, इंजन या बिजली से चलने वाली मशीनों का उपयोग है जो शारीरिक श्रम का स्थान लेती हैं। यह विनिर्माण और कृषि जैसे क्षेत्रों में कार्यों को तेज़ी से, अधिक निरंतरता से और कम मानवीय प्रयास से पूरा करके दक्षता, उत्पादन और गुणवत्ता में नाटकीय रूप से वृद्धि करता है। यह

हाथ से चलने वाले तरीकों से संचालन को ऊर्जा-चालित प्रक्रियाओं में बदल देता है, जिसमें साधारण पावर ड्रिल से लेकर जटिल ट्रैक्टर तक के उपकरण शामिल होते हैं, जिससे उत्पादकता बढ़ती है, लागत बचत होती है और आजीविका में सुधार होता है, हालाँकि इसके लिए विभिन्न श्रम आवश्यकताओं के अनुसार सावधानीपूर्वक अनुकूलन की आवश्यकता होती है।

- **औद्योगिक एकीकरण-** औद्योगिक एकीकरण, विभिन्न उद्योगों, तकनीकों या आपूर्ति श्रृंखलाओं के विलय की प्रक्रिया है जिससे तालमेल बनाया जा सके, दक्षता बढ़ाई जा सके और नए व्यावसायिक मॉडल विकसित किए जा सकें। यह प्रक्रिया अक्सर डिजिटलीकरण और क्षेत्रीय सीमाओं के धुंधलेपन से प्रेरित होती है, जिससे नए संगठनात्मक स्वरूप, संसाधनों का बेहतर उपयोग और उच्च-गुणवत्ता वाले आउटपुट प्राप्त होते हैं, जैसे सेवाओं को विनिर्माण के साथ जोड़ना या डिजिटल और भौतिक अर्थव्यवस्थाओं को जोड़ना। इसमें पारंपरिक अवरोधों को तोड़ने और कृषि से लेकर उन्नत विनिर्माण तक एकीकृत मूल्य श्रृंखलाएँ बनाने के लिए सहयोग और कभी-कभी प्रतिस्पर्धा शामिल होती है। ।
- **औद्योगिक सम्बन्ध** - औद्योगिक संबंध नियोक्ताओं, कर्मचारियों, यूनियनों और सरकार के बीच अंतःक्रियाओं का अध्ययन करने वाला क्षेत्र है, जो वेतन, शर्तें और अधिकार जैसी कार्य शर्तें निर्धारित करने और उत्पादक वातावरण के लिए सामूहिक सौदेबाजी और विवाद समाधान के माध्यम से विवादों का प्रबंधन करने पर केंद्रित है। इसमें बातचीत, शिकायतों का समाधान, निष्पक्ष व्यवहार सुनिश्चित करना, व्यावसायिक आवश्यकताओं और कर्मचारियों की भलाई के बीच संतुलन बनाना और कार्यस्थल पर सहयोग और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना जैसी प्रक्रियाएँ शामिल हैं।

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. अनुकूल 2. कमी 3. रियायत 4. सहायक

13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- S. Elion, B. Gold and J. Soesan (1976): ***Applied Productivity Analysis for Industry***, Pergamon Press, Oxford.
- H. Speight (1970): ***Economics and Industrial Efficiency***, Macmillan, London.

13.9 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Barthwal, R.R. (2005): ***Industrial Economics – An Introductory Textbook***, New Age International Publishers, New Delhi.
- Sharma, A.K. (2009): ***Industrial Economics***, Anmol Publishing House, New Delhi.
- Singh, A. and A.N. Sadhu (1988): ***Industrial Economics***, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- कुलश्रेष्ठ, आर. एस. (2010) ***औद्योगिक अर्थशास्त्र***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता में सुधार के लिए आवश्यक तकनीकी उपायों को स्पष्ट कीजिए।
2. एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादकता में सुधार के लिए आवश्यक प्रबन्धकीय एवं संस्थागत उपायों की विवेचना कीजिए।
3. उत्पादकता एवं क्षमता उन्नयन में सुधार के लिए आवश्यक समस्त उपायों की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

इकाई-14 औद्योगिक वित्त

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 औद्योगिक वित्त का आशय
    14.3.1. वित्तीय आवश्यकता के प्रकार
    14.3.2. पूंजी जुटाने की विधियां
14.4 औद्योगिक वित्त का क्षेत्र
14.5 विनियामक ढांचा, नीतिगत उपाय और पहलें
14.6 औद्योगिक वित्त का महत्व
14.7 अभ्यास प्रश्न
14.8 सारांश
14.9 शब्दावली
14.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.12 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
14.13 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

औद्योगिक वित्त, यद्यपि वित्तीय प्रणाली का एक हिस्सा है लेकिन इसकी प्रकृति सामान्य और वाणिज्यिक वित्तपोषण से काफी भिन्न है। इसका क्षेत्र भी वाणिज्यिक अधिकोषण (Commercial Banking) की अपेक्षा अधिक व्यापक है। इस अध्याय में आप जान सकेंगे कि औद्योगिक वित्त पूँजी व मुद्रा बाजार के विभिन्न घटकों से किस प्रकार जुड़ा हुआ है तथा देश में औद्योगिक वित्त का सामान्य स्वरूप क्या रहा है?

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारत की गतिशील अर्थव्यवस्था में उद्योगों के विकास, संवर्धन व संचालन में औद्योगिक वित्त की भूमिका को भली-भांति समझ सकेंगे।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ✓ जान सकेंगे कि औद्योगिक वित्त की आवश्यकता कितने प्रकार की होती है और इसकी व्यवस्था कैसे की जाती है।
- ✓ समझ सकेंगे कि औद्योगिक वित्त में किन बातों को सम्मिलित किया जाता है।
- ✓ अर्थव्यवस्था में इसकी प्रगति, बाजारों के उतार-चढ़ाव से इसके गत्यात्मक सम्बन्ध तथा औद्योगिक व आर्थिक उन्नति में इनके योगदान का आकलन कर सकेंगे।

14.3 औद्योगिक वित्त का आशय

वित्तीय क्षेत्र देश के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस क्षेत्र का मुख्य घटक वित्तीय संस्थाएं है जो निवल बचतकर्ताओं से निवल उधारकर्ताओं अर्थात् उन लोगों से जो अपनी आमदनी से कम खर्च करते हैं, उन लोगों को जो अपनी आमदनी से अधिक खर्च करते हैं, को संसाधनों के अंतरण की एक सरणी (स्थानांतरण का मार्ग) का काम करता है। वित्तीय संस्थाएं परम्परागत रूप से, अर्थव्यवस्था के उत्पादक प्रयासों की दीर्घावधि कोषों का एक प्रमुख स्रोत रही हैं। ये संस्थाएं औद्योगिक व वाणिज्यिक क्षेत्र की विभिन्न जरुरतों को पूरा करने के लिए कई प्रकार के वित्तीय उत्पाद और सेवाएं प्रदान करती हैं। इसके अलावा, दो नए उद्यमियों, लघु एवं मध्यम फर्मों तथा पिछड़े इलाकों में स्थापित उद्योगों को सहायता प्रदान करती हैं। इस प्रकार इन्होंने व्यापक औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देते हुए क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने में भी मदद की है।

धन कमाने के लिए धन की आवश्यकता होती हैं। अच्छी वित्तशक्ति, औद्योगिक साहस या उद्यमिता की आवश्यक शर्तों में सें एक है। वित्तपोषण उद्योग को जीवन रक्त प्रदान करने के सदृश है। औद्योगिक प्रतिष्ठान को अपना कार्य आरम्भ करने, अपना कार्य जारी रखने और इसके विस्तार एवं विकास सभी चरणों में वित्तीय साधनों की आवश्यकता होती है। सटीक दृष्टि, सुदृढ़ योजना व रणनीति, कुशल संचालन व उत्पादन और विपणन ये सभी वित्त साधनों के तरल प्रवाह पर निर्भर करते हैं। इसलिए वित्तीय योजना को इस प्रकार तैयार करने की आवश्यकता है जिसमें वित्त साधन की आवश्यकता, वित्त जुटाने के स्रोत और कोषों का अनुप्रयोग निर्दिष्ट होता है। उद्योग शुरू करने के लिए वित्तीय योजना, उद्योग की विभिन्न आवश्यकताओं के लिए उद्यमी व फर्म द्वारा अपेक्षित पूंजी की कुल राशि के अनुमान से शुरू होती है।

उद्यम की वित्तीय योजनाएं निम्नलिखित को ध्यान में रखकर तैयार की जानी चाहिए:-

1.कम्पनी का वित्तीय लक्ष्य
2.उद्यम की सुविचारित योजनाएं
3.उद्यम की छवि और प्रतिष्ठा
4.विकास और विस्तार योजनाएं
5.पूंजी बाजार की दशा एवं दिशा
6.सरकारी विनियमन

(http://business.gov.in/starting_business पर उपलब्ध विवरण पर आधृत व अनूदित/परिवर्धित/ परिवर्तित)

14.3.1. वित्तीय आवश्यकता के प्रकार

आप इस बात से अवगत होंगे कि उद्योग की वित्तीय आवश्यकताएं स्थायित्व के विस्तार के आधार पर दो वर्गों में वर्गीकृत की जाती हैं:-

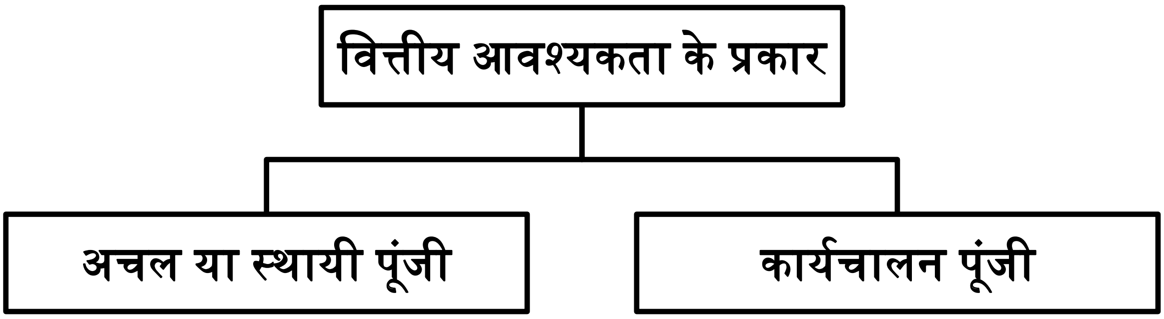

अ- अचल या स्थायी पूंजी (Fixed Capital) - अचल या टिकाऊ परिसम्पत्तियों की खरीद के लिए आवश्यक पूंजी को अचल पूंजी या दीर्घावधिक पूंजी के रूप में जाना जाता है। अचल या टिकाऊ परिसम्पत्तियों में भूमि, भवन, मशीनरी, भण्डार गृह एवं अन्य शामिल हैं। व्यापार की अपेक्षा औद्योगिक प्रतिष्ठानों को ऐसी परिसम्पत्तियों में अधिक आरम्भिक निवेश की आवश्यकता होती है। ये परिसम्पत्तियां आय अर्जन का आधार बनती हैं और लम्बे समय तक फायदा पहुँचाती है। एक बार अचल परिसम्पत्तियों पर खर्च किए गए कोषों को वापस नहीं लिया जाता और दूसरे पर नहीं लगाया जा सकता है। समुचित उपयोग न होने पर ऐसा निवेश प्रतिष्ठान पर मृतभार (deadweight) या डूबीलागत (sunk cost) ही साबित होता है।

ब-कार्यचालन पूंजी (Working Capital) - अल्पावधिक परिसम्पत्तियों या वर्तमान परिसम्पत्तियों पर निवेशित धन को कार्यचालन या कार्यशील या चालू पूंजी के रूप में जाना जाता है। इसमें कच्ची सामग्री की खरीद, मजदूरी और वेतन का भुगतान, किराया, ईंधन, बिजली और पानी, मशीनरी की मरम्मत और रख-रखाव, विज्ञापन आदि शामिल है। इसके अतिरिक्त ऋण पर माल की बिक्री से ऋणदाता की शेष चारिता (देनदारी शेष) और प्राप्य हुंडियां मिलती है। इन सभी प्रयोजनों के लिए वित्त की आवश्यकता अल्प-अन्तरालों पर, दिन-प्रतिदिन, बारम्बार उत्पन्न होती है। कार्यशील पूंजी परिचालित पूंजी अथवा घूर्णन पूंजी (Circulating capital or Revolving capital) के रूप में भी ज्ञात है क्योंकि ऐसी परिसम्पत्तियों में निवेश किए गए धन की भरपाई नकद (cash) का भुगतान करके की जा सकती है तथा उसे पुन: सम्पत्तियों में पुननिर्वेशित कर दिया जाता है। अपेक्षित कार्यशील पूंजी की राशि मुख्यतया व्यवसाय की प्रकृति, विनिर्माण प्रक्रिया को पूरा करने के लिए अपेक्षित समय तथा उन शर्तों पर निर्भर करती है जिन पर माल का क्रय और विक्रय किया जाता है।

पहले की इकाईयों में आपने यह भी पढ़ा होगा कि उपयोग की अवधि के आधार पर उद्योग की वित्तीय आवश्यकता तीन प्रकार की होती है:-

1. **अल्पावधि पूंजी -** अल्पावधि पूंजी की आवश्यकता अपेक्षाकृत अल्प अवधि के लिए होती हैं अर्थात एक वर्ष से कम। इसमें वर्तमान परिसम्पत्तियों का वित्तपोषण और दैनंदिन व्ययों को पूरा करना शामिल है। अल्पाअवधि के वित्त के महत्वपूर्ण स्रोत है: बैंक, व्यापार ऋण व किस्त ऋण।
2. **मध्यावधि पूंजी -** मध्यावधिक पूंजी की आवश्यकता 1 से 5 वर्ष की अवधि के लिए होती है। इसमें कुछ कार्यकलापों का वित्त पोषण जैसाकि भवन का पुनरूद्धार, मशीनरी का आधुनिकीकरण, विज्ञापन पर भारी व्यय आदि शामिल है। मध्यावधि वित्त के मुख्य स्रोत हैं:- शेयरों का निर्गम, डिबेन्चरों का निर्गम, बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं से उधार एवं लाभों का पुनर्निवेश।

3. दीर्घकालीन पूंजी - दीर्घकालीन पूंजी की ज्यादा लम्बी अवधि अर्थात पांच वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए आवश्यक होती है। निर्धारित परिसम्पत्ति तथा कार्यशील पूंजी के स्थायी भाग का इसके द्वारा वित्तपोषण किया जाता है। लम्बी अवधि के वित्त के महत्वपूर्ण स्रोत है: शेयर निर्गम, डिबेन्चर का निर्गम, वित्तीय संस्थाओं से ऋण और लाभों का पुनर्निवेश।

(http://business.gov.in/starting_business पर उपलब्ध विवरण पर आधृत व अनूदित/परिवर्धित/ परिवर्तित)

14.3.2. पूंजी जुटाने की विधियां

औद्योगिक प्रतिष्ठान विभिन्न प्रयोजनों के लिए पूँजी जुटाते हैं जो समय अवधि पर निर्भर करता है जिसकी अवधि बहुत छोटी से बहुत लम्बी तक हो सकती है। कम्पनी की वित्तीय आवश्यकताओं की कुल राशि व्यवसाय की प्रकृति और आकार पर निर्भर करती है। पूँजी जुटाने की संभावना उन स्रोतों पर निर्भर है जहां से पूँजी उपलब्ध होती है। एकल स्वामित्व और साझेदारी स्वरूप के व्यापार के पास कोषों को जुटाने के सीमित अवसर होते हैं। वे इन साधनों द्वारा अपने व्यवसाय का वित्त पोषण कर सकते हैं, अपनी स्वयं की बचतों का निवेश व पुनर्निवेश (Ploughing Back of Profits), मित्रों और रिश्तेदारों से ऋण, वाणिज्यिक बैंकों से अग्रिम की व्यवस्था करना व वित्त कम्पनियों से उधार। किन्तु कम्पनी असंख्य तरीके से वित्त जुटा सकती है।

दीर्घावधिक और मध्यावधिक पूंजी जुटाने के बारे उनके पास अनेक विकल्प हैं जैसे:

1. शेयर निर्गम करना (Issue of Shares)
2. ऋण-पत्रों (debentures) का निर्गम
3. वित्तीय संस्थाओं से ऋण
4. वाणिज्यिक बैंकों से ऋण
5. सार्वजनिक जमा
6. लाभों का पुनर्निवेश

अल्पावधिक पूंजी वित्तपोषित करने के लिए कम्पनी निम्नलिखित प्रविधियों का उपयोग करती है:-

1. व्यापार ऋण
2. फैक्टरिंग
3. विनियम विपत्रों की कटौती (Discounting Bills of Exchange)
4. बैंक अधिविकर्ष (overdraft) एवं नकदी ऋण

(http://business.gov.in/starting_business पर उपलब्ध विवरण पर आधृत व अनूदित/परिवर्धित/ परिवर्तित)

14.4 औद्योगिक वित्त का क्षेत्र

जैसा कि आपको पहले ही बताया जा चुका है कि उद्योगों के स्थापन-संचालन में दीर्घकालिक के साथ ही अल्पकालिक वित्त की भी आवश्यकता होती है। अत: औद्योगिक वित्त के प्रदायन में समूची वित्त व्यवस्था निहित है जिसमें पूंजी बाजार व मुद्रा बाजार दोनो शामिल हैं। *पिछले दो दशकों में वित्त व्यवस्था में पूरी कायापलट हो चुकी है। पहले विकास वित्त प्राय: उद्योगों के लिए वित्त का साधन था जबकि वाणिज्यिक वित्त प्रधानत: व्यापारिक क्रियाओं के लिए। किन्तु 1991 से आर्थिक सुधारों के प्रथम दौर तथा 1998 से वित्तीय सुधारों के (आर्थिक सुधारों के दूसरे) दौर में पूंजी बाजार व मुद्रा बाजार तथा विकास वित्त व वाणिज्यिक वित्त के बीच की खिडकियां ही नहीं खोली गयीं बल्कि दीवारें भी प्राय: गिरायी जा चुकी हैं।*

आपको यह बात रोचक लगेगी कि SIDBI, IFCI Ltd व SFCs को छोड़कर शेष सभी विकास बैंक यथा: IDBI Bank, ICICI Bank, Axix (earlier UTI) Bank आदि अब यूनिवर्सल बैंक बनकर प्रधानत: वाणिज्यिक वित्त प्रदान कर रहे हैं जबकि अनेक व्यापारिक बैंक यथा एस.बी.आई., केनरा बैंक आदि स्वयं प्रत्यक्ष या अपनी सहायक संस्थाओं यथा एस.बी.आई. कैपीटल मार्केट्स लिमिटेड (SBI Capital

Markets Limited), कैनबैंक वेंचर कैपीटल मार्केट्स लिमिटेड (Canbank Venture Capital Fund Limited- CVCFL) आदि के माध्यम से उद्योगों को दीर्घकालिक एवं विकास वित्त भी उपलब्ध करा रहे हैं। फिर आज के गतिशील वैश्विक बाजारों में इन संस्थाओं की रणनीति, संरचना व कार्यप्रणाली में निरन्तर बदलाव व लोचशीलता आ रही है। अत: अब वित्त व्यवस्था का स्वरूप पहले की तरह सरल व स्पष्ट नहीं रह गया है।

भारतीय वित्तीय प्रणाली का सर्वाधिक महत्वपूर्ण खण्ड पूंजी बाजार है। यह कंपनियों को उपलब्ध एक ऐसा बाजार है जो उनकी दीर्घावधिक कोषों की जरुरतों को पूरा करता है। यह धन उधार लेने और देने की सभी सुविधाओं और संस्थागत व्यवस्थाओं से संबंधित है। अन्य शब्दों में, यह दीर्घावधि निवेश करने के प्रयोजनों के लिए मुद्रा पूंजी जुटाने के कार्य से जुड़ा है। इस बाजार में कई व्यक्ति और संस्थाएं (सरकार सहित) शामिल हैं जो दीर्घावधि पूंजी की मांग और आपूर्ति को सारणीबद्ध करते हैं और उसकी मांग करते हैं। दीर्घावधि पूंजी की मांग मुख्य रूप से निजी क्षेत्र के विनिर्माण उद्योगों, कृषि क्षेत्र, व्यापार और सरकारी अभिकारणों (agencies) की तरफ से होती है। जबकि पूंजी बाजार के लिए पूँजी की आपूर्ति अधिकतर व्यक्तिगत और कम्पनी क्षेत्र बचतों (Corporate Savings), बैंकों, बीमा कंपनियों, विशिष्ट वित्त पोषण अभिकारणों (agencies) और सरकार के अधिशेषों से होती है।

भारतीय पूंजी बाजार स्थूल रूप से उत्कृष्ट बाजार (Gilt Edged) और औद्योगिक प्रतिभूति बाजार में विभाजित है-

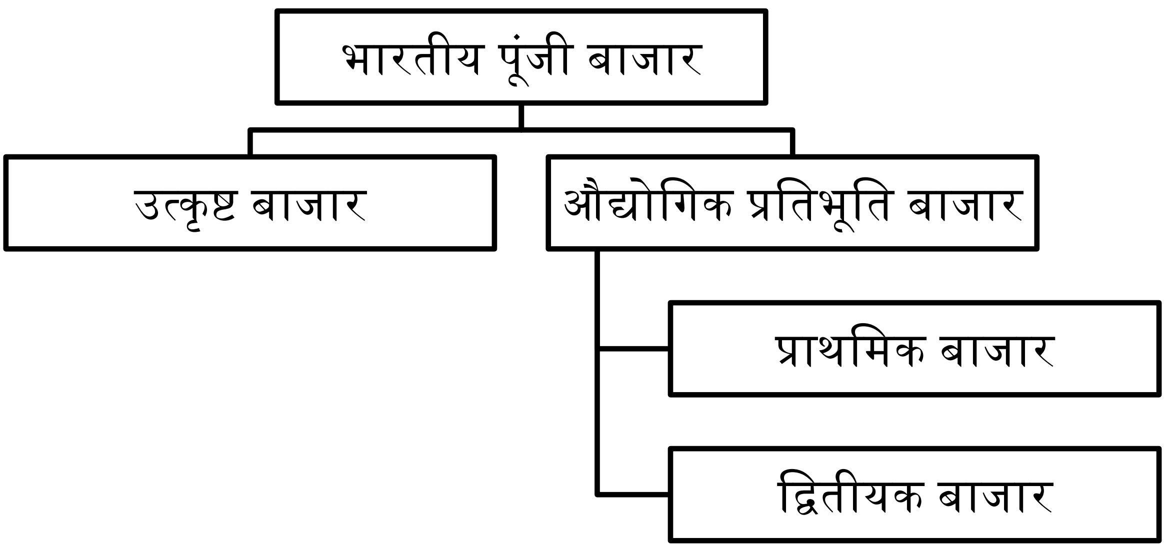

1. **उत्कृष्ट बाजार -** सरकार और अर्द्ध-सरकारी प्रतिभूतियों से संबंधित है जिसे भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) का समर्थन प्राप्त है। सरकारी प्रतिभूतियां सरकार द्वारा जारी की गई बिक्री योग्य ऋण लिखते (instruments) हैं, जो इसकी वित्तीय जरुरतों को पूरा करती हैं। 'उत्कृष्ट' शब्द का अर्थ है 'सर्वोत्तम गुणवत्ता'। इसी कारण सरकार व भारतीय रिजर्व बैंक की प्रत्याभूति (guarantee) के चलते इन प्रतिभूतियों को भुगतान/शोधन का कोई जोखिम नहीं उठाना पड़ता और ये प्रतिभूतियाँ पर्याप्त मात्रा में तरलता प्रदान करती हैं (क्योंकि इसे बाजार में चालू मूल्यों पर बड़ी आसानी से बेचा जा सकता है।))। भारतीय रिजर्व बैंक के खुले बाजार संचालन इन प्रतिभूतियों में किए जाते हैं।
2. **औद्योगिक प्रतिभूति बाजार** - ऐसा बाजार है जो कंपनियों की समता अंशों (equity shares) और ऋण-पत्रों (debentures) का लेन-देन करता है। इसे आगे प्राथमिक बाजार और द्वितीयक बाजार में विभाजित किया जाता है।

   i. प्राथमिक बाजार (नया निर्गम बाजार) - यह बाजार नई प्रतिभूतियों अर्थात् ऐसी प्रतिभूतियां जो पहले उपलब्ध नहीं थी और निवेश करने वाली जनता को पहली बार पेश की गई हैं, उसका

लेन-देन करता है। यह बाजार की अंशों (shares) और ऋण-पत्रों (debentures) के रूप में नए सिरे से पूंजी जुटाने के लिए है। यह निर्गमकर्ता कम्पनी को नया उद्यम शुरू करने अथवा मौजूदा उद्यम का विस्तार करने अथवा उसमें विविधता लाने के लिए अतिरिक्त धनराशि प्रदान करता है और इस प्रकार कम्पनी के वित्त पोषण में इसका योगदान प्रत्यक्ष है। कंपनियों द्वारा नई पेशकश या तो प्रारम्भिक सार्वजनिक पेशकश (initial public offering - IPO) अथवा अधिकारिक निर्गमों (rights issue) के रूप में की जाती हैं।

ii. द्वितीयक बाजार अथवा शेयर बाजार (पुराना निर्गम बाजार अथवा शेयर बाजार) - यह वर्तमान कंपनियों की प्रतिभूतियों की क्रय एवं विक्रय का बाजार है। इसके तहत प्रतिभूतियों का लेन-देन प्राथमिक बाजार में जनता को पहले इनकी पेशकश करने अथवा शेयर बाजार में सूचीबद्ध करने के बाद ही किया जाता है। यह एक संवेदी बैरोमीटर (sensory barometer) है और विभिन्न प्रतिभूतियों के मूल्यों में उतार-चढ़ाव के माध्यम से अर्थव्यवस्था की प्रवृत्तियों को परिलक्षित करता है। इसे "व्यक्तियों के एक निकाय, चाहे निगमित हो अथवा नहीं, जो प्रतिभूतियों की क्रय एवं विक्रय और लेन-देन के व्यवसाय में सहायता देने, उसे विनियमित अथवा नियमित करने के लिए गठित किया गया है" के रूप में परिभाषित किया गया है। शेयर बाजार में सूचीबद्धता शेयर धारकों को शेयर की कीमतों में घट-बढ़ की कारगर ढंग से निगरानी करने में समर्थ बनाती है। इससे उन्हें इस संबंध में विवेकपूर्ण निर्णय लेने में मदद मिलती है कि क्या वे अपनी धारिताओं को बनाए रखें अथवा बेच दे अथवा आगे और भी संचित कर लें। लेकिन शेयर बाजार प्रतिभूतियों को सूचीबद्ध कराने के लिए निर्गमकर्ता कंपनियों को कई निर्धारित मानदण्डों और प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है।

द्वितीयक बाजार अथवा शेयर बाजार सीधे तौर पर तो उद्योगों को वित्त प्रदान नहीं करता किन्तु तरलता, अनुशासन, सुरक्षा तथा पूँजी व स्टॉक वृद्वि के द्वारा कम्पनियों में निवेश व पूँजी निर्माण के प्रति जनता व संस्थाओं में विश्वास व आकर्षण उत्पन्न करने का कार्य अद्वितीय व अनोखे ढंग से सम्पादित करता है।

इस प्रकार, पूंजी बाजार देश के आर्थिक व औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है जैसा कि यह वास्तविक बचतों की मात्रा बढ़ाता है; निवेश की जाने योग्य कोषों का उत्पादक प्रयासों में आबंटन बढ़ाकर निवेशों की क्षमता व उपयोगिता को बढ़ाता है और अर्थव्यवस्था में पूंजी की लागत को कम करता है।

(http://business.gov.in/starting_business पर उपलब्ध विवरण पर आधृत व अनूदित/परिवर्धित/परिवर्तित)

14.5 विनियामक ढांचा, नीतिगत उपाय और पहलें

भारत में, पूंजी बाजार आर्थिक कार्य विभाग वित्त मंत्रालय के पूंजी बाजार प्रभाग द्वारा विनियमित किया जाता है। यह प्रभाग प्रतिभूति बाजरों (अर्थात् शेयर, ऋण और व्युत्पन्न) की सुव्यवस्थित संवृद्धि और विकास और साथ ही साथ निवेशकों के हितों की सुरक्षा से संबंधित नीतियां तैयार करने के लिए जिम्मेदार है। विशेष रूप से, यह निम्नलिखित के लिए जिम्मेदार है:

(क) प्रतिभूति बाजारों में संस्थागत सुधार

(ख) विनियामक और बाजार संस्थाओं की स्थापना

(ग) निवेशक सुरक्षा तंत्र को मजबूत बनाना

(घ) प्रतिभूति बाजारों के लिए सक्षम विधायी ढांचा प्रदान करना (जैसे कि भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 (भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) अधिनियम 1992), प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956 और निक्षेपागार (डिपाजिटरी) अधिनियम, 1996।) यह प्रभाग इन विधानों और इनके तहत बनाए गए नियमों को प्रशासित करता है।

भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी)) एक विनियामक प्राधिकरण है जिसकी स्थापना प्रतिभूतियों में निवेशकों के हितों की सुरक्षा करने एवं पूंजी बाजार के विकास को बढ़ावा देने के लिए भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) अधिनियम, 1992 के अधीन की गई थी। इसके कार्यों में शेयर बाजारों के व्यापार को विनियमित करनाय शेयर दलालों, शेयर हस्तांतरण एजेंटों, व्यापारी बैंकरों, अभिगोपकों (underwriters) आदि का निरीक्षण करना तथा प्रतिभूति बाजारों की अनुचित व्यापार प्रणालियों का निषेध करना शामिल है।

(http://business.gov.in/starting_business पर उपलब्ध विवरण पर आधृत व अनूदित/परिवर्धित/ परिवर्तित)

A. प्राथमिक बाजार के सम्बन्ध में -

पूंजी बाजार के प्राथमिक खंड में वित्तीय और विनियामक सुधार करने के लिए सरकार ने, समय-समय पर, कई पहलें शुरू की हैं। मुख्य तौर पर इन उपायों का उद्देश्य देश के पूंजी बाजार में निवेशकों (घरेलू और विदेशी दोनों) का विश्वास कायम रखना है।

1. वर्ष 2006-07 में प्राथमिक बाजार में भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने भारत में **जमाकर्ताओं को रसीदें** जारी करने की इच्छुक कंपनियों के प्रकटीकरणों और अन्य संबंधित अपेक्षाओं को अधिसूचित किया । इन्हें यह अधिदेश (mandate) दिया गया किः-
   (क) निर्गमकर्ता अपने देश में सूचीबद्ध होना चाहिए,
   (ख) यह किसी भी विनियामक निकाय द्वारा वर्जित नहीं किया गया होना चाहिए और
   (ग) उनका प्रतिभूति बाजार विनियमों का अनुपालन करने का अच्छा ट्रैक रिकॉर्ड होना चाहिए।
2. निरन्तर सूचीबद्ध रहने की एक शर्त के तौर पर सूचीबद्ध कंपनियों को, जारी किए गए कुल शेयरों के 25 प्रतिशत की सार्वजनिक शेयरधारिता न्यूनतम स्तर पर बनाए रखनी होगी। इसके कुछ अपवाद हैं:-
   (क) वे कंपनियां जिन्हें प्रतिभूति संविदा (विनियम) नियमावली, 1957 के अनुसार 10 प्रतिशत से अधिक लेकिन 25 प्रतिशत से कम का स्तर बनाए रखना अपेक्षित है और
   (ख) वे कंपनियां जिनके दो करोड़ अथवा इससे अधिक सूचीबद्ध शेयर और 1,000 करोड़ रुपए अथवा उससे अधिक बाजार पूंजी है।
3. भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने निर्दिष्ट किया है कि सूचीबद्ध कंपनियों द्वारा **शेयरधारण पैटर्न** तीन श्रेणियों के तहत बताया जाएगा अर्थात, 'शेयर प्रमोटर और प्रमोटर समूह द्वारा धारित', 'सार्वजनिक रूप धारित शेयर' और 'शेयर जो अभिरक्षकों द्वारा धारित हैं और जिनके प्रति निक्षेपागार प्राप्तियां जारी की गयी हैं'।
4. भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) द्वारा जारी किए गए दिशा-निर्देशों के अनुसार निर्गमकर्ताओं से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने **पेशकश प्रलेख** (offer document) के आवरण पृष्ठ पर इस बात का उल्लेख करें कि क्या उन्होंने रेटिंग एजेंसियों से आईपीओ (आरम्भिक सार्वजनिक पेशकश)-IPO (Initial Public Offering) ग्रेडिंग के लिए विकल्प दिया है। यदि निर्गमकर्ता ग्रेडिंग का विकल्प देते हैं तो उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे विवरण पत्रिका में अस्वीकृत ग्रेडों सहित ग्रेडों का प्रकटीकरण करें।
5. भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने **निधियां जुटाने की एक त्वरित और किफायती प्रणाली** जिसे **'पात्र संस्थागत नियोजन'** (Qualified Institutional Placement- QIP) कहा जाता है, की सुविधा प्रदान की है, जिसमें भारतीय प्रतिभूति बाजार से प्रतिभूतियों के निजी नियोजन अथवा पात्र संस्थागत विक्रेता के परिवर्तनीय बॉण्डों के जरिए निधियां जुटाई जाती हैं। क्यूआईपी तंत्र के जरिए अपरिवर्तनीय ऋण-पत्रों (debentures) की संयुक्त पेशकश करने के लिए सूचीबद्ध कम्पनी को अनुमति दी गयी। संयुक्त पेशकश के अनुसरण में जारी किए गए एनसीडी और वारंट अलग से सूचीबद्ध और व्यापारित किए जा सकते हैं। एनसीडी/वारंट के लेन-देन का न्यूनतम

संविदा-मूल्य 1 लाख रुपये रखा गया। 'पात्र संस्थागत नियोजन' (Qualified Institutional Placement- QIP) की इच्छुक सूचीबद्ध कम्पनियों के लिए पात्रता मानदंडों का विस्तार किया गया ताकि उन कम्पनियों को शामिल किया जा सके जो ऐसे स्टाक एक्सचेंज /एक्सचेंजों में एक वर्ष से अधिक सूचीबद्ध रह चुकी कम्पनियों के साथ विलय/विलय समाप्त करने/निष्पादित व्यवस्था की अनुमोदित योजनाओं के अनुसरण में पूर्ववर्ती एक वर्ष के दौरान सूचीबद्ध की गई हों।

6. भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने यह विनिर्दिष्ट किया है कि **आरम्भिक सार्वजनिक पेशकश** (IPOs) करने वाली गैर-सूचीबद्ध कंपनियों के निर्गम-पूर्व शेयरों पर 'निश्चित अवरुद्धता अवधि (Lock in Period)' न होने के लाभ को, जो इस समय उद्यम पूंजी कोषों (Venture Capital Funds - VCFs) या विदेशी उद्यम पूंजी निवेशकों (Foreign Venture Capital Investors FVCIs) द्वारा धारित शेयरों के लिए उपलब्ध हैं, निम्नलिखित तक सीमित कर दिया जाएगाः-
   (क) भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) को प्रारूप विवरणिका प्रस्तुत करने की तारीख को भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) में कम से कम एक वर्ष से पंजीकृत वीसीएफ अथवा एफवीसीआई के द्वारा धारित शेयर और
   (ख) भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) में पंजीकृत उद्यम पूंजी कोषों या विदेशी उद्यम पूंजी निवेशकों को भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) में प्रारूप विवरणिका प्रस्तुत करने की तारीख से पूर्व एक वर्ष की अवधि के दौरान परिवर्तनीय लिखतों के रूपातंरण (Conversion of convertible instruments) पर जारी शेयर।

7. भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने, प्रतिभूतियाँ निर्गमित करने की योजना बनाने वाली कंपनियों द्वारा **निर्गम-पूर्व प्रचार** को नियंत्रित करने के लिए 'प्रकटीकरण और निवेशक सुरक्षा संबंधी दिशा-निर्देशों' में संशोधन करके निर्गम-पूर्व प्रचार पर प्रतिबंध को लागू किया है। प्रतिबंधों में, अन्य बातों के साथ-साथ निर्गमकर्ता कम्पनी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस बात को सुनिश्चित करे कि इसका प्रचार विगत प्रणालियों के सुसंगत है, उसमें कोई ऐसे पूर्वानुमान या अनुमान या सूचना निहित नहीं है जो भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) में प्रस्तुत किए गए पेशकश प्रलेख से अलग हो।

8. 2008-09 में **सार्वजनिक निर्गमों में आवेदन करने की पूरक प्रक्रिया** अर्थात आईपीओ आवेदनों के लिए '**अवरुद्ध राशि द्वारा समर्थित आवेदन'** (applications supported by blocked amount -ASBA) प्रक्रिया की शुरूआत की गयी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रतिभूतियों का प्रामाणिक आवंटन होने पर ही निवेशकों के खातों से निधियां नामे (debit) डाली जा सकें और वह भी उस सीमा तक जितना उस निवेशक को आवंटन किया गया है। अवरुद्ध राशि द्वारा समर्थित आवेदन प्रक्रिया राइट्स निर्गमों पर भी लागू की गई। विद्यमान सार्वजनिक निर्गम सुविधा को अधिक दक्ष बनाने के अपने सतत् प्रयास में, भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने इस अवरुद्ध राशि द्वारा समर्थित आवेदन के चरण I के तदनंतर अवरुद्ध राशि द्वारा समर्थित आवेदन II की शुरूआत करने का निर्णय लिया गया है जो एकल भुगतान विकल्प वाले सभी सार्वजनिक निर्गमों तथा अधिकारिक निर्गमों (rights issue) पर प्रयोज्य होगा जो 01 जनवरी, 2010 को या उसके पश्चात खुल रहे हैं।

9. संशोधित, भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) (प्रकटन तथा निवेशक संरक्षण) दिशानिर्देश, 2000 में यह व्यवस्था की गई है कि **आरम्भिक सार्वजनिक पेशकश जारी करने वाली कोई असूचीबद्ध कम्पनी** आरम्भिक सार्वजनिक पेशकश के माध्यम से निर्गमित की जा रही प्रतिभूतियों को राष्ट्रव्यापी कारोबारी टर्मिनलों वाले कम से कम एक शेयर बाजार (Stock exchange) पर सूचीबद्ध करेगी। वही निर्माण के माध्यम से सार्वजनिक निर्गमों में एंकर निवेशक की संकल्पना की शुरूआत भी की गई है।

10. उन देशों, जिनके प्रतिभूति बाजार विनियामक **अंतर्राष्ट्रीय प्रतिभूति आयोग संगठन** (IOSCO) के बहुपक्षीय समझौता ज्ञापन (MMOU) के हस्ताक्षरकर्ता हैं, से निर्गमकर्ता कम्पनियों द्वारा जारी **भारतीय निक्षेपागार प्राप्तियों** (Indian sitory eipts-IDRs) **के लिए विद्यमान सूचीयन अपेक्षाएं** सरल बनाई गई। तदनुसार, ऐसी निर्गमकर्ता कम्पनियों के आई डी आर के सूचीयन के लिए सूचीयन अपेक्षाएं निहित करने वाला एक मॉडल सूचीयन करार विनिर्दिष्ट किया गया।
11. किसी सूचीबद्ध कम्पनी में शेयरधारिता पैटर्न के संबंध में प्रकटनों को बढ़ाने के लिए तथा साथ ही **सूचीबद्ध कम्पनी के अभिशासन** (Corporate governance) में **अधिक पारदर्शिता तथा कुशलता** लाने के लिए अदावित (unclaimed) शेयरों संबंधी कार्रवाई करने तथा सूचीबद्ध कम्पनियों द्वारा लाभांश की घोषणाएं करने और सभी कॉर्पोरेट कार्रवाईयों, जैसे सभी स्क्रिपों के लिए, चाहे वे डिमैट हों या वास्तविक, F&O खंड में हों या नहीं, लाभांश तथा बोनस हेतु नोटिस अवधि कम करने के लिए एक समान प्रक्रिया विधि शुरू करने का निर्णय लिया गया है। रिकार्ड तिथियों तथा बोर्ड की बैठकों के लिए नोटिस अवधि घटाकर क्रमश: सात एवं दो कार्य दिवस कर दी गई है। सूचीयन करार में शेयरों की प्रत्येक श्रेणी के लिए शेयरधारिता पैटर्न तथा कम्पनी में मतदान अधिकार पैटर्न का प्रकटन किया जाएगा। सूचीबद्ध कम्पनियों को पहले से ही सूचीबद्ध समता शेयरों संबंधी अधिकारों की तुलना में अधिक मतदान या लाभांश अधिकारों वाले शेयर जारी करने से प्रतिषिद्ध किया गया है।
12. घरेलू **उद्यम पूंजी कोषों तथा विदेशी उद्यम पूंजी निवेशकों** (FVICs) के बीच **समानता** लाने का निर्णय लिया गया। विदेशी उद्यम पूंजी निवेशकों के रूप में भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) के पास पंजीकरण कराने के इच्छुक आवेदकों से यह अपेक्षित है कि वे पंजीकरण का अनुरोध करते हुए आवेदनपत्र प्रस्तुत करने के समय कम से कम एक मिलियन अमरीकी डालर की राशि के अंशदान के लिए अपने निवेशकों से संपुष्ट प्रतिबद्धता प्राप्त करें।
13. यदि किसी निर्गमकर्ता की हिस्सेदारी (equity) पहले से सूचीबद्ध हो तो निर्धारित ऋण प्रतिभूतियों के लिए सरलीकृत सूचीयन करार की व्यवस्था। प्राथमिक बाज़ार संबंधी विनियम, 2007 के दौरान, भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने निम्नलिखित के लिए प्रकटन और निवेशक संरक्षण (Disclosure and Investor Protection - DIP) संबंधी दिशानिर्देशों में संशोधन किया-
    (क) सुस्थापित और नियमों का पालन करने वाली सूचीबद्ध कंपनियों के लिए 'फास्ट ट्रैक निर्गमों' की अनुमति देना ताकि ये कंपनियां समयबद्ध तरीके से पूंजी बाजार में पहुंच बना सकें।
    (ख) सभी श्रेणियों के निवेशकों को भारतीय निक्षेपागार प्राप्तियों (IDR) के किसी आरम्भिक सार्वजनिक पेशकशों में आवेदन करने की अनुमति देना और किसी भारतीय निक्षेपागार प्राप्तियों (IDR) निर्गत में न्यूनतम आवेदन मूल्य 2 लाख रूपये से घटा कर 20,000 रुपये करना।
    (ग) निर्गमकर्ताओं को अब दो के स्थान पर केवल एक साख निर्धारण एजेन्सी से रेटिंग प्राप्त करने की आवश्यकता होगी।
    (घ) सार्वजनिक निर्गम लाने वाली कम्पनियों को खुदरा व्यक्तिगत निवेशकों व खुदरा व्यक्तिगत शेयर धारकों को रियायती मूल्य पर प्रतिभूतियां जारी करने हेतु सक्षम बनाना।
    (ङ) आरम्भिक सार्वजनिक पेशकशों (IPO) के पात्रता मानदण्डों के अंतर्गत आरम्भिक सार्वजनिक पेशकशों के लिए अनिवार्य ग्रेडिंग शामिल करना।
    (च) आधारभूत ढांचा क्षेत्र में कार्यरत सरकारी कंपनियों व निगमों, सांविधिक प्राधिकरणों व निगमों अथवा उनके द्वारा स्थापित किसी विशेष प्रयोजन साधन को आरम्भिक सार्वजनिक पेशकशों के जरिए भारतीय प्राथमिक बाज़ार में निधियां जुटाने को सुविधाजनक बनाने हेतु कतिपय प्रावधानों (जैसे न्यूनतम मंदीकरण अपेक्षा और बिक्री के लिए किसी पेशकश में जारी

की जाने वाली निर्गम-पूर्व-पूंजी की धारिता की न्यूनतम अवधि की अपेक्षा में और प्रवर्तकों के अंशदान के अभिकलन के प्रयोजन हेतु शेयरों की पात्रता) में छूट प्रदान करना।

(आर्थिक समीक्षा के विभिन्न वर्ष पर आधारित)

B. म्यूचुअल फंड के सम्बन्ध में

1. पारस्परिक कोषों (mutual funds) की प्रारम्भिक निर्गम खर्च (initial issue expenses) और लाभांश वितरण प्रक्रिया को युक्तिसंगत कर दिया गया है। म्युचुअल फंडों को स्वर्ण विनिमय व्यापारिक निधियां लागू करने की अनुमति दी गई है।
2. प्राप्त सेवा के स्तर के अनुसार वितरकों को अदा की जाने वाली **कमीशन** का निर्णय करने हेतु निवेशकों को सशक्त बनाने के उद्देश्य से, कमीशनों के भुगतान में **अधिक पारदर्शिता** लाने के लिए तथा दीर्घावधिक निवेश को प्रोत्साहन देने के लिए, यह निर्णय लिया गया था कि सभी म्युचुअल फंड योजनाओं के लिए कोई प्रवेश भार न हो, योजना आवेदन पत्रों में इस आशय का एक उपयुक्त प्रकटन होना चाहिए कि वितरकों को अपफ्रंट कमीशन का भुगतान निवेशक द्वारा सीधे वितरक को प्रदत्त सेवा सहित विभिन्न कारकों के उसके आकलन के आधार पर किया जाएगा। निवेशक को प्रभारित निकासी भार में से, मोचन प्राप्तियों (redemption receipts) का अधिकतम 1 प्रतिशत एक पृथक खाते में अनुरक्षित रखा जाएगा जिसका प्रयोग आस्ति प्रबंधन कम्पनियों द्वारा वितरक को कमीशनों का भुगतान करने तथा अन्य विपणन एवं बिक्री व्ययों को पूरा करने के लिए किया जा सकता है। किसी भी अधिशेष को तत्काल योजना में जमा कर दिया जाएगा।
3. म्युचुअल फंड योजनाओं के यूनिटों को मान्यताप्राप्त स्टॉक एक्सचेंजों के **पंजीकृत स्टॉक ब्रोकरों के माध्यम से** लेन देन किए जाने की अनुमति दी गई।
4. म्युचुअल फंड यूनिटों के सभी मध्यवर्तियों को कड़ाई से आचरण संहिता का अनुसरण करने की सलाह दी गई है। यह निर्णय लिया गया कि कोई भी म्युचुअल फंड किसी निर्गमकर्ता की मुद्रा बाजार लिखतों (money market instruments) में निवल आस्तियों (net assets) के 30 प्रतिशत से अधिक का निवेश नहीं करेगा। तथापि, यह सीमा सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश, राजकोषीय हुंडियों तथा सम्पार्श्वक (collateral) उधार लेने तथा उधार देने की देयताओं के लिए प्रयोज्य नहीं हैं। विद्यमान योजनाओं के संबंध में, जहां किसी निर्गमकर्ता की धन बाजार लिखतों में निवेश इस दिशा-निर्देश के अनुपालक नहीं हैं, आस्ति प्रबन्धन प्रमण्डल (Asset Management Company - AMC) अधिसूचना की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर अनुपालन सुनिश्चित करेगी।
5. **सीमित अवधि वाली योजनाओं** के तहत यूनिटों को परिपक्वता से पूर्व खरीदा नहीं जाएगा। सीमित अवधि वाली ऋण योजनाओं को अपनी स्वयं की परिपक्वता से कम आरम्भिक या अवशिष्ट परिपक्वताओं की प्रतिभूतियों में निवेश करने की अनुमति दी गई है।
6. सीमित अवधि वाली स्कीमों के अंतर्गत यूनिटें **अनिवार्य रूप से सूचीबद्ध** होनी अपेक्षित हैं। यह अचल किया गया था कि कोई सीमित अवधि वाली ऋण स्कीम ऐसी प्रतिभूतियों में ही निवेश करेगी जो उस स्कीम की परिपक्वता की तारीख को अथवा उससे पहले परिपक्व होती हों।
7. म्यूचुअल फंडों द्वारा **विदेशों में किए जाने वाले निवेशों** के संबंध में सकल उच्चतम सीमा 5 बिलियन अमरीकी डॉलर से बढ़ाकर 7 बिलियन अमरीकी डॉलर की गई।
8. म्यूचुअल फंडों की **निर्दिष्ट उधार लेने की सीमा** को मामला-दर-मामला आधार (case by case basis) पर बढ़ाकर छः महीने की अवधि के लिए निवल परिसंपत्तियों का 40 प्रतिशत किया जाए ताकि वे व्यवस्थित तरीके से उन्मोचन अनुरोध पूरे करने में समर्थ हो सकें।
9. यह अधिदेशित किया गया था कि **नकदी निधि स्कीमों** और योजनाओं को 1 मई 2009 से सिर्फ 91 दिवसीय परिपक्वता वाली ऐसी लिखतों में ऋण और मुद्रा बाजार प्रतिभूतियों का निवेश व खरीद करनी चाहिए।

10. म्यूचुअल फंडों द्वारा **कोषों की पार्किंग की सीमा** किसी एक अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक में 10 प्रतिशत की उप-सीमा सहित सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों में अल्पावधिक जमा राशियों में उनकी निवल परिसम्पत्तियों के 15 प्रतिशत तक सीमित करते हुए दिशा-निर्देश जारी किए गए।

4 जनवरी, 2008 से म्यूचुअल फंड स्कीमों में सीधे निवेश के लिए आवेदन करने वाले निवेशकों के लिए म्यूचुअल फंडों द्वारा प्रविष्टि भार से छूट दी गई है। भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने अचल सम्पदा निवेश ट्रस्ट विनियमों का प्रस्ताव किया है, जिससे कि भारत में ऐसे ट्रस्टों की अच्छी वृद्धि को बढ़ावा मिल सके।

(आर्थिक समीक्षा के विभिन्न वर्ष पर आधारित)

C. कारपोरेट बांड बाज़ार के सम्बन्ध में

1. कॉरपोरेट बॉन्ड बाजार का विस्तार करने हेतु इस शर्त को हटा दिया गया कि सार्वजनिक व अधिकारिक निर्गमों (rights issue) के माध्यम से जारी ऋण लिखत कम से कम **निवेश ग्रेड** के होंगे।
2. कारपोरेट बांड बाज़ार पर **विनियामक क्षेत्राधिकार** को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है तथा उसे भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) के अधीन रखा गया है। भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) (ऋण प्रतिभूतियों का निर्गम और सूचीयन) विनियम 2008 में प्रकटनों तथा सूचीयन अपक्षाओं को सरल बनाया गया है। न्यूनतम बाज़ार लॉट मानदंड को 10 लाख रुपये से घटाकर एक लाख रुपये कर दिया गया है ताकि खुदरा निवेशकों को प्रोत्साहित किया जा सके।
3. भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने, कॉर्पोरेट बाण्डों के लेन-देन के लिए एक **सम्मिलित** मंच का निर्माण करने के प्रस्ताव को कार्यान्वित करने की दृष्टि से यह विनिर्दिष्ट किया है कि बीएसई लिमिटेड कॉर्पोरेट बाण्ड सूचना मंच की स्थापना करेगा और उसका रखरखाव करेगा। सभी संस्थाओं जैसे बैंकों, सरकारी क्षेत्र उद्यमों, नगर निगमों, निगमित (कॉर्पोरेट) निकायों और कंपनियों द्वारा जारी की गई सूचीबद्ध ऋण प्रतिभूतियों के सभी लेन-देन की सूचना दी जाएगी।
4. कारपोरेट बांडों में विदेशी संस्थागत निवेश (FII) निवेश की सीमा को 15 बिलियन अमरीकी डालर की विद्यमान सीमा से बढ़ाकर 20 मिलियन अमरीकी डालर की गई है तथा 5 बिलियन अमरीकी डालर की वर्धनात्मक सीमा को पांच वर्ष से अधिक की अवशिष्ट परिपक्वता वाले कारपोरेट बांडो में निवेशित किया जाना है।
5. BSE, NSE और FIMMDA ने रिपोर्टिंग मंच स्थापित किए हैं। इन मंचों में रिपोर्ट किया गया संकलित डाटा जनता को प्रसारित किया जाता है।
6. भारतीय रिजर्व बैंक के दिशानिर्देशों का अनुसरण करते हुए, मार्च 2010 से कारपोरेट बांडों में रिपो (repos) की अनुमति दी गई है। एक्सचेंज कारोबारित ब्याज दर फ्यूचर्स (Exchange-traded interest रेट futures) की शुरूआत अगस्त 2009 में की गई थी।
7. केन्द्रीय सूची में मदों (वचन पत्र के स्वरूप के ऋण पत्र तथा बांड) पर स्टाम्प शुल्क कम किया गया है तथा उसे एक समान बनाया गया है।

समाशोधन निगमों के माध्यम से समाशोधन तथा निपटान विनिर्दिष्ट निकायों नामत: म्यूचुअल फंड, दूर दृष्टि वाले संस्थागत निवेशक, उद्यम पूंजी निधि इत्यादि के बीच कारोबारों हेतु अधिदेशित किया गया है। **समाशोधन तथा निपटान** (Delivery versus Payment - III basis – DvP) आधार पर है।

(आर्थिक समीक्षा के विभिन्न वर्ष पर आधारित)

D. द्वितीयक बाजार के सम्बन्ध में

1. 'अपने ग्राहक को पहचानें' (Know Your Client – KYC) संबंधी मानदंडों को सुदृढ़ बनाने और प्रतिभूति बाजार में लेन-देन की एक ठोस लेखा-परीक्षा प्रणाली स्थापित करने के लिए दृष्टि से लाभानुभोगी मालिक का खाता खोलने और नकदी खंड में लेन-देन करने के लिए 1 जनवरी, 2007

से 'स्थाई लेखा संख्या' (Permanent Account Number- PAN) को अनिवार्य बना दिया गया है।

2. भारतीय प्रतिभूति बाजार की आधारभूत ढांचा कंपनियों में विदेशी निवेश संबंधी भारत सरकार की नीति के अनुरूप शेयर बाजारों, निक्षेपगार और समाशोधन निगमों में विदेशी निवेश की सीमाएं इस प्रकार विनिर्दिष्ट की गई हैः-
   (क) इन कंपनियों में 26 प्रतिशत की पृथक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment- FDI) सीमा और 23 प्रतिशत विदेशी संस्थागत निवेश (Foreign Institutional Investment - FII) सीमा के साथ 49 प्रतिशत तक विदेशी निवेश की अनुमति दी जाएगी।
   (ख) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड (Foreign Investment Promotion Board - FIPB) के विशेष पूर्वानुमोदन पर दी जाएगी।
   (ग) विदेशी संस्थागत निवेश की अनुमति केवल द्वितीयक बाजार में खरीदों के माध्यम से दी जाएगी।
   (घ) विदेशी संस्थागत निवेश, निदेशक मंडल में प्रतिनिधित्व की मांग नहीं करेगा और ना ही उसे प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा।
3. विदेशी संस्थागत निवेश, निवेश के आवेदन की प्रक्रिया को सरल बना दिया गया है और विदेशी संस्थागत निवेश के तहत निवेश की नई श्रेणियों (बीमा और पुनर्बीमा कंपनियां, विदेशी सेंट्रल बैंक, निवेश प्रबंधक, अंतरराष्ट्रीय संगठन) को शामिल किया गया है। विदेशी संस्थागत निवेशकों को प्रतिभूति प्राप्तियों में निवेश की अनुमति दी गई है।
4. सरकारी प्रतिभूति बाजार में, भारतीय रिजर्व बैंक ने राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम (Fiscal Responsibility and Budget Management Act - FRBM Act) के उपबंधो के अनुसार केंद्र सरकार के प्राथमिक निर्गमों में भाग लेना छोड़ दिया है।

   (http://business.gov.in/starting_business पर उपलब्ध विवरण पर आधृत व अनूदित/परिवर्धित/ परिवर्तित)

5. ग्राहकों तथा शेयर दलालों के बीच लेनदेनों में अपेक्षाकृत अधिक **पारदर्शिता तथा अनुशासन** लाने के लिए, शेयर दलालों को सलाह दी गई है कि वे ग्राहक के साथ करार करके उसे पंजीकृत करें। पंजीकरण अपेक्षाओं में अधिदेशात्मक (mandatory) तथा गैर-अधिदेशात्मक दस्तावेज, दोनों शामिल हैं। अधिदेशात्मक दस्तावेजों में शामिल हैं -
   (क) एक सदस्य-ग्राहक करार (Member-Customer Agreement- MCA) या त्रिपक्षीय करार यदि कोई उप-दलाल अंतर्ग्रस्त है।
   (ख) अपने ग्राहक को जानें (KYC) प्रपत्र।
   (ग) एक जोखिम प्रकटन दस्तावेज (Risk Disclosure Document - RDD)।
   ग्राहक द्वारा निष्पादित सभी दस्तावेजों की एक प्रति उसे उसके द्वारा दस्तावेजों के निष्पादन की तिथि से सात दिन के भीतर नि:शुल्क दी जाएगी।
6. इस तथ्य का उल्लेख करते हुए कि स्टॉक एक्सचेंजों ने लेनदेन प्रभार कम कर दिए थे / माफ कर दिए थे, उन्हें सलाह दी गई कि ऐसे लेनदेन प्रभारों को संशोधित करते समय वे सुनिश्चित करें कि उनकी प्रणालियां अतिरिक्त भार का प्रहस्तन करने में सक्षम हैं तथा इससे उनकी विद्यमान जोखिम प्रबंधन प्रणाली प्रभावित नहीं होगी। संशोधित प्रभार समान स्वरूप के कारोबारों पर एक समान रूप से प्रयोग किए जाने चाहिए तथा उनका क्रियाकलाप उचित एवं पारदर्शी तरीके से किया जाना चाहिए।
7. संस्थागत निवेशकों के लिए प्रत्यक्ष बाजार संपर्क सुविधा शुरू की गई जिसमें ब्रोकर द्वारा ग्राहकों के उपयुक्त जोखिम प्रबंधन के अधीन, ब्रोकर द्वारा स्वयं हस्तक्षेप किए बिना ब्रोकर के बुनियादी ढांचे के जरिए एक्सचेंज कारोबार प्रणाली की ग्राहकों को सीधी सुविधा दी गई है।

8. प्रतिभूति संविदा {मान्यता प्राप्त स्टाक एक्सचेंजों में सार्वजनिक शेयर धरिता बढ़ाने और रखने की विधि (Manner of Increasing and Maintaining Public Share Holding in recognized Stock Exchanges - MIMPS)} विनियमन, 2006 में संशोधन किया गया ताकि शेयरधारकों की श्रेणियों नामश: सरकारी वित्तीय संस्थाएं, स्टाक एक्सचेंज, निक्षेपागार, समाशोधन निगम, बैंक और बीमा कंपनियां संबंधित स्टाक एक्सचेंजों की चुकता इक्विटी शेयर पूंजी के 15 प्रतिशत तक हिस्से को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से धारित कर सकें। उपर्युक्त छह श्रेणियों के निवेशकों से इतर कोई भी शेयरधारक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्टाक एक्सचेंज की चुकता इक्विटी शेयर पूंजी के 5 प्रतिशत से अधिक हिस्से को धारित नहीं कर सकता।
9. ऋणपत्र जारी करने वाली कम्पनियों के लिए निम्नलिखित स्थितियों में अपेक्षित समस्त सूचना को प्रसारित करना अनिवार्य बनाया गया:
   (क) निगर्मकर्ता कम्पनी द्वारा ऋण-पत्रों (debentures) पर ब्याज या मोचन राशि की अदायगी करने में चूक।
   (ख) आस्तियों पर प्रभार न लगाना।
   (ग) ऋण-पत्रों (debentures) को दी गई रेटिंग में संशोधन।
10. भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने सात नए उत्पाद शुरू करने की मंजूरी दी है-इक्विटी सूचकांकों संबंधी लघु-संविदाएं, दीर्घतर समयावधि / कार्यावधि युक्त विकल्प, अस्थिरता सूचकांक और वायदा और विकल्प (Futures and Options - F&O) संविदाएं, फ्यूचर्स संबंधी विकल्प, बांड सूचकांक, एक्सचेंज-ट्रेडेड करेंसी (विदेशी मुद्रा) फ्यूचर्स एंड आप्शंस तथा विभिन्न निवेश रणनीतियों का प्रबंध करने के लिए विनिमय कारोबार वाले उत्पाद (Exchange traded product) की शुरूआत। न्यूनतम 1 लाख रुपए के संविदा आकार वाले सूचकांक (Sensex and Nifty) संबंधी लघु व्युत्पाद संविदा की शुरूआत 1 जनवरी, 2008 से की गई।
11. भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने एक अतिरिक्त कारपोरेट प्रशासनिक उपाय, जो कम्पनी के शेयरधारकों के हितों को कम्पनी के आंतरिक सदस्यों के हितों के समनुरूप बनाता है, को समाविष्ट करने के उद्देश्य से भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) (आंतरिक सदस्य के कारोबार पर प्रतिबंध) विनियम, 1992 में अतिरिक्त विनियम शामिल करने का प्रस्ताव किया है। इसमें किसी “आन्तरिक सदस्य” को कम्पनी (इसकी मूल अथवा सहायक कम्पनियों की प्रतिभूतियों सहित) की इक्विटी आधारित प्रतिभूतियों से संबंधित उसके किसी लेनदेन में, बशर्ते लेनदेन के खरीद और बिक्री दोनों पहलू एक दूसरे से छह माह के भीतर किए गए हों, ऐसे लाभों को कम्पनी को अभ्यर्पित करने हेतु विवश करने का प्रस्ताव है। इस विनियम से भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने सभी मध्यवर्तियों की पंजीकरण प्रक्रिया सरल बना दी गई है। सही और सटीक मापदंड को संशोधित करके इसे सिद्धांत-आधारित बना दिया गया है। समान आचार संहिता निर्दिष्ट करने के अतिरिक्त मध्यवर्तियों को प्रदत्त पंजीकरण को भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) अधिनियम, विनियमों के अनुपालन, संगत प्रकटनों को अद्यतन करने और शुल्क के भुगतान के अधीन स्थायी कर दिया गया। चूक के मामले में कार्रवाई करने की प्रक्रिया और प्रमाणपत्र का आस्थगन अथवा निरसन का तरीका सरल बना दिया गया है ताकि पक्षकारों को सुनवाई का पर्याप्त अवसर देने के अधिकार को जोखिम में डाले बिना उनके द्वारा बिताए जाने वाले समय को कम किया जा सके। प्रमाणपत्र अभ्यर्पण की प्रक्रिया सरल बना दी गई है।
12. दिनांक 11 अगस्त, 2008 को भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) (पोर्टपफोलियो प्रबंधक) विनियम, 1993 में किए गए एक संशोधन से पोर्टफोलियो प्रबंधक के रूप में पंजीकरण हेतु आवेदन पर विचार करने के मापदंड में रियायत दे दी गई है और पोर्टफोलियो प्रबंधन सेवा करने के लिए निवल मूल्य 50 लाख रुपए से बढ़ाकर 2 करोड़ रुपये कर दिया गया है।

(आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष, पर आधारित)

14.6 औद्योगिक वित्त का महत्व

औद्योगिक विकास को यदि आर्थिक विकास का समानार्थी मान लें तो अधिक अतिशयोक्ति नहीं होगी। विकास के साथ-साथ अर्थव्यवस्था के अनेक प्राथमिक तथा तृतीयक या सेवा क्षेत्र उद्योग में या तो परिणत होते जा रहे हैं या फिर इसके समकक्ष उत्पादक माने जा रहे हैं, जैसे - बैंक, बीमा, मनोरंजन, संचार, स्वास्थ्य, सूचना ही नहीं, कृषि, वनोत्पाद, शिक्षा आदि को भी अनेक अर्थों में, अनेक दृष्टियों से, उद्योग की संज्ञा दे दी जा रही है। अब हर उत्पादक या सृजनकारी क्रिया को उद्योग समझा जा रहा है। अत: औद्योगिक वित्त और विकास वित्त में व्यवहारिक अन्तर तो नहीं रह गया है।

चूंकि भारतीय अर्थव्यवस्था उच्च वृद्धि के मार्ग पर चल रही है इसलिए भविष्य में निवेश की मांग अधिक बने रहने की आशा है। यह भी आवश्यक है कि बैकों का ऋण-विस्तार स्फीतिकारी न हो और उत्पादक क्षेत्रों को उचित लागत पर पर्याप्त ऋण मिले तथा उत्पादनकारी क्षेत्रों द्वारा ऋण लेना जारी रहे ताकि अर्थव्यवस्था के विकास की रफ्तार बनी रहे।

एक गतिशील पूंजी बाज़ार के चलते भारतीय कॉर्पोरेट इक्विटी और ऋण निर्गमों दोनों के जरिए संसाधन जुटाने हेतु प्राथमिक बाजारों में अपनी पहुंच बढ़ाते रहे हैं। इसके अतिरिक्त, घरेलू संसाधन जुटाव की अनुपूर्ति हेतु कॉर्पोरेटों द्वारा जारी विदेशी निर्गमों (ADR / GDR) को भी महत्व मिला है। चूंकि उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में, भारत की वृद्धि दर अपेक्षाकृत बेहतर है, देश में विदेशों से महत्वपूर्ण पोर्टफोलियो निवेश किया जाता रहेगा। भारत में निवेश से अपेक्षतया बेहतर प्रतिफल पाने की आशा, संभावित जोखिमों के बारे में निवेशकों की सकारात्मक धारणाएं और वैश्विक नकदी की बेहतर स्थिति के चलते देश निवेशकों के लिए आकर्षक गंतव्य बने रहने की उम्मीद है। भविष्य की बात करें तो, संभावित कम वैश्विक वृद्धि दर के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ आधार और उच्च वृद्धि दर से घरेलू और विदेशी निवेशकों की भारतीय बाज़ार में रूचि बनाए रखने में मदद मिलेगी।

म्यूचुअल फंडों द्वारा संसाधन जुटाव की राशि में हालिया बढ़ोतरी और उनके द्वारा प्रबंधित आस्तियां इस बात का संकेत हैं कि निवेशक पूंजी बाजार में म्यूचुअल फंडों के जरिए निवेश करना अधिक पसंद कर रहे हैं और इससे भारतीय वित्त संस्थाओं के पास मौजूदा संसाधनों में वृद्धि होगी। ये संसाधन पूंजी बाजार में ही जाएंगे। बीमा कंपनियों द्वारा अधिकाधिक भौगोलिक विस्तार करने और नए उत्पादों में वृद्धि के हाल के प्रयासों से उनका संसाधन आधार सुदृढ़ बनेगा और इक्विटी एवं ऋण बाजारों में उनकी भागीदारी को प्रोत्साहन मिलेगा।

14.7 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. औद्योगिक प्रतिभूति बाजार में प्राथमिक बाजार और द्वितीयक बाजार ही शामिल हैं।
2. उत्कृष्ट बाजार में निजी क्षेत्र की उत्तम प्रतिभूतियों का लेनदेन होता है।
3. भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा कॉर्पोरेट बांडों में रिपो (Repo) की अनुमति है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी)) की स्थापना वर्ष..............में की गई थी।।

(1990 **या** 1992)

2. निरन्तर सूचीबद्ध रहने की एक शर्त के तौर पर सूचीबद्ध कंपनियों को, जारी किए गए कुल शेयरों का सामान्यत: ....प्रतिशत की सार्वजनिक शेयरधारिता न्यूनतम स्तर पर बनाए रखनी होती है।

(25 **या** 50)

3. म्युचुअल फंड किसी निर्गमकर्ता की धन बाजार लिखतों में निवल आस्तियों के .... प्रतिशत से अधिक का निवेश नहीं कर सकता।
(20 **या** 30)
4. म्यूचुअल फंडों द्वारा विदेशों में किए जाने वाले निवेशों के संबंध में सकल उच्चतम सीमा..............बिलियन अमरीकी डॉलर है।
(7 **या** 10)
5. कॉर्पोरेट बांडों में FII निवेश की सीमा..............मिलियन अमरीकी डालर है।
(10 **या** 20)

14.8 सारांश

आपने इस अध्याय में जाना कि अच्छी वित्तशक्ति औद्योगिक साहस एवं उद्यमिता की आवश्यक शर्तों में सें एक है। औद्योगिक उपक्रम को अपना कार्य आरंभ करने, अपना कार्य जारी रखने और इसके विस्तार एवं विकास-सभी चरणों वित्तीय साधनों की आवश्यकता होती है।

औद्योगिक वित्त प्रदायन में समूची वित्त व्यवस्था निहित है। पिछले दो दशकों में वित्त व्यवस्था में पूरी कायापलट हो चुकी है। पहले विकास वित्त प्रायः उद्योगों के लिए वित्त का साधन था जबकि वाणिज्यिक वित्त प्रधानत: व्यापारिक क्रियाओं के लिए। किन्तु 1991 से आर्थिक सुधारों के प्रथम दौर तथा 1998 से वित्तीय सुधारों के दौर में पूंजी बाजार व मुद्रा बाजार तथा विकास वित्त व वाणिज्यिक वित्त के बीच की दीवारें प्रायः गिरायी जा चुकी हैं।

आज के गतिशील वैश्विक बाजारों में इन संस्थाओं की रणनीति, संरचना व कार्यप्रणाली में निरन्तर बदलाव आ रहे हैं। अत: अब वित्त व्यवस्था का स्वरूप पहले की अपेक्षा अधिक लोचपूर्ण किन्तु जटिल हो गया है।

14.9 शब्दावली

- **अभिगोपक -** ऐसा व्यक्ति या संस्था जो कम्पनियों के द्वारा नव निर्गमित अंशों या ऋण-पत्रों (debentures) को हल्के कमीशन के बदले निर्धारित समय के भीतर बेच देने या स्वयं खरीद लेने की गारन्टी देकर इनके निर्गमन को सफल बनाता है।
- **उत्कृष्ट बाजार -** सरकार और अर्द्ध-सरकारी प्रतिभूतियों से संबंधित है जिसे भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) का समर्थन प्राप्त है। सरकार व भारतीय रिजर्व बैंक की गारन्टी के चलते इन प्रतिभूतियों को भुगतान या शोधन का कोई जोखिम नहीं उठाना पड़ता।
- **औद्योगिक प्रतिभूति बाजार -** ऐसा बाजार है जो कंपनियों की समता अंशों (equity shares) और ऋण-पत्रों (debentures) का लेन-देन करता है।
- **पात्र संस्थागत नियोजन (QIP) -** निधियां जुटाने की एक त्वरित और किफायती प्रणाली जिसमें भारतीय प्रतिभूति बाजार से प्रतिभूतियों के निजी नियोजन अथवा पात्र संस्थागत विक्रेता के परिवर्तनीय बॉण्डों के जरिए निधियां जुटाई जाती हैं।
- **रिपो (Repo) -** एक पुनर्खरीद समझौता, एक रेपो, आर. पी., या बिक्री और पुनर्खरीद समझौते के भी रूप में जाना जाता है, विक्रेता के लिए एक समझौते के साथ प्रतिभूतियों की बिक्री है, एक बाद की तारीख में प्रतिभूति वापस खरीदने के लिए। पुनर्खरीद की कीमत मूल बिक्री मूल्य से अधिक होना चाहिए, अन्तर प्रभावी ढंग से ब्याज (जिसे रिपो दर भी कहा जाता है) का प्रतिनिधित्व कर। मूल रूप से जो पक्षकार प्रतिभूति खरीदता है वह प्रभावी ढंग से एक ऋणदाता के रूप में कार्य करता है। रेपो एक वायदा अनुबंध के साथ संयुक्त तत्काल बिक्री के बराबर है।

14.10अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. 1992 2. 25 3. 30
4. 7 5. 20

14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मुद्रा और वित्त सम्बन्धी रिपोर्ट, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- भारत 2012-एक सन्दर्भ वार्षिकी, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
- भारत में बैंक संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकीय पुस्तिका, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष
- http://business.gov.in

14.12 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Bhole L M - Financial Institutions and Markets, Tata McGraw-Hill
- Fabozzi - Foundations of Financial Markets and Institutions (Pearson Education.)
- Khan, M.Y: Indian Financial System, Tata McGraw Hill, Delhi
- Machiraju H R - Indian Financial System, Vikas PH.
- Madura, Jeff, 'Financial Markets and Institutions ', South Western Cengage Learning.
- Varshney, P.N: Indian Financial System, Sultan Chand & Sons, New Delhi

14.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं का वर्गीकरण कीजिए।
2. औद्योगिक वित्त के विनियामक ढांचे की प्रमुख बातों का उल्लेख कीजिए।
3. 'औद्योगिक वित्त प्रदायन में समूची वित्त व्यवस्था निहित है जिसमें पूंजी बाजार व मुद्रा बाजार दोनो शामिल हैं।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
4. औद्योगिक वित्त बाज़ारों की दशा से कैसे प्रभावित होता है? भारतीय संदर्भ में स्पष्ट रूप से समझाइए।
5. अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं की अद्यतन कार्यविधि व प्रगति का आलोचनात्मक विवरण दीजिए?
6. द्वितीयक बाजार के सम्बन्ध में विनियामक सुधारों की समीक्षा कीजिए।
7. औद्योगिक वित्त औद्योगिक व सम्पूर्ण आर्थिक विकास में किस प्रकार योगदान करता है? बताइए।

इकाई-15 औद्योगिक वित्त के स्रोत

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 औद्योगिक वित्त के स्रोत: सार्वजनिक, निजी, सहकारी क्षेत्र, शेयर, बाण्ड, जमा, लोन इत्यादि
15.3.1. सार्वजनिक क्षेत्र
15.3.2. निजी क्षेत्र
15.3.3. सहकारी क्षेत्र
15.4 अभ्यास प्रश्न
15.5 सारांश
15.6 शब्दावली
15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.9 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आप औद्योगिक वित्त का व्यापक परिचय प्राप्त कर चुके हैं। आपने यह भी देखा कि भारत की गतिशील अर्थव्यवस्था में उद्योगों के विकास, संवर्धन व संचालन में औद्योगिक वित्त की भूमिका किस प्रकार तेजी से बदली है।
आगे इसी क्रम में इस अध्याय में आप यह जानेंगे कि सार्वजनिक, निजी व सहकारी क्षेत्र में औद्योगिक वित्त के अनेक स्त्रोत, योजनायें व उपकरण उपलब्ध हैं।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ✓ इस बात से अवगत हो सकेंगे कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न अधिशासन क्षेत्रों (सार्वजनिक, निजी व सहकारी क्षेत्रों) में औद्योगिक वित्त के कौन-कौन से स्त्रोत हैं।
- ✓ समझ पायेंगे कि औद्योगिक वित्त के इन स्त्रोतों में कौन सी योजनायें व उपकरण सम्मिलित हैं।
- ✓ इन वित्तीय साधनों की कार्यप्रणाली, प्रगति व स्वरूप में क्या बदलाव आया है इसे जान सकेंगे।

15.3 औद्योगिक वित्त के स्त्रोत: सार्वजनिक, निजी, सहकारी क्षेत्र, शेयर, बाण्ड, जमा, लोन इत्यादि

दीर्घावधिक वित्त औद्योगिक प्रतिष्ठानों व कम्पनियों द्वारा निम्नलिखित स्रोतों से जुटाया जा सकता है -

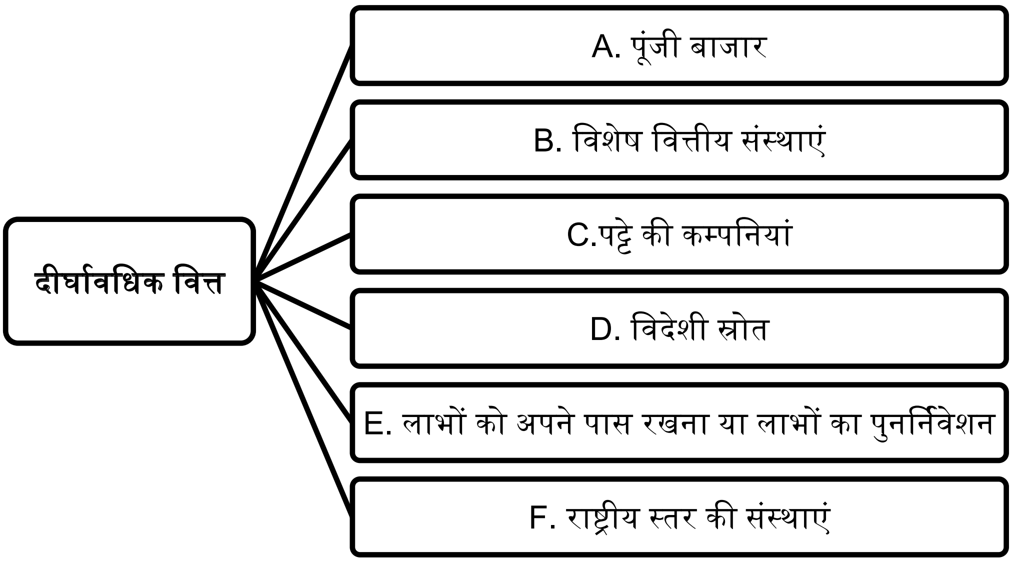

A. पूंजी बाजार

पूंजी बाजार का अभिप्राय एक व्यवस्था से है जिसके द्वारा दीर्घावधिक निधियों की अधिप्राप्ति और आपूर्ति का लेनदेन व्यष्टियों और संगठनों के बीच किया जाता है। शेयरों के निर्गमित होने के पहले कम्पनी के निदेशकों को निम्नलिखित विषयों पर निर्णय लेना होता है:-

क. शेयरों के निर्गम से जुटाई जाने वाली पूंजी की राशि।
ख. जारी किए जाने वाले शेयरों के प्रकार
ग. शेयर निर्गमित करने का समय

जब कम्पनी द्वारा अपने गठन के या शेयरों के प्रथम आबंटन के एक वर्ष बाद पश्चात किसी भी समय अतिरिक्त ऐसे शेयरों की पेशकश सबसे पहले कम्पनी के विद्यमान शेयर धारकों के लिए की जाए, ऐसा निर्गम 'अधिकार निर्गम' कहलाता है और ऐसे शेयरों को अधिकार अंश (rights shares) के रूप में जाना जाता है। यदि मौजूदा शेयर धारक इस पेशकश को नकारते हैं तभी इन शेयरों की पेशकश आम जनता के लिए की जा सकती है। शेयरों के निगम को और ऋण-पत्रों (debenture) को सरकार है पूंजी निर्गम (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 के अधीन नियंत्रित करती है।

B. विशेष वित्तीय संस्थाएं

औद्योगिक उद्यमों को दीर्घावधिक वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए भारत में बड़ी संख्या में वित्तीय संस्थाएं स्थापित की गई हैं। बहुत सी अखिल भारतीय संस्थाएं रही हैं जैसे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI), भारतीय ऋण और निवेश निगम (ICICI), भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) आदि। राज्य स्तर पर राज्य वित्त निगम (SFCs) और राज्य औद्योगिक विकास निगम (SIDCs) हैं। इन राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय संस्थाओं को विकास बैंकों के रूप में जाना जाता है। विकास बैंकों के अतिरिक्त अनेकानेक संस्थाएं हैं जिन्हें निवेश कम्पनियां या निवेश न्यास कहा जाता है जो कम्पनियों द्वारा जनता के लिए पेशकश किए गए शेयर और डिबेन्चर खरीदती हैं। इनमें भारतीय जीवन बीमा निगम (LIC)य भारतीय साधारण बीमा निगम (GIC), यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया (UTI) आदि शामिल है।

C.पट्टे की कम्पनियां

विनिर्माण कम्पनियां पट्टे की कम्पनियों से दीर्घावधिक ऋण प्राप्त कर सकती हैं। इसके लिए एक पट्टा करार किया जाता है जिसके माध्यम से पट्टेदारी कम्पनियों द्वारा मशीनरी और अन्य सम्पत्तियां खरीदी जा सकती है और वार्षिक किराया भुगतान पर विशिष्ट अवधि तक विनिर्माण प्रतिष्ठान द्वारा उपयोग करना अनुमत होता है। अवधि की समाप्ति पर विनिर्माण कम्पनी के पास कम कीमत पर खरीद करने का विकल्प होता है। पट्टा किराया में पट्टेदार कम्पनी के खर्च और लाभों के अतिरिक्त ब्याज प्राप्त कर सकती है।

D. विदेशी स्रोत

निधियां विदेशी स्रोतों से भी जुटाई जा सकती हैं जिनमें साधारणत: निम्नलिखित सन्निहित होते हैं-

क. विदेशी सहयोग - यदि भारत सरकार द्वारा अनुमोदित हो, भारतीय कम्पनियां अपनी शेयर पूंजी का विदेशी सहयोगियों से खरीदारी, तकनीकी जानकारी की आपूर्ति, पेटेन्ट, संरक्षण और संयंत्र की डिजाइन या मशीनरी की आपूर्ति द्वारा विदेशों से पूंजी प्राप्त कर सकती हैं।

ख. अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं- जैसे विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम (IFC) पूरे विश्व में औद्यौगिक विकास के लिए दीर्घावधिक निधियां प्रदान करती हैं। विश्व बैंक केवल सदस्य देशों की सरकार को ऋण उपलब्ध कराता है या निजी उद्यमों को संबंधित सरकार की गारंटी पर ऋण देता है। अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम की स्थापना सदस्य देशों की गारंटी के बिना निजी उपक्रमों की सहायता करने के लिए की गई है। यह उन्हें जोखिम पूंजी भी प्रदान करती हैं।

ग. अनिवासी भारतीय- भारतीय मूल और राष्ट्रीयता के व्यक्ति (जो विदेशों में रहते हैं) भी भारत में कम्पनियों द्वारा निर्गमित शेयर और डिबेन्चर खरीदने के लिए अनुमत होते हैं।

E. लाभों को अपने पास रखना या लाभों का पुनर्निवेशन

सतत रूप से चालू कम्पनियों के लिए दीर्घावधिक वित्त का महत्वपूर्ण स्रोत लाभ की राशि है जिसे वर्षानुवर्ष सामान्य संचय के रूप में जमा किया जाता है। शेयरधारकों को पूरी तरह लाभांश के रूप में लाभों का वितरण नहीं किया जाता, अपने पास रखी हुई राशि को कारोबारी क्रियाकलापों के विस्तार या विविधिकरण के लिए निवेश किया जाता सकता है। अपने पास रखा गया लाभ वित्त का आंतरिक स्रोत है।

(http://business.gov.in/starting_business पर उपलब्ध विवरण पर आधृत व अनूदित / परिवर्धित / परिवर्तित)

भारत में, अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को पर्याप्त मात्रा में ऋण मुहैया कराने के लिए देश की वित्तीय संस्थाओं का एक सुविकसित तंत्र तैयार किया गया है। वित्तीय संस्थाओं द्वारा किए जा रहे प्रमुख क्रियाकलापों के आधार पर, उन्हें तीन प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, जो इस प्रकार है:

क. मियादी या सावधि उधार देने वाली संस्थाएं जिनका मुख्य कार्यकलाप सावधि ऋणों और निवेशों के रूप में प्रत्यक्ष उधार देना है (उदाहरणार्थ एक्जिम बैंक)

ख. पुनर्वित्त (Refinance) संस्थाएं जो मुख्यतया बैंकों और गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं (Non-Banking Financial Institutions – NBFIs) को पुनर्वित्त प्रदान करते हैं (उदाहरणार्थ NABARD) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) और राष्ट्रीय आवास बैंक) जो मुख्यत: बैंकों के साथ-साथ गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के लिए पुनर्वित्तपोषण की व्यवस्था करते हैं,

ग. निवेश संस्थाएं जो अपनी परिसम्पत्तियां बड़े पैमाने पर बाजार में मुख्यतया विपणनीय प्रतिभूतियों में लगाती हैं (उदाहरणार्थ भारतीय जीवन बीमा निगम)।

इन्हीं वित्तीय संस्थाओं को उनके संचालनों के तहत **भूभौतिकीय क्षेत्र के आधार** पर मोटे तौर पर अखिल भारतीय संस्थाओं और राज्य स्तरीय संस्थाओं में वर्गीकृत किया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर, ये ब्याज की उचित दरों पर दीर्घावधि और मध्यावधि ऋण प्रदान करती हैं। वे कंपनियों के ऋण पत्र (debentures) निर्गमों के लिए अभिदान (subscription) करती है, शेयर के सार्वजनिक निर्गमों का अभिगोपन (underwriting) करती है, ऋणों एवं आस्थगित भुगतानों (deferred payments) की गारंटी देती हैं आदि। यद्यपि राज्य स्तर की संस्थाएं मुख्य रूप से मध्यम और लघु उद्यमों के विकास से संबंधित हैं लेकिन ये भी राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं की भांति उसी तरह की वित्तीय सहायता इन्हें प्रदान करती हैं।

F. राष्ट्रीय स्तर की संस्थाएं

राष्ट्रीय स्तर पर अनेक वित्तीय संस्थाएं स्थापित की गई हैं। ये उद्यमियों की कई तरह की वित्तीय जरुरतों को पूरा करती हैं। इनमें अखिल भारतीय विकास बैंक जैसे कि IDBI, SIDBI, IFCI Ltd, IIBI, विशेष वित्तीय संस्थाएं जैसे कि IVCF, ICICI Venture Funds Ltd, TFCI (ये निजी क्षंत्र में आते हैं), निवेश संस्थाएं जैसे कि LIC. GIC, UTI आदि शामिल हैं।

15.3.1. सार्वजनिक क्षेत्र

राष्ट्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर अनेकों वित्तीय संस्थाएं स्थापित की गई हैं जो उद्योगों की विविध प्रकार की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। इनमें अखिल भारतीय स्तर के विकास बैंक, विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं, निवेश संस्थाए, राज्य वित्त निगम तथा राज्य औद्योगिक विकास निगम शामिल हैं। इसके अलावा, गैर-बैंकिंग वित्त कंपनियां एक ऐसी संस्था समूह है जो उद्योग व व्यापार के लिए कई प्रकार से वित्तीय मध्यस्थता का कार्य करता है जैसे कि जमा राशियां स्वीकार करना, ऋण एवं अग्रिम प्रदान करना, पट्टे पर देना, भाड़े पर खरीद करना आदि। दूसरी ओर, उद्यम पूंजी (venture capital) लघु और मध्यम उद्यमों के गठन के लिए उनके विकास के प्रारम्भिक चरणों में निधियन (Funding) का महत्वपूर्ण स्रोत है।

इस वित्तीय तंत्र के मद्देनजर, केंद्र और राज्य सरकारें उद्यमियों की जरुरतों को पूरा करने के लिए हर तरह से प्रयास कर रही हैं। ये प्रयास विभिन्न वित्तीय योजनाओं और मंत्रालयों, सरकारी और प्राइवेट बैंकों, लघु उद्योग विकास संगठन, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लि., राज्य वित्त निगमों आदि द्वारा प्रस्तुत निधियन विकल्पों के रूप में हैं। इस प्रकार, भारत का वित्तीय तंत्र देश मे उद्यमी इकाइयों की स्थापना करने के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रदान करने में सक्षम है।

A. अखिल भारतीय विकास बैंक (AIDBs)

इसमें वे विकास बैंक शामिल हैं जिनमें न केवल बड़े और मध्यम उद्यमों को ऋण प्रदान किया जाता है बल्कि ये लघु स्तर की औद्योगिक इकाइयों के प्रवर्तन और विकास में भी सहायता करते हैं।

1. **भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) -** इसकी स्थापना 1964 में देश में औद्योगिक विकास की एक शीर्ष वित्तीय संस्था के रूप में हुई। यह मध्यम और बड़े उद्योगों की प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार की वित्तीय सहायता के रूप में जरुरतों को पूरा करती रही। प्रत्यक्ष सहायता परियोजना ऋणों, औद्योगिक प्रतिभूतियों का अभिगोपन (underwriting) और प्रत्यक्ष अभिदान, सस्ते ऋणों, तकनीकी वापसी ऋणों आदि के जरिए प्रदान की जाती रही। जबकि अपने मुख्य कार्य के रुप में अप्रत्यक्ष सहायता औद्योगिक फर्मों को पुनर्वित्तीयकरण की सुविधाओं के रूप में प्रदान की जाती रही। नवम्बर 1995 में इसने अपनी वाणिज्यिक इकाई IDBI बैंक शुरु किया।

   परन्तु, 1990 के दशक के आरम्भ में आर्थिक सुधारों के दौर में बदलते हुए आर्थिक वातावरण को दृष्टिगत रखते हुए सरकार ने वर्ष 2003 में इसे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (उद्यम का अंतरण और निरसन) अधिनियम, 2003 के अन्तर्गत भारतीय औद्योगिक विकास बैंक लिमिटेड (IDBIL) में परिवर्तित कर दिया तथा 2004 में IDBI को इसमें इसकी अपनी वाणिज्यिक इकाई IDBI बैंक को मिलाकर IDBI बैंक लि0 बना दिया गया। 1 अक्टूबर, 2004 से IDBI बैंक एक यूनिवर्सल बैंक है जो एक श्रेष्ठ कोर बैंकिंग सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) प्लेटफॉर्म का प्रयोग कर रहा है। बैंक देश भर के विभिन्न केंद्रों में फैली अपनी कई शाखाओं और एटीएमों के विशाल नेटवर्क के जरिए अपने ग्राहकों को व्यक्तिगत बैंकिंग सेवाएं तथा वित्तीय समाधान प्रदान करता है।

2. **भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लि. (IFCI Ltd) -** मध्यम और बड़े उद्योगों का दीर्घावधि औद्योगिक ऋण प्रदान करने के मार्ग प्रशस्त करने के लिए भारतीय औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम के तहत वर्ष 1948 में स्थापित की गई पहली विकास वित्त संस्था थी। इसका उद्देश्य उद्योग को रुपया और विदेशी मुद्रा ऋणों के जरिए वित्तीय सहायता प्रदान करना, औद्योगिक फर्मों के स्टॉकों, शेयरों, बाण्डों, ऋणपत्रों के निर्गम का अभिगोपन या उनमें अभिदान करना आदि है। इसने मर्चेंट बैकिंग, ऋण व्यवस्था, पुनरूस्थापना कार्यक्रम तैयार करने, सम्मेलनों और विलयों से संबंधित कार्यों आदि के क्षेत्र में अपने कार्यकलापों को विविधता प्रदान की है। बदलते हुए वित्तीय परिवेश में इसके कायों में अधक लचीलापन लाने तथा अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सरकार का मुखापेक्षी होने के बजाय बाजार में इसकी पहुंच बनाने हेतु इसे पूर्वत: संसद द्वारा पारित आईएफसीआई अधिनियम के अन्तर्गत वैधानिक निगम के दायरे से हटाकर अक्टूबर, 1999 से कम्पनी अधिनियम के अधीन 'आईएफसीआइ लि0' का नाम दिया गया।

3. **भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (Small Industries Development Bank of India - SIDBI) -** भारत सरकार द्वारा इसकी स्थापना IDBI के पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी के रूप में 2 अप्रैल, 1990 में की गई थी। इसकी स्थापना संबंधी अधिकार-पत्र-भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक अधिनियम, 1989 में सिडबी की परिकल्पना लघु उद्योग क्षेत्र के उद्योगों के संवर्द्धन, वित्तपोषण और विकास और लघु उद्योग क्षेत्र के उद्योगों को संवर्द्धन व वित्तपोषण अथवा विकास में लगी संस्थाओं के कार्यों में समन्वय करने और इसके लिए प्रासंगिक मामलों के लिए प्रमुख वित्तीय संस्था के रूप में की गई है। इसका उद्देश्य आर्थिक विकास, रोजगार सृजन और संतुलित क्षेत्रीय विकास की प्रक्रिया में योगदान करने की दृष्टि से सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSMEs) को समर्थ बनाना है। SIDBI अब भारत की स्वतंत्र वित्तीय संस्था है जो सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों की वृद्धि एवं विकास के लक्ष्य से स्थापित किया गया है। सिडबी के कारोबार के दायरे में लघु उद्योग इकाइयाँ समाहित हैं, जो उत्पादन, रोजगार और निर्यात की दृष्टि से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय योगदान करती हैं। सिडबी की सहायता परिवहन, स्वास्थ्य-सेवाओं और

पर्यटन क्षेत्र के साथ-साथ ऐसे प्रोफेशनल और स्व-नियोजित व्यक्तियों को भी उपलब्ध है, जो लघु आकार के प्रोफेशनल उद्यम स्थापित करते हैं।

(http://en.wikipedia.org/w/index.php?title=Small_Industries_Development_Bank_of_India accessed on 27th March, 2012)

4. **भारतीय निर्यात-आयात बैंक (EXIM Bank) -** यह भारतीय निर्यात-आयात बैंक अधिनियम 1981 के तहत 1982 में स्थापित देश की प्रमुख निर्यात वित्त संस्था है। भारत सरकार द्वारा बैंक को न सिर्फ भारत से निर्यात बढ़ाने के लिए वरन देश के विदेश निवेश को समग्र आर्थिक विकास के साथ एकीकृत करने का अधिदेश मिला हुआ है। अपनी स्थापना के समय से ही, एक्जिम बैंक ऑफ इंडिया देश के विदेश व्यापार एवं निवेश संवर्धन में एक महत्वपूर्ण व उत्प्रेरकीय भूमिका का निर्वहन करता रहा है। बैंक ने दुनिया में अन्य निर्यात क्रेडिट अभिकरणों की तरह परिचालन शुरू किया और गत वर्षों में स्वय को एक ऐसी संस्था के रूप में विकसित किया हैं जो अपनी उत्पादों और सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला के माध्यम से भारतीय उद्योगों, विशेष रूप से छोटे और मध्यम उद्यमों, के वैश्वीकरण के प्रयासों में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। बैंक निर्यात व्यवसाय चक्र के सभी चरणों में प्रौद्योगिकी से लेकर निर्यात उत्पाद विकास, निर्यात उत्पादन, निर्यात विपणन, पोत लदान पूर्व एवं पोत लदानोत्तर और विदेशी निवेश, इन सबके लिए सेवाएं सम्मिलित हैं। इस दिशा में इसके मुख्य प्रयास निम्नवत् हैं:

क. एक्जिम बैंक ऑफ इंडिया परियोजना निर्यातों के प्रोत्साहन में अग्रणी रहा है। बैंक अपने कार्यक्रमों व सेवाओं के द्वारा भारतीय परियोजना निर्यातकों को विदेशों में परियोजनाएं प्राप्त करने तथा विशेष रूप से बहुपक्षीय अनुदान एजेंसियों यथा विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक, अफ्रीकी विकास बैंक और यूरोपीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक आदि द्वारा वित्त पोषित परियोजना के अनुबंधों को प्राप्त करने में मदद प्रदान करता है। बैंक विदेशी वित्तीय संस्थाओं, विदेशी सरकारों और उनके एजेंसिया आदि को भारत से माल और सेवाओं का आस्थगित मूल्य पर आयात के लिए ऋण की लाइनों को बढ़ाता है। एक्जिम बैंक की क्रेडिट ऋण की लाइनें भारतीय निर्यातकों को जोखिम भुगतान का विकल्प प्रदान कर रही हैं।

ख. बैंक का विदेशी निवेश वित्त कार्यक्रम भारतीय विदेशों में निवेश और अधिग्रहण के लिए सुविधाओं की एक किस्म प्रदान करता है। इनमें भारतीय कंपनियों द्वारा विदेशी संयुक्त उद्यमों में इक्विटी भागीदारी के लिए ऋण, एक्जिम बैंक द्वारा प्रत्यक्ष इक्विटी भागीदारी सुविधाएं, गैर वित्तपोषी सुविधाएं जैसे साख पत्र और विदेशी उद्यम में स्थानीय उधारों की सुविधा की गारंटी शामिल हैं ।

ग. बैंक नई उत्पादन सुविधा की स्थापना, मौजूदा सुविधाओं के विस्तार, आधुनिकीकरण, उन्नयन और निर्यात उन्मुख लघु और मझौले उद्यमों को उत्पादन उपकरण या प्रौद्योगिकी के अधिग्रहण के लिए भारतीय रुपए विदेशी मुद्राओं में अल्पकालिक ऋण के माध्यम से वित्तीय सहायता प्रदान करता है विशेष रूप से ऐसी सुविधाएं जो निर्यात क्षमताओं के निर्माण और अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता के संवर्धन के लिए मददगार हों।

घ. अपने निर्यात विपणन कार्यक्रम के अन्तर्गत, एक्जिम बैंक लघु और मध्यम उद्यमों के निर्यात विपणन प्रयासों में सहायता करता है। इसमें रणनीतिक और व्यवस्थित निर्यात बाजार के विकास की योजना का कार्यान्वयन करने संबंधी नरम वित्तपोषण में समर्थन शामिल है।

ड. बैंक ने भारतीय ग्रामीण उद्योगों को विश्व बाजार से जोड़ने के उद्देश्य से एक ग्रामीण पहल कार्यक्रम शुरू किया है। इस कार्यक्रम से निर्यात की क्षमता के सृजन के माध्यम से गांवों की गरीबी दूर करने में सहायता मिलेगी।

च. लघु और मझौले उद्यमों की सहायता के लिए, बैंक ने निर्यात विपणन सेवाएं (EMS) नामक कार्यक्रम रखा है। ईएमएस के माध्यम से बैंक सबसे अच्छे प्रयासों के आधार पर, लघु और

मझौले क्षेत्र के उत्पादों को विदेशी बाजारों में स्थापन सुनिश्चित करता है। इसमें संभावित व्यवसाय साझेदारों की पहचान से अंतिम भुगतान आदेश तक की सुविधा है। यह सेवा सफलता शुल्क आधार पर प्रदान की जाती है।

छ. एक्जिम बैंक अपने वित्तपोषण कार्यक्रमों के साथ मूल्य संवर्धित सूचना, सलाहकारी व सहायता सेवाएं भी प्रदान करता है जो निर्यातकों को अंतरराष्ट्रीय जोखिमों का मूल्यांकन करने के लिए सक्षम करने, निर्यात के अवसरों का फायदा उठाने तथा प्रतिस्पर्धात्मकता की एक विस्तृत श्रृंखला के साथ उन्हें उनके वैश्वीकरण के प्रयासों में मदद करने में सहायक होता है।

(http://www.eximbankindia.com/hinmith/organisation-h.asp)

B. निवेश संस्थाएं -

ये वित्तीय मध्यवर्तियों (Financial intermediaries) के रूप में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं जो विशेष रूप से, लघु बचतकर्ताओं और निवेशकों की जरुरतों को पूरा कर रही हैं। वे अपनी आस्तियां मुख्य रूप से विपणन योग्य प्रतिभूतियों में नियोजित करती हैं।

1. **भारतीय जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation of India - LIC) -** इसकी स्थापना वर्ष 1956 में भारत सरकार के एक पूर्ण-स्वामित्व वाले निगम के रूप में की गई थी। जीवन बीमा निगम अधिनियम,956 द्वारा इसका गठन जीवन बीमा निगम का और अधिक व्यापक रूप से विशेष रूप से ग्रामीण इलाकों तक, विस्तार करने के उद्देश्य से किया गया था। यह आधारभूत ढांचे की सुविधाओं जैसे आवास, ग्रामीण विद्युतीकरण, जलापूर्ति, मल-व्यवस्था आदि के विकास के लिए भी सहायता प्रदान करता है। इसके अलावा, यह अन्य वित्तीय संस्थाओं को उनके शेयरों और बाण्डों आदि में अभिदान करने के माध्यम से संसाधन संबंधी सहायता भी प्रदान करता है। भारतीय जीवन बीमा निगम विदेशों में भी व्यापार का संचालन करता है और इसके कार्यालय, फिजी, मॉरिशस और संयुक्त राष्ट्र में हैं। शाखा संचालनों के अलावा, निगम के बहरीन, नेपाल और श्रीलंका में प्रसिद्ध स्थानीय साझेदारों के साथ संयुक्त रूप से विदेशी सहायक कंपनियां भी स्थापित की हैं। अपने वृहत वित्तीय संसाधनों के बूते यह औद्योगिक संस्था के रुप में अपनी पहचान लम्बे समय से बनाये हुए है।
2. **भारतीय यूनिट ट्रस्ट/ भारतीय इकाई प्रन्यास (Unit Trust of India - UTI) -** बचतों और निवेश को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से यू टी आई अधिनियम 1963, के तहत 1964 में इसकी स्थापना एक निकाय कॉर्पोरेट के तौर पर की गई। यह यूनिटों की बिक्री के जरिए लघु निवेशकों की बचतें जुटाता है और मुख्य रूप से द्वितीयक पूंजी बाजार संचालनों के जरिए उन्हें कॉर्पोरेट निवेशों में सारणीबद्ध (Channelize) करता है। इस प्रकार इसका मुख्य लक्ष्य मध्यम और न्यून आय वर्गों की बचतों को बढ़ावा देना और इस योग्य बनाना है कि वे देश के तेजी से बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण के लाभ उठा सकें। दिसम्बर, 2002 में, भारतीय यूनिट ट्रस्ट (उद्यम का अंतरण और निरसन) अधिनियम, 2002 पारित होने के साथ यू टी आई अधिनियम, 1963 को निरस्त कर दिया गया जिससे 1 फरवरी 2003 को यूटीआई दो कंपनियों यू टी आई-I और यू टी आई-II में विभाजित कर दिया गया।
3. **भारतीय साधारण बीमा निगम (General Insurance Corporation - GIC) -** साधारण बीमा और गैर-आजीवन बीमा के व्यापार के पर्यवेक्षण, नियंत्रण और संचालन के प्रयोजन के लिए साधारण बीमा व्यापार (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1972 (जी आई बी एन ए), के अनुसरण में इसका गठन किया गया। प्रारंभ में GIC की चार सहायक शाखाएं थीं, नामत: राष्ट्रीय बीमा कंपनी लि., दि न्यू इंडिया एश्युरेंस कंपनी लि., दि आरिएन्टल एश्युरेंस कंपनी लि. और यूनाइटिड इंडिया एश्युरेंस कंपनी लि.। लेकिन वर्ष 2000 में इन शाखाओं को जी आई सी से अलग करके साधारण बीमा सरकारी क्षेत्र संस्था- जी आई पी एस ए (General Insurance Public Sector Association - GIPSA) नामक संस्था का गठन किया गया।

C. राज्य स्तरीय वित्त संस्थाएं -

राज्य स्तर पर कई वित्तीय संस्थाएं स्थापित की गई हैं जो अखिल भारतीय संस्थाओं द्वारा प्रदान की गई वित्तीय सहायता की अनुपूर्ति करती हैं। ये अपने-अपने राज्यों में निवेश संवर्धन और औद्योगिक विकास के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती है। इनमें मुख्य रूप से राज्य वित्त निगम और राज्य औद्योगिक विकास निगम शामिल है।

1. **राज्य वित्तीय निगम (State Financial Corporations - SFCs) -** 28 सितम्बर, 1951 को संसद द्वारा पारित राज्य वित्तीय निगम अधिनियम 1951 के अन्तर्गत 1951 से 1955 के दौरान विभिन्न राज्यों में इन्हें स्थापित किया गया। राज्य स्तर की ये वित्तीय संस्थाएं अपने संबंधित राज्य में लघु और मध्यम उद्यमों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये सावधिक ऋणों, इक्विटी एवं ऋण-पत्रों में प्रत्यक्ष अभिदान, गारण्टियों, विनिमय हुण्डियों को भुनाने और आधार या विशेष पूंजी आदि के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। राज्य वित्त निगमों की स्थापना अधिक निवेश करने के लिए प्रोत्साहन देने और अधिक रोजगार सृजित करने और उद्योगों के स्वामित्व आधार को व्यापक बनाने के उद्देश्य से की गई है। इन्होंने नए प्रकार के व्यापारी कार्यकलापों जैसे कि पुष्प कृषि, ऊतक संवर्धन, कुक्कुट पालन, वाणिज्यिक परिसरों और इंजीनियरी, विपणन आदि से संबंधित सेवाओं के लिए भी सहायता देना शुरू कर दिया है। देश में 18 राज्य वित्त निगम हैं। *(http://business.gov.in/business_financing/financial_institutions.ph accessed on 27th March, 2012)*

   वर्ष 2003-04 की अवधि के बाद, इन संस्थानों की भूमिका में महत्वपूर्ण बदलाव आया। उच्च गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (NPA) और बदलते आर्थिक परिदृश्य का सामना करते हुए, उनका प्राथमिक कार्य पारंपरिक औद्योगिक सावधि वित्तपोषण से हटकर औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने, राज्य सरकार की योजनाओं के लिए एजेंट के रूप में कार्य करने और सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) को समर्थन देने जैसी व्यापक भूमिकाओं में परिवर्तित हो गया।

2. **राज्य औद्योगिक विकास निगम (State Industrial Development Corporation - SIDC) -** इनकी स्थापना कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत राज्य सरकारों के एक पूर्ण-स्वामित्व वाले उद्यम के रूप में की गई। इनकी स्थापना अपने-अपने राज्यों में औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने और छोटे उद्यमियों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से की गई है। ये निजी उद्यमियों अथवा पूर्ण-स्वामित्व वाली सहायक कंपनियों के सहयोग से संयुक्त क्षेत्रध्सहायता प्राप्त क्षेत्र में मध्यम एवं बड़ी औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना करने का कार्य भी करते हैं। ये कई तरह के संवर्धनात्मक कार्य भी कर रहे हैं जैसे कि संभाव्यता रिपोर्ट तैयार करनाय उद्यम संबंधी प्रशिक्षण और विकास कार्यक्रमय तथा औद्योगिक क्षेत्रों एवं संपदाओं का विकास करना। *(http://business.gov.in/business_financing/financial_institutions.ph accessed on 27th March, 2012)*

   वर्ष 2003 से राज्य वित्त निगमों की भॉति इनकी भूमिका भी पूरी तरह बदल गयी है-अब ये औद्योगिक वित्त के बजाय अपने राज्य सरकारों के निर्देशानुसार उद्योगों के प्रवर्तन (promotion) का कार्य कर रहे हैं।

D. सरकारी निधियन और योजनाएं

उद्यमी को न केवल अपने व्यापार की स्थापना करने के लिए निरंतर निधियों के प्रवाह की आवश्यकता होती है अपितु सफल संचालन तथा नियमित उन्नयन की भी आवश्यकता होती है। औद्योगिक यूनिट के आधुनिकीकरण के लिए भी इसकी आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए सरकार (केंद्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर) बैंकों और वित्त संस्थाओं की स्थापना करना, विभिन्न नीतियों और

योजनाएं बनाना आदि जैसे अनेक कदम उठाए हैं। ऐसे सभी उपाय विशिष्ट रूप से लघु और मध्यम उद्यमों के संवर्धन और विकास पर संकेंद्रित हैं।

जहाँ अखिल भारतीय व राज्य स्तरीय विकास वित्त बैंक उद्योगो को मियादी व उत्प्रेरक (catalytic) सहायता के साधन हैं वही सरकारी क्षेत्र के बैंक औद्योगिक क्षेत्र के मुख्य व दिन प्रतिदिन के वित्त पोषण सहायता के स्रोत हैं। वे ऋण, अग्रिम, हुंडियों पर बट्टा, परियोजना वित्त पोषण, मियादी ऋण निर्यात वित्त पोषण आदि के रूप में कंपनियों को ऋण सहायता मुहैया कराते हैं। ऐसे बैंकों के कुछ उदाहरण हैं-

1. **भारतीय स्टेट बैंक (State Bank of India - SBI)** व्यापक दायरे में वित्तीय उत्पाद और सेवाएं मुहैया कराता है जो किसी व्यापार या बाजार आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं। यह कॉर्पोरेट जगत द्वारा सामना की जाने वाली सभी वित्तीय चुनौतियों के लिए एकीकृत समाधान प्रदान करने हेतु विभिन्न रास्ते अपनाता है। इसकी विभिन्न निधियन योजनाएं हैं -
   क. कार्यशील पूंजी वित्त पोषण, सभी उद्योगों और सेवा क्षेत्रकों को प्रदान किया जाता है।
   ख. नए उद्यमों की स्थापना करने तथा विस्तार पुनरुद्धार आदि के लिए पूंजी क्रय की सहायता के लिए कॉर्पोरेट मियादी ऋण
   ग. पूंजी उपकरण की खरीद की सहायता के लिए आस्थगित भुगतान (Deferred Payment) गारंटी
   घ. परियोजना वित्त पोषण
   ड. संरचना वित्त पोषण
2. **बैक ऑफ बड़ौदा** यह विभिन्न प्रकार के उत्पाद और सेवाएं प्रदान करता है जो व्यापार उद्यमों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करता है विशेषकर लघु इकाईयों के लिए बैंक द्वारा ऋण और अग्रिम से संबंधित विभिन्न योजनाओं में निम्नलिखित शामिल हैं -
   क. कार्यशील पूंजी ऋण
   ख. मियादी वित्त पोषण (medium & Long term Financing)
   ग. लघु और मझोले उद्यम (SMEs) ऋण पैक
   घ. लघु व्यापार उधारकर्ता
   ड. व्यापारी ऋण
3. **आंध्रा बैंक** में भी उद्यम की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेकानेक ऋण योजनाएं तैयार की गई हैं। ये विशेष रूप से कॉर्पोरेट और कार्षिक क्षेत्र की पूर्ति करती है। इसके कुछ महत्वपूर्ण निधियन विकल्पों में निम्नलिखित शामिल हैं -
   क. कार्यशील पूंजी ऋण
   ख. निर्यात एवं आयात वित्त पोषण
   ग. शेयरों के लिए अग्रिम
   घ. मियादी वित्त पोषण
   ड. कॉर्पोरेट ऋण
   च. परियोजना वित्त पोषण
   छ. मूल सरंचना परियोजना वित्त पोषण
   ज. स्व सहायता समूह बैंक संबद्ध कार्यक्रम

E. लघु उद्योग वित्त हेतु सरकारी याजनाएं

लघु उद्योगों को उद्यम चलाने तथा इसके विविधीकरण और आधुनिकीकरण के लिए निरंतर ऋण समर्थन की आवश्यकता होती है। ऐसे उद्योगों के लिए संकेन्द्रित वित्तीय सहायता की आवश्यकता को मानते हुए भारत सरकार ने राज्य सरकारों के साथ वृद्धि और विकास के लिए योजनाओं और निधियों

सहित अनेकानेक नीतिगत पेकेज तैयार किए हैं। केंद्रीय सरकार के इन अधिकांश कार्यक्रमों का क्रियान्वयन दो मुख्य संगठनों के माध्यम से किया जाता है।

1. **लघु उद्योग विकास संगठन (Small Industries Development Organisation - SIDO) -** यह देश में लघु उद्योग के संवर्धन और विकास के लिए एक शीर्ष निकाय है। इसके मुख्य क्रियाकलापों में निम्नलिखित शामिल हैं -

   क. लघु उद्योगों के लिए नीतियां और कार्यक्रम बनाने में सरकार को सलाह देना।

   ख. लघु उद्योगों की समय समय पर गणना/सर्वेक्षण करना और क्षेत्रक की वृद्धि और विकास के लिए महत्वपूर्ण मानदण्डों एवं संकेतकों संबंधी आँकड़ों की रिपोर्ट तैयार करना।

   ग. अन्य केंद्रीय मंत्रालयों, योजना आयोग, राज्य सरकारों, वित्त संस्थाओं और लघु उद्योग के विकास से संबंधित अन्य संगठनों के साथ निकट संपर्क रखना।

   घ. बड़े और मझोले उद्योगों के अनुषंगी के रूप में लघु उद्योगों के साथ संपर्क सुसाध्य बनाना।

   ड. प्रशिक्षण और कौशल उन्नयन्न के माध्यम से मानव संसाधन आधार का विकास करना।

   अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए ऋण सुविधाएं प्रदान करने, प्रौद्योगिकी सहायता सेवाएं और विपणन सहायता आदि मुहैया कराने के लिए सिडो ने व्यापक दायरे में योजनाएं तैयार की है -

   क. प्रौद्योगिकी उन्नयन के लिए ऋण सहबद्ध पूंजी आर्थिक सहायता योजना

   ख. ऋण गारंटी योजना

   ग. ISO 9000 ISO 14001 प्रमाणीकरण प्रतिपूर्ति योजना

   घ. एकीकृत अवसंरचना विकास

   ड. एस एस आई एम डी ए योजना

   च. उद्यम विकास संस्थानों को सहायता

   छ. माइक्रो (सूक्ष्म) वित्त पोषण कार्यक्रम (इनका विवरण सहकारी वित्त के स्त्रोतों के अर्न्तगत आगे दिया गया है)।

2. **राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लि. (National Small Industries Corporation Ltd.- NSIC) -** इसकी स्थापना देश में लघु उद्योगों के संवर्धन, उनकी सहायता और विकास करने के उद्देश्य से की गई है। यह लघु उद्योगों को विशेष रूप से आवश्यकता आधारित योजनाओं के माध्यम से सहायता करता रहा है, जो विपणन सहायता, ऋण सहायता, प्रौद्योगिकी सहायता और अन्य सहायता सेवाएं मुहैया कराता है।

   क. विपणन सहायता योजनाएं (Marketing Support Schemes) - लघु उद्यमों के विकास और उत्तरजीवित्ता के लिए चुस्त-दुरुस्त विपणन महत्वपूर्ण है। एन एस आई सी लघु उद्योगों के उत्पादों का संवर्धन करने में सुसाध्यकर्ता के रूप में कार्य करता है और इसने लघु उद्यमों को उनके विपणन में सहायता करने के लिए अनेकानेक योजनाएं तैयार की है।

   ख. ऋण सहायता योजनाएं (Credit Support Schemes) - एनएसआईसी विभिन्न क्षेत्रों में लघु उद्यमों की ऋण आवश्यकताएं सुलभ उपलब्ध कराती है। इनमें निम्नलिखित शामिल हैः-

   i. उपकरण का वित्त पोषण - किराया खरीद और मियादी ऋण उपकरण की खरीद के लिए के माध्यम से।

   ii. कच्ची सामग्री की खरीद के लिए वित्त पोषण - प्रतिस्पर्धी दर पर मूल कच्ची सामग्री की थोक खरीद, विरल कच्ची सामग्री का आयात आदि को सुसाध्य बनाने के द्वारा। एन एस आई सी आयातों के मामले में सभी प्रक्रियाओं, प्रलेखन और ऋण पत्र निर्गम की भी देख रेख करता है।

   iii. विपणन क्रियाकलापों के लिए वित्त पोषण - जैसाकि आंतरिक विपणन, निर्यात और हुण्डी बट्टा आदि।

iv. **बैकों के साथ सहयुक्त रूप से (syndication) वित्त पोषण -** वाणिज्यिक बैंकों के साथ कार्यनीतिक गठबंधन करता है ताकि लघु उद्यमों की निधि आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। यह इच्छुक लघु उद्यमों के ऋण आवेदनों को बैंकों को अग्रेषित करने की व्यवस्था करता है।

v. **लघु उद्योगों के लिए निष्पादन और ऋण की दर का निर्धारण -** ताकि लघु उद्यमों को अपने विद्यमान प्रचालनों की खूबियों और कमियों को जानने में और तद्नुसार उपचारात्मक उपाय करने में समर्थ बनाया जा सके। एनएसआईसी योजना का संचालन ICRA, ONICRA, डन्स एवं ब्राड स्ट्रीट (Duns & Brandstreet (D&B) क्रिसील, फिच, केयर और स्मेरा (CRISIL, FITCH, CARE and SMERA) के माध्यम से करता है।

ग. प्रौद्योगिकी सहायता योजना - एन एस आई सी लघु यूनिटों के लिए विभिन्न सहायता सेवाएं अपने तकनीकी सेवा केंद्रों और विस्तार केंद्रों के माध्यम से देता है। प्रदत्त सेवाओं में नए तकनीक के अनुप्रयोग संबंधी सलाह, प्राधिकृत प्रयोगशालाओं द्वारा सामग्री परीक्षण, चयनित केंद्रों पर ऊर्जा और पर्यावरण सेवाओं, कौशल उन्नयन हेतु कक्षा और व्यावहारिक प्रशिक्षण।

राज्य स्तर पर विभिन्न राज्य वित्त निगम वित्त निगमों (SFCs) ने समय-समय पर निधियां और योजनाएं चलाई गई हैं।

15.3.2. निजी क्षेत्र

A. कॉर्पोरेट ऋण बाज़ार

भारत में कॉर्पोरेट बांड बाजार कुल बांड बाजार का केवल 14 प्रतिशत है। कॉर्पोरेट बांड और प्रतिभूतिकरण बाजारों का विकास एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है जिसे अभी हाल ही में नीतिगत महत्व दिया गया है। देश में आधारभूत ढांचे के विकास के लिए संसाधन जुटाने के अलावा दीर्घावधिक पूंजी निवेश के लिए कॉर्पोरेट क्षेत्र की जरूरतों को पूरा करने में बैंकिंग प्रणाली के पूरक के रूप में काम करने के लिए अच्छे-खासे सुविकसित बांड बाजार का होना आवश्यक है।

कॉर्पोरेट बांड बाजार का विकास करने के उद्देश्य से सेबी ने प्राथमिक ऋण बाजार में निर्गम प्रक्रिया के सरलीकरण का प्रस्ताव किया है। प्रस्तावित विनियमों की कुछ प्रमुख विशेषताओं में शामिल हैं- प्रकटन अपेक्षाओं का यौक्तिकीकरण, सम्यक तत्परता बरतने और नए निर्गमों के संबंध में प्रमाण पत्र जारी करने के लिए वाणिज्यिक ब्रोकरों को अधिक जिम्मेदारियां और ऋण के निजी नियोजन का अनिवार्य सूचीकरण।

परिष्कृत अत्याधुनिक वित्तीय अवसंरचना के साथ युग्मित आर्थिक उत्साहशीलता ने भारत के इक्विटी बाजारों की तीव्र वृद्धि में यागदान दिया है। बाजार लक्षणों और गहनता के अर्थ में भारतीय इक्विटी बाजार का स्थान विश्व के सर्वोत्तम बाजारों में आता है। इसके समानान्तर पिछले वर्षों में सरकारी प्रतिभूति बाजार का भी विकास और सरकार की बढ़ती हुई उधार अपक्षाओं को देखते हए विस्तार हुआ है। इसके विपरीत, बाजार प्रतिभागिता और संरचना दोनों के संदर्भ में कॉरपोरेट बांड बाजार पिछड़ गया है। गैर-बैंक वित्तीय कंपनियां मुख्य निगमकर्ता हैं और कंपनियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से बहुत कम राशियां जुटाई जाती हैं। इसके अनेक कारण हैं -

क. बैंक ऋणों की प्रबलता।

ख. FII की प्रतिभागिता सीमित।

ग. निवेशक विश्वास की कमी के कारण पेंशन और बीमा कंपनियां तथा परिवार सीमित भागीदार।

घ. सरकारी बांडों द्वारा निष्कासित किया जाना।

B. गैर बैंकिंग वित्त कंपनियां (Non-Banking Financial Companies - NBFC)

गैर बैंकिंग वित्त कंपनियां भारतीय वित्तीय प्रणाली की महत्वपूर्ण श्रेणी के रूप में तेजी से उभर रही हैं। यह संस्थाओं का विजातीय समूह है (वाणिज्यिक व सहकारी बैंकों को छोड़कर) जो विभिन्न तरीकों से वित्तीय मध्यस्थता का कार्य करता है जैसे जमा स्वीकार करना ऋण और अग्रिम देना, पट्टा किराया खरीद आदि। वे जनता से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में निधियां जुटाती हैं और अंतिम व्यय कर्ता को उधार देती हैं। वे विभिन्न थोक और खुदरा व्यापारियों को लघु उद्योगों और स्वरोजगारी व्यक्तियों को अग्रिम ऋण देती हैं। इस प्रकार से उन्होंने वित्तीय क्षेत्रक (sector) द्वारा प्रदत्त उत्पादों और सेवाओं का विविधीकरण और विस्तार किया है। धीरे-धीरे उनकी पहचान उनकी ग्राहकोन्मुखी सेवाओं, सरलीकृत प्रक्रियाओं, जमाओं पर प्रतिफल की आकर्षक दरों, लचीलापन और विशिष्ट क्षेत्रक की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने में समयनिष्ठा आदि के कारण बैंकिंग क्षेत्र के पूरक के रूप में हो रही है।

दूसरे शब्दों में, एक गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनी (NBFC) है कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत पंजीकृत एक कंपनी जो ऋण और अग्रिम के व्यापार, शेयर/शेयर स्टॉक/ बाण्ड-खरीद, बीमा कारोबार का अधिग्रहण या चिट व्यापार में संलग्न रहती है; लेकिन किसी भी संस्था जिसके प्रमुख व्यवसाय में कृषि या औद्योगिक गतिविधियां या अचल संपत्ति की बिक्री, खरीद या निर्माण शामिल हैं, को सम्मिलित नहीं करता। (http://www.rediff.com/money/2007/jul/20nbfc.html)

गैर बैंकिंग वित्त कंपनियां के कार्यचालन और संचालन का विनियमन भारतीय रिजर्व बैंक (आर बी आई) द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 (अध्याय III ख) के ढांचे और इसके द्वारा अधिनियम के तहत जारी किए गए निदेशनों के अधीन किया जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के अनुसार गैर बैंकिंग वित्त कंपनी को निम्न तरीके से परिभाषित किया गया है -

क. एक वित्त संस्था जो कंपनी है।

ख. एक गैर बैंकिंग संस्था जो कंपनी है और इसका मुख्य व्यापार के रूप में किसी योजना या व्यवस्था के अधीन अथवा किसी अन्य तरीके से जमा प्राप्त करना अथवा किसी तरीके से उधार देना हैं।

ग. ऐसी अन्य गैर बैंकिंग संस्थान या ऐसी संस्थाओं का वर्ग जैसा कि केंद्रीय सरकार के पूर्वानुमोदन और सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बैंक विनिर्दिष्ट करता है।

अधिनियम के अधीन NBFC के लिए जमा करने वाली कंपनी के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक में पंजीकरण करना अनिवार्य हैं। भारतीय रिजर्व बैंक में पंजीकरण के लिए कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत निगमित कंपनी और गैर बैंकिंग वित्तीय संस्था के रूप में कार्य करने आरंभ करने के इच्छुक के पास कम से कम निवल स्वामित्व की निधि (NOF) 200 लाख रुपए की होनी चाहिए। शब्द NOF का अर्थ है स्वामित्व की निधि जिसकी गणना भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 45-IA (7)(I) के अनुसार इस प्रकार होनी है-

(क) चुकता पूंजी और मुक्त संचय के योग में से घटाएं
(संचयी हानि + आस्थगित आयगत व्यय में आया अंतर +अन्य अमूर्त परिसंपत्तियां)

(ख) यदि निम्नलिखित उपरोक्त (अ) से 10 प्रतिशत से अधिक होता है तो इन्हें भी पूर्वोक्त में से घटाएं

i. अनुषंगी / कम्पनियों के उसी समूह में / अन्य सभी एन बी एफ सी के शेयरों में निवेश और

ii. ऋण-पत्रों / बांडों / बकाया ऋणों और अग्रिमों का बही मूल्य, इसमें किराया खरीद और पट्टा वित्त जो उसी समूह की अनुषंगी / कंपनियों को दिया जाता है और उनमें जमा किया जाता है।

केवल वे ही एनबीएफसी जिनके पास वैध प्रमाणपत्र है, सार्वजनिक जमा स्वीकार / रख सकते हैं। सार्वजनिक जमा स्वीकार करने वाले एन बी एफ सी को गैर बैंकिंग वित्त कंपनी सार्वजनिक जमा स्वीकार करने के निदेशन 1998 {Non-Banking Financial Companies Acceptance of Public Deposits (Reserve Bank) Directions, 1998} जैसाकि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी

किया गया है, का अनुपालन करना चाहिए। एन बी एफ सी द्वारा जमा स्वीकार करने से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण विनियम निम्नलिखित हैं -

क. उनके लिए कम से कम 12 माह की अवधि के लिए और अधिकतम 60 माह की अवधि के लिए

ख. सार्वजनिक जमाओं को स्वीकार/नवीकरण करने की अनुमति है।

ग. वे मांग पर पुनर्भुगतान योग्य जमा स्वीकार नहीं कर सकते हैं।

घ. वे समय-समय पर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित अधिकतम सीमा से अधिक ब्याज दर नहीं दे सकते हैं।

ड. वे जमाकर्ताओं को उपहार/प्रोत्साहन या अन्य अतिरिक्त लाभ नहीं दे सकते हैं।

च. उनका न्यूनतम निवेश ग्रेड क्रेडिट रेटिंग होनी चाहिए।

छ. उनकी जमाओं का बीमा नहीं किया जाता है।

ज. एन बी एफ सी द्वारा जमाओं के पुनर्भुगतान की गारंटी भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नहीं दी जाती है।

C. लघु और मध्यम उद्यमों (Small and Medium Enterprises -SMEs) के लिए इक्विटी वित्त

जरूरतमंद लघु तथा मध्यम उद्यमों को वित्तीय साधन उपलब्ध कराने की आवश्यकता को स्वीकारते हुए SEBI Board ने 25 अक्तूबर, 2007 को एसएमई के लिए एक पृथक एक्सचेंज का सृजन करने के लिए सहमति दे दी थी। सेबी बोर्ड ने 6 अक्तूबर, 2008 को यह निर्णय लिया कि एसएमई द्वारा निगर्मित प्रतिभूतियों के सूचीयन और और कारोबार के लिए समर्पित एक्सचेंजों अथवा विद्यमान एक्सचेंजों के समर्पित मंचों के संवर्धन को प्रोत्साहन दिया जाए। 9 नवम्बर, 2009 को, सेबी बोर्ड ने लघु तथा मध्यम उद्यमों के लिए एक्सचेंजों/स्टॉक एक्सचेंजों के मंचों के प्रचालनात्मक पहलुओं के संबंध में निर्णय लिया। तदनुसार, सेबी ने राष्ट्रव्यापी कारोबार टर्मिनलों वाले मान्यताप्राप्त स्टॉक एक्सचेंजों द्वारा एसएमई के लिए एक स्टॉक एक्सचेंज/कारोबारी मंच का गठन करने की अनुमति दे दी है तथा साथ ही एसएमई एक्सचेंज में सूचीबद्व विनिर्दिष्ट प्रतिभूतियों के लिए बाजार निर्माण हेतु दिशानिर्देश भी जारी कर दिए हैं। इसके अतिरिक्त, सेबी विनियमों में भी आवश्यक संशोधन किए गए हैं।

D. उद्यम पूंजी (Venture Capital)

उद्यम पूंजी लघु और मध्यम आकार के फार्मों के लिए महत्वपूर्ण वित्त पोषण के स्रोत हैं, जिनके पास निधियां जुटाने के बहुत ही कम मार्ग हैं। यद्यपि, ऐसे व्यापार फर्मों के पास भविष्य में लाभ अर्जन की अपार क्षमता होती है और अपने आप को बड़े उद्यम के रूप में स्थापित करने की क्षमता होती है परन्तु आम निवेशक इस प्रकार के निवेशों में जोखिम शामिल होने के कारण उनमें अपनी निधियां निवेश करना नहीं चाहते हैं। ऐसे उद्यमी क्षमता और व्यापार कौशल को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए उद्यम पूंजी की अभिकल्पना उभर कर सामने आयी। उद्यम पूंजी एक तरह से पूंजी निवेश की वचनबद्धता (Commitment) है या शेयर धारिता है जो उनके जीवन के आरम्भिक अवस्था में लघु उद्यमों के गठन और स्थापना के लिए है।

उद्यमी पूंजीपति विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों से आते हैं। वे परियोजना की सावधानी पूर्वक जांच करने के बाद इन फार्मों के लिए निधियां (जो उद्यम पूंजी निधि के रूप में जाना जाता है) प्रदान करते हैं। उनका मुख्य लक्ष्य अपने निवेशों पर अधिक प्रतिफल प्राप्त करना है परन्तु उनकी अभिकल्पनाएं पारम्परिक उधारदाताओं से बिल्कुल भिन्न होती हैं। वे अच्छी तरह से जानते हैं कि यदि कुछ परियोजनाओं में हानि भी होती है तो अधिक प्रतिफल के कारण दूसरे से उसकी प्रतिपूर्ति हो सकती है। वे कंपनी के प्रबंधन में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं तथा विशेषज्ञता की सेवा और अच्छे बैंकर, प्रौद्योगिकियों, योजनाकर्ता एवं प्रबंधक की अच्छी गुणवत्तापूर्ण सेवा देते हैं। इस प्रकार से उद्यम पूंजीपति और उद्यमी प्रकारान्तर से साझेदार के रूप में कार्य करते हैं।

उद्यम पूंजी विभिन्न अवस्थाओं के वित्त पोषण को मान्यता देता है -

क. आरम्भिक अवस्था का वित्तपोषण - यह प्रथम अवस्था का वित्त पोषण है जब फार्म उत्पादन शुरू करता है और अपने उत्पाद को बेचने के लिए इसे अतिरिक्त निधि की आवश्यकता होती है। इनमें उद्यमी की अभिकल्पना या विचारों की सहायता करने के लिए बीज या आरंभिक वित्तीय सहायता (seed or initial finance) निहित है। पूंजी उत्पाद विकास, अनुसंधान और विकास और आरंभिक विपणन के लिए दी जाती है।

ख. विस्तार के लिए वित्त पोषण - यह कार्यशील पूंजी और व्यापार विस्तार के लिए द्वितीय अवस्था का वित्त पोषण है। इसमें सार्वजनिक निर्गम सुगम बनाने के लिए विकास वित्त पोषण शामिल है।

ग. अधिप्राप्ति या खरीद वित्त पोषण - इस बाद की अवस्था में निम्नलिखित शामिल होते हैं

अ. और अधिक वृद्धि के लिए दूसरे फर्म को प्राप्त करने के निमित्त अधिग्रहण वित्त पोषण

ब. प्रबंधन खरीद वित्त पोषण ताकि कार्यचालन समूहोंध्निवेशकों को मौजूदा उत्पाद या व्यापार का अधिग्रहण करने में समर्थ बनाया जा सके।

स. रुग्ण उद्यमों को पुनर्जीवित्त और पुनःबहाल करने के लिए संपूर्ण कायाकल्प वित्त पोषण (Turnaround Financing)।

15.3.3. सहकारी क्षेत्र

A. लघु वित्त

लघु वित्त या व्यष्टि-वित्त का मतलब है, उपभोक्ताओं तथा स्व-नियोजित व्यक्तियों सहित निम्न आय वर्ग के ग्राहकों को वित्तीय सेवाएं मुहैया कराना। स्थूल रूप से, यह एक ऐसे आंदोलन की ओर इंगित करता है जिसमें परिकल्पना की गई है एक ऐसे दुनिया की, जहां यथासंभव, गरीबों और गरीबी के कगार पर खड़े लोगों को, न सिर्फ ऋण बल्कि बचत, बीमा और निधि-अंतरण सहित उच्च गुणवत्ता वाली उपयुक्त श्रेणी की वित्तीय सेवाएं स्थाई तौर पर सुगम हों।

व्यष्टि-वित्त या माइक्रोफाइनांस संस्थान (MFIs) वंचितों और गरीब समुदायों को वित्तीय सेवाओं की पेशकश करते हैं। इसी प्रयास में अतिलघु उद्यमों व उद्योगों का वित्तपोषण भी निहित है। ये जिन स्व सहायता समूहों (self help groups - SHGs) को उधार देते है या इनके वित्तपोषण में बैंकों के साथ मध्यस्थता करते हैं वे SHGs वास्तव में सहकारी क्षेत्र के अनौपचारिक किन्तु अधिक प्रभावी हिस्सा बने हुए हैं। माइक्रोफाइनांस संस्थानों की बड़ी संख्या बैंक वित्त सहित वित्तपोषण के लिए व्यापक पहुँच पाने के लिए रिजर्व बैंक से गैर-बैंकिंग वित्त कंपनी (NBFC) स्थिति की मांग कर रही है। *(http://economictimes.indiatimes.com/News/News_By_Industry/Finance__Insurance/Finance/MFIs_go_for_NBFC_licences_for_better_access_to_funds/articleshow/988065.cms)*

1999 में नाबार्ड द्वारा व्यष्टि-वित्त के लिए सहायक नीतियों और विनियामक ढांचे पर गठित टास्क फोर्स ने विभिन्न सिफारिशें की। तदनुसार, कंपनी अधिनियम, 1956, की धारा 25 के अंतर्गत जो लाइसेंसधारी एनबीएफसी व्यष्टि-वित्तपोषण कार्य में लगे हुए हैं और जो सार्वजनिक जमा स्वीकार नहीं करते, उन्हें भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 45-IA (पंजीकरण), 45-IB (तरल संपत्ति के रखरखाव) और 45-IC (आरक्षित निधि के लिए मुनाफे का हस्तांतरण) के क्षेत्राधिकार से छूट देने का निर्णय लिया गया।

(http://rbi.org.in/scripts/NotificationUser.aspx?Id=3651&Mode=0)

लघु वित्त संस्थाओं को बैंक ऋणः प्राथमिकता प्राप्त-क्षेत्रक की प्रास्थिति

भारतीय रिजर्व बैंक ने लघु वित्त क्षेत्र के मुद्दों और सरोकारों का अध्ययन करने के लिए गठित समिति (अध्यक्ष) श्री वाईएच मालेगमद्ध द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर आर बी आई द्वारा सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को सलाह दी गई है कि 1 अप्रैल 2011 को अथवा उसके बाद से लघु वित्त संस्थाओं को व्यक्तियों को आगे उधार देने तथा एसएचजी या संयुक्त-दायित्व समूह (Joint Liability Groups - JLGs) के सदस्यों को दिए गए बैंक ऋण कृषि, एमएसई और लघु ऋण (अन्य प्रयोजनों के लिएद्ध की श्रेणियों के तहत अप्रत्यक्ष वित्त के तौर पर प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्रक के अग्रिम के रूप में माने जाने के लिए) पात्र होंगे, बशर्ते एमएफआई की कुल आस्तियों का कम से कम 85 प्रतिशत (बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं के पास नकद शेष, सरकारी प्रतिभूतियों और मुद्रा बाज़ार लिखतों को छोड़कर) अर्हक आस्तियों के स्वरूप का हो। इसके अतिरिक्त, एम एफ आई द्वारा आय अर्जन क्रियाकलाप के लिए दी गई ऋण की कुल राशि, कुल ऋणों के 75 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए।

एनबीएफसी- एमएफआई के लिए प्रविष्टि मापदण्ड, पूंजी की आवश्यकता और परिसम्पत्ति वर्गीकरण के विवेकशील मापदण्ड और प्रावधान संबंधी मापदण्ड निर्धारित किए गए हैं। एनबीएफसी-एमएफआई को ऋण के मूल्य (ब्याज दर) निर्धारण के बारे में अर्थात अधिकतम 12 प्रतिशत की समग्र मार्जिन सीमा कायम करने की भी सलाह दी गई थी। ब्याज की लागत बकाया उधारों के पाक्षिक औसत शेष पर और ब्याज की आय अर्हक परिसम्पत्तियों के बकाया ऋण पोर्टपफोलियो के पाक्षिक औसतशेष पर परिकलित की जाएगी। व्यष्टि ऋणों पर ब्याज प्रतिवर्ष 26 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा और यह कम होते शेष के आधार पर परिकलित किया जाएगा। प्रक्रियान्वयन शुल्क (ProcessingCharges) सकल ऋण राशि के 1 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। इस प्रक्रियान्वयन शुल्क को मार्जिन सीमा या ब्याज की सीमा में शामिल करने की जरूरत नहीं है।

हाल में NBFCs और MFIs की गम्भीर आलोचनाओं तथा गिरती छवि के मद्देनजर ऋण लेने की उचित प्रक्रिया और ब्याज की दरों में पारदर्शिता लाने के लिए RBI द्वारा अनुदेश भी जारी किए गए है। अनेकानेक ऋण लेने, ज़रूरत से अधिक उधार लेना और फर्जी उधारकर्ताओं पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। एनबीएफसी-एमएफआई को ऋण की वसूली के लिए दबाव न डालने वाले तरीको को अपनाने की सलाह दी गई है। इसके अलावा, कॉर्पोरेट अभिशासन (corporate governance) से संबंधित निर्देश भी जारी किए गए हैं। एनबीएफसी-एमएफआई को अपने बैक-ऑफिस के संचालनों की समीक्षा और सूचना प्रौद्योगिकी एवं प्रणालियों में आवश्यक निवेश करने की सलाह दी गई है ताकि बेहतर नियंत्रण किया जा सके, प्रक्रियाएं सहज हो सकें तथा लागत कम की जा सके।

15.4 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. प्रारंभ में भारतीय साधारण बीमा निगम की चार सहायक शाखाएं थीं।
2. भारत सरकार द्वारा भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना IDBI के पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी के रूप में 2 अप्रैल, 1989 में की गई थी। ।
3. बचतों और निवेश को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से यू टी आई अधिनियम 1963, के तहत 1964 में भारतीय इकाई प्रन्यास की स्थापना एक निकाय कॉर्पोरेट के तौर पर की गई।।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना .... वर्ष हुई थी।
   (1964 **या** 1992)
2. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लि. की स्थापना .... वर्ष हुई थी ।
   (1925 **या** 1948)

3. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना .... वर्ष हुई थी।
(1990 **या** 1964)
4. भारतीय निर्यात-आयात बैंक अधिनियम 1981 के तहत .... वर्ष में स्थापित देश की प्रमुख निर्यात वित्त संस्था है।
(1982 **या** 1990)
5. 28 सितम्बर, 1951 को संसद द्वारा पारित राज्य वित्तीय निगम अधिनियम 1951 के अन्तर्गत के दौरान विभिन्न राज्यों में राज्य वित्तीय निगम को स्थापित किया गया। ।
(1951 से 1955 **या** 1961 से 1965)

15.5 सारांश

इस अध्याय में आपको बताया गया कि भारत में, अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को पर्याप्त मात्रा में ऋण मुहैया कराने के लिए देश की वित्तीय संस्थाओं का एक सुविकसित तंत्र तैयार किया गया है जिनमें शामिल हैं: (i) मियादी या सावधि उधार देने वाली संस्थाएं जिनका मुख्य कार्यकलाप सावधि ऋणों और निवेशों के रूप में प्रत्यक्ष उधार देना है, (ii) पुनर्वित्त संस्थाएं जो मुख्यत: बैंकों के साथ-साथ गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के लिए पुनर्वित्तपोषण की व्यवस्था करते हैं और (iii) निवेश संस्थाएं जो अपनी परिसम्पत्तियां बड़े पैमाने पर बाजार में मुख्यतया विपणनीय प्रतिभूतियों में लगाती हैं।

ये संस्थाएं ब्याज की उचित दरों पर दीर्घावधि और मध्यावधि ऋण प्रदान करती हैं। वे कंपनियों के ऋण पत्र निर्गमों के लिए अभिदान करती है, शेयर के सार्वजनिक निर्गमों का अभिगोपन करती है, ऋणों एवं आस्थगित भुगतानों की गारंटी देती हैं आदि। यद्यपि राज्य स्तर की संस्थाएं मुख्य रूप से मध्यम और लघु उद्यमों के विकास से संबंधित हैं लेकिन ये राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं की भांति उसी तरह की वित्तीय सहायता इन्हें भी प्रदान करती हैं।

लघु उद्योगों को उद्यम चलाने तथा इसके विविधीकरण और आधुनिकीकरण के लिए निरंतर ऋण समर्थन हेतु संकेन्द्रित वित्तीय सहायता की आवश्यकता को मानते हुए भारत सरकार ने राज्य सरकारों के साथ वृद्धि और विकास के लिए योजनाओं और निधियों सहित अनेकानेक नीतिगत पेकेज उपलब्ध कराए हैं। व्यष्टि-वित्त या माइक्रोफाइनांस संस्थान भी अतिलघु उद्यमों व उद्योगों को वित्तीय सेवाओं की पेशकश करते हैं।

15.6 शब्दावली

- **अखिल भारतीय विकास बैंक -** इसमें वे विकास बैंक शामिल हैं जिनमें न केवल बड़े और मध्यम उद्यमों को ऋण प्रदान किया जाता है बल्कि ये लघु स्तर की औद्योगिक इकाइयों के प्रवर्तन और विकास में भी सहायता करते हैं।
- **उद्यम पूंजी -** लघु और मध्यम उद्यमों के गठन के लिए उनके विकास के प्रारम्भिक चरणों में निधियन का महत्वपूर्ण स्रोत है।
- **गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनी -** कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत पंजीकृत एक कंपनी जो ऋण और अग्रिम के व्यापार, शेयर/ शेयर स्टॉक/ बाण्ड-खरीद/ बीमा कारोबार का अधिग्रहण या चिट व्यापार में संलग्न रहती है; लेकिन किसी भी संस्था जिसके प्रमुख व्यवसाय में कृषि या औद्योगिक गतिविधियां या अचल संपत्ति की बिक्री, खरीद या निर्माण शामिल हैं, को सम्मिलित नहीं करता।
- **लघु वित्त या व्यष्टि-वित्त -** उपभोक्ताओं तथा स्व-नियोजित व्यक्तियों सहित निम्न आय वर्ग के ग्राहकों को वित्तीय सेवाएं मुहैया कराना। स्थूल रूप से, यह एक ऐसे आंदोलन की ओर इंगित करता है जिसमें परिकल्पना की गई है एक ऐसे दुनिया की, जहां यथासंभव, गरीबों और गरीबी की कगार पर खड़े लोगों को, न सिर्फ ऋण बल्कि बचत, बीमा और निधि-अंतरण सहित उच्च गुणवत्ता वाले उपयुक्त श्रेणी की वित्तीय सेवाएं स्थाई तौर पर सुगम हों। इसी प्रयास में अतिलघु उद्यमों व उद्योगों का वित्तपोषण भी निहित है।

15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. 1964 2. 1948 3. 1990
4. 1982 5. 1951 से 1955

15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- http://en.wikipedia.org/w/index.php?title=NBFC_%26_MFI_in_India&oldid=478284748
- मुद्रा और वित्त सम्बन्धी रिपोर्ट, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- भारत 2012-एक सन्दर्भ वार्षिकी, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
- भारत में बैंक संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकीय पुस्तिका, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- http:// timesofindia.indiatimes.com/articleshow/2653281.cms
- http://business.gov.in
- http://rbi.org.in/scripts/NotificationUser.aspx?Id=3651&Mode=0
- http://www.forbes.com/2007/12/20/microfinance-philanthropy-credit-biz-z_ms_1220micro financetable.html
- आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष

15.9 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Avdhani: Investment and Securities Markets in India, Himalaya Publications, Delhi
- Brealey R.A. and S.C. Myers, Principles of Corporate Finance , McGraw Hill.
- Chandra, P., Financial Markets, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Damodaran, A, Corporate Finance: Theory and Practice, John Wiley & Sons.
- Dietrich J.K. Financial Services and Financial Institutions: Value Creation in Theory and Practice, Prentice Hall, New Jersey.
- Giddy, I.H: Global Financial Markets, A.I.T.B.S, Delhi.
- Srivastava ,R. M. & Nigam Divya - Management of Financial Institutions, Himalaya Publishing House.

- Khan M Y - Financial Services, Tata Mc Grew Hill.
- Kohn, Meir, 'Financial Institutions and Markets ', Oxford University Press.
- Ross S.A., R.W. Westerfield and J. Jaffe, Corporate Finance, McGraw Hill.
- Van Horne, James C., Financial Management and Policy , Prentice Hall of India.
- Verma JC: Guide to Mutual funds and Investment Portfolio, Bharat Publishing House, New Delhi.

15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक प्रतिष्ठानों व कम्पनियों द्वारा दीर्घावधिक वित्त किन स्रोतों से प्राय: जुटाया जाता है? बताइए।
2. औद्योगिक वित्त की राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
3. औद्योगिक वित्तपोषण में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक का किस प्रकार का योगदान रहा है? समीक्षा कीजिए।
4. 'बाजार प्रतिभागिता और संरचना दोनों के संदर्भ में कॉरपोरेट बांड बाजार पिछड़ गया है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
5. 'स्व सहायता समूह वास्तव में सहकारी क्षेत्र के अनौपचारिक किन्तु अधिक प्रभावी हिस्सा हैं।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

इकाई-16 विदेशी पूँजी और निवेश

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 विदेशी पूंजी की आवश्यकता
16.3.1. सरकार की नीति
16.3.2. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश
16.3.3. विदेशी संस्थागत निवेश
16.3.4. यूरो निर्गम, अमेरिकी निक्षेपागार रसीद एवं वैश्विलक निक्षेपागार रसीदें
16.3.5. वाह्य वाणिज्यिक उधार
16.4 अभ्यास प्रश्न
16.5 सारांश
16.6 शब्दावली
16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.9 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ
16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पिछले दो अध्यायों में औद्योगिक वित्तपोषण की व्यवस्था से आप काफी हद तक परिचित हो चुके हैं। अब इस अध्याय में आप जान सकेंगे कि उद्योगों में विदेशी पूंजी की आवश्यकता कैसी और कितनी है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारत में विदेशी पूंजी की भूमिका तथा इसके विभिन्न घटकों को भली-भाँति समझ सकेगें।

16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ✓ जान सकेंगे कि विदेशी पूंजी की आवश्यकता कितने प्रकार की होती है और इसकी व्यवस्था कैसे की जाती है।
- ✓ समझ सकेंगे कि विदेशी पूंजी किन-किन रूपों में भारत में आ रही है तथा आर्थिक व औद्योगिक जगत पर इनका क्या प्रभाव रहा है।
- ✓ हाल के वषों में विदेशी निवेश के सम्बन्ध में सरकार की वर्तमान नीति व नीयत से परिचित हो सकेंगे।

16.3 विदेशी पूंजी की आवश्यकता

विदेशी निवेश में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) और पोर्टफोलियो निवेश शामिल है जिसमें विदेशी संस्थागत निवेशकों (FDI) का निवेश तथा अमरीकी निक्षेपागार प्राप्तियां या वैश्विक निक्षेपागार प्राप्तियां (ADRs/GDRs) सम्मिलित है जो ऋण भिन्न देयताओं (Non-debt Liabilities) को सूचित करती हैं जबकि ऋणों विदेशी सहायता, विदेशी वाणिज्यिक उधार (external commercial borrowing - ECB) तथा व्यापार क्रेडिट और अप्रवासी भारतीयों की जमा राशियों सहित बैंकिग पूंजी को ऋण देयताओं में शामिल करते हैं।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की एक व्यापक पुनरीक्षा

i. भारतीय कम्पनियों में कुल विदेशी निवेश का परिकलन करने (बॉक्स-16.1),

ii. निवासी भारतीय नागरिकों से अनिवासी इकाइयों की सीमाओं के साथ क्षेत्रों में भारतीय कम्पनियों का नियंत्रण करने या स्वामित्व का हस्तान्तरण करने के लिए और

iii. निवेश करने वाली भारतीय कम्पनियों द्वारा अधोप्रवाही निवेश के लिए नीति पर दिशा निर्देशों के संबंध में 2008-09 में आयोजित की गई थी।

कुल विदेशी निवेश का परिकलन

भारतीय कम्पनियों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कुल विदेशी निवेश के परिकलन के लिए दिशा निर्देशों की मुख्य विशेषताएं -

क. भारतीय कम्पनियों में अनिवासी इकाई द्वारा किया गया कुल प्रत्यक्ष निवेश विदेशी निवेश के प्रति हिसाब में लिया जाएगा।

ख. निवेशकर्ता भारतीय कम्पनी के माध्यम से विदेशी निवेश को अप्रत्यक्ष विदेशी निवेश का परिकलन करने के विचारार्थ नहीं लिया जाएगा यदि उन भारतीय कम्पनियों के मामले में जिनका 'स्वामित्व और नियंत्रण' निवासी भारतीय नागरिकों द्वारा किया जाता है और उन भारतीय कम्पनियों के मामले में जिनका 'स्वामित्व और नियंत्रण' अन्ततोगत्वा निवासी भारतीय नागरिकों द्वारा किया जाता है।

ग. उन मामलों में जहां यह शर्त पूरी नहीं होती अथवा निवेशकर्त्ता कम्पनी का स्वामित्व या नियंत्रण 'अनिवासी इकाइयों' द्वारा किया जाता है तो भारतीय कम्पनी के मामले में निवेशकर्त्ता कम्पनी द्वारा किया गया समस्त निवेश अप्रत्यक्ष विदेशी निवेश समझा जाएगा।

घ. अपवाद स्वरूप, प्रचालनकर्त्ता-सह-निवेशकर्त्ता कम्पनियों की केवल 100 प्रतिशत स्वामित्वाधीन अनुषंगी कम्पनियों में अप्रत्यक्ष विदेशी निवेश, प्रचालनकर्त्ता-सह-निवेशकर्त्ता या निवेशकर्त्ता कम्पनी में विदेशी निवेश तक सीमित होगा। यह अपवाद इसलिए रखा गया है चूंकि धारक कम्पनी की 100 प्रतिशत स्वामित्ववाली अनुषंगी कम्पनी का अधोप्रवाही निवेश धारक कम्पनी द्वारा किए गए निवेश के सदृश है और अधोप्रवाही निवेश धारक कम्पनी की दर्पण रूपी छवि होनी चाहिए।

बॉक्स - 16.1 (स्त्रोतः आर्थिक समीक्षा, 2008-09, पृ. 220)

भारत में, पोर्टफोलियो निवेशों की तुलना में FDI को तरज़ीह दी जाती है क्योंकि एफडीआई प्रवाह की प्रवृत्ति पोर्टफोलियो तथा अन्य पूंजी प्रवाहों के स्वरूपों की अपेक्षा अधिक स्थिर है, विदेशी मुद्रा ऋण की तुलना में रुपया मूल्य वर्ग-ऋण को तरज़ीह दी जाती है और अल्पावधि की तुलना में मध्यावधि तथा दीर्घावधि ऋण को प्राथमिकता दी जाती है।

विदेशी निवेश के ऋण भिन्न प्रवाह में निवल आधार (net basis) पर एफडीआई तथा पोर्टफोलियो निवेश (ADRs / GDRs and FIIs) शामिल हैं जिसमें 21.4 प्रतिशत की कमी होकर यह 2009-10 में 50.4 अरब अमरीकी डालर से 2010-11 में 39.7 बिलियन अमरीकी डॉलर से हो गया। विदेशी निवेश में गिरावट को ऋणों के ऋण प्रवाह संघटक तथा बैंकिंग पूंजी से प्रतिसंतुलित (Offset) किया गया जिसमें 130.3 प्रतिशत की वृद्वि होकर यह 2009-10 में 14.5 बिलियन अमरीकी डालर से 2010-11 में 33.4 बिलियन अमरीकी डालर हो गया। पूर्व में, विदेशी वाणिज्यिक उधार के तहत इण्डिया मिलेनियम जमाराशियों (India Millennium Deposit – IMD) की भारी मात्रा में वापसी अदायगी के बावजूद अनिवासी जमाराशियों में अन्तर्प्रवाह पुन: तेजी से शुरू होने के साथ बढ़ते विदेशी निवेश प्रत्यक्ष एवं पोर्टफोलियो, दोनों ने पूंजी खाते में सुदृढ़ सन्तुलन बनाया हुआ था और चालू खाते के घाटे का वित्तपोषण करने के बाद भी वर्ष 2005-06 में 15.1 बिलियन अमरीकी डालर का प्रारक्षित उपचय (reserve accretion) हुआ। हालांकि वर्ष 2005-06 में चालू खाते का घाटा अधिक (6.7 बिलियन अमरीकी डालर) और पूंजी खाते में शेष राशि कम (4.4 बिलियन अमरीकी डालर) होने के कारण प्रारक्षित उपचय वर्ष 2004-05 की तुलना में 11.1 बिलियन अमरीकी डालर कम था, फिर भी भारत प्रारक्षित राशि के उच्च स्तरों वाले सर्वोच्च राष्ट्रों में से एक बना रहा। (सारिणी 16.1)

इस दौरान, आन्तरिक एफडीआई में घटती प्रवृत्ति दिखाई दी जबकि बाह्य एफडीआई ने 2010-11 में 2009-10 की तुलना में बढ़ोतरी की प्रवृत्ति दर्शायी। आन्तरिक एफडीआई में 2009-10 में 33.1 बिलियन अमरीकी डालर से गिरावट होकर यह 2010-11 में 25.9 बिलियन अमरीकी डालर हो गया। वर्ष 2010-11 के दौरान क्षेत्रवार गिरावट मुख्यतया विनिर्माण, वित्तीय सेवाओं, बिजली और भवन-निर्माण के कारण रही। यह मुख्यतया यूरो क्षेत्र संकट के कारण वैश्विक अर्थव्यवस्था में अनिश्चितता और जोखिम को दर्शाता है।

वर्ष 2010-11 में भारत को मॉरिशस के रास्ते किया गया देशवार निवेश विदेशी प्रत्यक्ष निवेश FDI का सबसे बड़ा संघटक रहा, इसके बाद सिंगापुर और नीदरलैंड का स्थान आता है। जावक (Outwaed) एफडीआई वर्ष 2009-10 के 15.1 बिलियन अमरीकी डॉलर से बढ़कर 2010-11 में 16.5 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गया। वर्ष 2010-11 के दौरान निम्न आवक (Inward) एफडीआई और जावक एफडीआई में बढ़ोत्तरी के साथ भारत में निवल एफडीआई (आवक-जावक) महत्वपूर्ण रुप से कम रहा (एक वर्ष पहले 14 बिलियन अमरीकी डॉलर)।

वर्ष 2010-11 के दौरान निवल पोर्टफोलियो निवेश प्रवाह में 2009-10 के 32.4 बिलियन अमरीकी डॉलर के मुकाबले 30.3 बिलियन अमरीकी डॉलर की मामूली गिरावट देखी गई। विदेशी संस्थागत निवेशकों (FII) के अंतर्प्रवाहों में वर्ष 2009-10 के 29 बिलियन अमरीकी डॉलर से 2010-11 में मामूली रुप से बढ़ोतरी हुई।

पूंजीगत प्रवाहों की अन्य श्रेणियों नामत: ECB के ऋण प्रवाह, बैंकिंग पूंजी और अल्पावधि ऋण में वर्ष 2010-11 में महत्वपूर्ण बढ़ोत्तरी देखी गई। निवल ECB अन्तर्प्रवाह वर्ष 2009-10 में 2 बिलियन अमरीकी डालर से बढ़कर 2010-11 में 12.5 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गए। इसी प्रकार, अल्पावधि व्यापार ऋण वर्ष 2009-10 के 7.6 बिलियन अमरीकी डॉलर से बढ़कर 2010-11 में 11 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गया, जो तीव्र घरेलू आर्थिक निष्पादन को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त, वर्ष 2009-10 की 2.9 बिलियन अमरीकी डॉलर की विदेशी सहायता 2010-11 में बढ़कर 4.9 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गई।

कुल पूंजी प्रवाह के अनुपात के व्यय में और निवल आधार पर, विदेशी निवेश में सुधारोत्तर अवधि के दौरान मिश्रित प्रवृत्ति रही है। विदेशी निवेश के दो प्रमुख संघटकों नामत: विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और पोर्टफोलियो निवेश, जिसके अंतर्गत विदेशी संस्थागत निवेश (एफआईआई), यूरो इक्विटी और अन्य आते हैं, वर्ष 1993-94 से यूरो इक्विटी और अन्यों की विदेशी निवेश प्रवाह में प्रमुख भूमिका रही परन्तु यह ज्यादा समय तक स्थिर स्रोत नहीं रहा।

(आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष, पर आधारित)

16.3.1. सरकार की नीति

i. वर्ष 2006 में भारतीय प्रतिभूति बाजार में अवसंरचना कंपनियों में विदेशी निवेशों से संबंधित भारत सरकार की नीति की तर्ज पर स्टॉक एक्सचेंजों, निक्षेपागारों और समाशोधन निगमों में विदेशी निवेश की सीमाएं निम्नानुसार विनिर्दिष्ट की गई:

क. इन कंपनियों में अलग से 26 प्रतिशत की उच्चतम सीमा के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और विदेशी संस्थागत निवेशकों के निवेश पर 23 प्रतिशत की उच्चतम सीमा के साथ 49 प्रतिशत के विदेशी निवेश की अनुमति

ख. विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड FIPB के विशिष्ट पूर्वानुमोदन से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति

ग. सिर्फ द्वितीयक बाजारों में किए गए क्रयों के जरिए ही विदेशी संस्थागत निवेश की अनुमति

घ) विदेशी संस्थागत निवेशक निदेशक मंडल में न तो प्रतिनिधित्व मांगेंगे और न उन्हें प्रतिनिधित्व मिलेगा

ड. कोई भी विदेशी निवेशक जिनमें संयुक्त रूप से कार्य कर रहे व्यक्ति शामिल हों इन कंपनियों में 5 प्रतिशत से अधिक की इक्विटी धारित नहीं करेगा।

ii. विदेशी संस्थागत निवेशकों के निवेश की आवेदन प्रक्रिया सरल कर दी गई और विदेशी संस्थागत निवेशक के अंतर्गत निवेश की नई श्रेणियों (बीमा और पुनर्बीमा कंपनियां, विदेशी केंद्रीय बैंकों, निवेश प्रबंधक, अंतर्राष्ट्रीय संगठन) को शामिल किया गया।

सारिणी 16.1: विदेशी पूँजी प्रवाह

(बिलियन अमरीकी डॉलर)

मद	1990-91	2000-01	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11 अंसं
पूंजी खाता अधिशेष निवल (net)	8.4	8.5	46.3	107.9	8.6	51.6	62.0
1. विदेशी निवेश	0.1	5.9	15.5	43.3	3.6	50.4	39.7
1.1 एफडीआई	0.1	3.3	8.5	15.9	17.5	14.0	9.4
1.2 पोर्टफोलियो निवेश जिसका	0.0	2.5	7.1	27.4	-14.0	32.4	30.3

अ-एफआईआई		1.8	9.1	20.3	-15.0	29.0	29.4
ब-यूरो निर्गम-एडीआर/जीडीआर		0.7	3.8	6.6	1.2	3.3	2.0
2. विदेशी वाणिज्यिक उधार	0.0	4.3	16.2	22.6	7.9	2.0	12.5

(स्रोत: आर्थिक समीक्षा, 2008-09, भारतीय रिजर्व बैंक)

पूंजी प्रवाहों को प्रोत्साहित करने और विदेशी मुद्रा बाज़ार में सट्टेबाजी को रोकने के लिए हेतु हाल के नीति संबंधी पहल

रुपए के मूल्य को स्थिर करने हेतु पूंजी प्रवाहों को प्रोत्साहित करने और विदेशी मुद्रा बाज़ार में सट्टेबाजी को रोकने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा हाल में कई कदम उठाए गए हैं। प्रमुख विवरण इस प्रकार हैं:

A.विदेशी मुद्रा की आपूर्ति बढ़ाने के उपाय

कारोबार ऋण - कारोबार ऋण के लिए सम्पूर्ण लागत उच्चतम सीमा को 6 माह लिबोर + 200 आधार बिन्दुओं (बीपीएस) से बढ़ाकर 6 माह लिबोर # + 350 बीपीएस कर दिया गया है।

विदेशी वाणिज्यिक उधार (external commercial borrowing - ECB) - विदेशी वाणिज्यिक उधार (ECB) स्वचालित अनुमोदन मार्ग के तहत पात्र कॉरपोरेटों के लिए मौजूदा (external commercial borrowings) सीमा को 500 मिलियन अमरीकी डॉलर से बढ़ाकर 750 मिलियन अमरीकी डॉलर कर दिया गया है। सेवा क्षेत्रों में उधारकर्ता के लिए 100 मिलियन अमरीकी डॉलर की सीमा को बढ़ाकर 200 मिलियन अमरीकी डॉलर कर दिया गया है। विदेशी वाणिज्यिक उधार के लिए सम्पूर्ण लागत उच्चतम सीमा में संशोधन, जो इस प्रकार है (सारिणी 16.2)

सारिणी 16.2:ECB के लिए सम्पूर्ण लागत उच्चतम सीमा

औसत परिपक्वता अवधि	6 माह लिबोर पर सम्पूर्ण लागत*	
	मौजूदा	संशोधित
3 वर्ष और 5 वर्ष तक	300 बीपीएस	350 बीपीएस
5 वर्ष से अधिक	500 बीपीएस	500 बीपीएस

*सम्बद्ध करेंसी ऋण अथवा प्रयोज्य बेंचमार्क के लिए

(स्रोतः RBI/आर्थिक समीक्षा 2011-12, पृः142)

सम्पूर्ण उच्चतम सीमा में परिवर्तन 23 नवम्बर 2011 से तत्काल लागू है तथा उसके बाद 31 मार्च 2012 से समीक्षा के अधीन है। भारत में रुपए के व्यय हेतु विदेश में जुटाए गए ECB की आय को तत्काल लाया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में विदेशी मुद्रा व्यय के लिए ही होने वाली ECB आय को लम्बित उपयोग के लिए विदेश में रखा जा सकता है। तथापि, रुपया संबंधी निधियों को पूंजी बाजार अथवा स्थावर संपदा (real estate) में निवेश के लिए अथवा अंतर-कॉरपोरेट ऋण प्रदान करने हेतु उपयोग के लिए अनुमति नहीं दी जाएगी।

एफआईआई निवेश - सरकारी प्रतिभूतियों और कॉरपोरेट बॉन्डों में निवेश के लिए FII सीमा को प्रत्येक के लिए 5 बिलियन अमरीकी डॉलर बढ़ाकर क्रमश: 15 बिलियन अमरीकी डॉलर और 20 बिलियन अमरीकी डॉलर किया गया है। तथापि, दीर्घावधि इन्फ्रास्टंक्चर कॉरपोरेट बॉन्ड की 25 बिलियन अमरीकी डॉलर की निवेश सीमा अपरिवर्तित रही है। इसके साथ कॉरपोरेट बॉण्डों और सरकारी प्रतिभूतियों में एफआईआई निवेश हेतु समग्र सीमा अब 60 बिलियन अमरीकी डॉलर है।

NRI जमाराशियां - 23 नवम्बर 2011 को कारोबार की समाप्ति एक से तीन वर्ष की परिपक्वता वाली नई अनिवासी (बाह्य) रुपया (एनआरई) सावधि जमा राशियों पर ब्याज दरों को बढ़ाकर लिबोर / स्वाप + 275 आधार बिन्दु कर दिया गया। ये ब्याज दरें तीन वर्ष से अधिक परिपक्वता अवधि वाली जमाराशियों और वर्तमान परिवक्वता अवधि के पश्चात् नवीकरण की गई जमाराशियों पर लागू होंगी। 23 नवम्बर, 2011 की स्थिति के अनुसार भारत में कारोबार की समाप्ति से प्रभावी संविदा की गयी सभी परिपक्वताओं वाली विदेशी मुद्रा / अनिवासी बैंक {FCNR(B)} जमाराशियों पर ब्याज दर संबंधित मुद्रा / तदनुरूपी परिपक्वताओं के लिए लिबोर / स्वाप दरों + 125 आधार बिन्दुओं की उच्चतम दर के भीतर होगी।

B. प्रमुख प्रशासनिक उपाय

क. स्थानिकों residents द्वारा अन्तर्निहित प्रकटन (underlying exposure) के प्रकार तथा अवधि का ध्यान रखे बिना की गई वायदा संविदाओं (Forward contracts) जिनमें रुपए को एक मुद्रा के रूप में शामिल किया गया है, एक बार रद्द कर दिए जाने पर पुनः संविदा नहीं की जा सकती।

ख. ग्राहकों की ओर से अधिकृत डीलरों द्वारा सभी नकद / हाज़िर सौदे केवल वास्तविक विप्रेषण (remittances) / सुपुर्दगी के लिए किए जाएंगे और इन्हें रद्द / नकदी निपटान नहीं किया जा सकता।

ग. एफआईआई द्वारा की गई वायदा संविदाओं को एक बार रद्द कर दिए जाने पर उनकी पुन: संविदा नहीं की जा सकती। तथापि, उन्हें परिपक्वता होने पर अथवा इससे पहले पुनर्निर्धारण किया जा सकता है।

घ. अधिकृत डीलरों के निदेशक बोर्ड को निवल (net overnight) एक दिवसीय मुक्त विनिमय स्थिति और कुल अंतराल सीमाएं जिन्हें भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अनुमोदित किया जाता है, के साथ विभिन्न राजकोषीय कार्यों के लिए उपयुक्त सीमाएं निर्धारित करने की अनुमति थी।

ड. अधिकृत डीलरों की निवल एक दिवसीय मुक्त स्थिति सीमा (NOOPL & Net Overnight Open Position Limit) को एक समान रूप से कम किया जाएगा और अलग-अलग बैंक की संशोधित सीमाओं के संबंध में अधिकृत डीलरों को पृथक रूप से सलाह दी जा रही है।

च. अधिकृत डीलरों की एक दिवसीय मुक्त स्थिति / दैनिक सीमा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अनुमोदित एनओओपीएल से अधिक नहीं होनी चाहिए।

#LIBOR: London Interbank Offered Rate (interest rate on loans between banks)

(स्रोतः RBI ;आर्थिक समीक्षा 2011-12, पृ:142 से साभार अनूदित)

16.3.2. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (Foreign Direct Investment - FDI) उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए पूंजी प्रवाह का सर्वाधिक आकर्षक माध्यम समझा जाता है चूंकि इससे अद्यतन प्रौद्यौगिकी आएगी और यह अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता बढ़ाएगी। भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए गैर-ऋण पूंजी प्रवाह होने के नाते, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, विदेशी वित्तपोषण का महत्वपूर्ण स्रोत है। FDI अन्तर्प्रवाह में वित्तीय सेवाओं, विनिर्माण, बैंकिंग सेवाओं, सूचना प्रौद्योगिकी सेवाओं तथा निर्माण जैसी कई आर्थिक गतिविधियों को शामिल किया जाता हैं। इसमें उच्च अन्तर्प्रवाह से संकेत मिलता है कि भारत एक आकर्षक निवेशक स्थल है जिसका कारण उदारीकृत निवेश माहौल व आर्थिक विकास के अवसरों हेतु स्थिर तथा ठोस आर्थिक और राजनीतिक आधार का होना है जबकि विदेशी पूंजी निवेश

भारतीय कारपोरेट की बढ़ती वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा को प्रदर्शित करता है। इसलिए एफडीआई के दोहरे प्रवाह का आशय है कि जहां एक ओर विश्व भारत की बाजार सम्भावना को ध्यान में रख रहा है वहीं दूसरी और भारतीय कम्पनियां विदेश में तेजी से अधिग्रहणों की बराबर प्रतीक्षा कर रही हैं।

भारत में घरेलू बचतें इतनी ज्यादा नहीं है कि वे बढ़ती हुई निवेश की जरूरतों को पूरा कर सकें। अन्य देशों से पूंजीगत अंतर्वाह (विशेषरूप से निवेश प्रकृति का) महत्वपूर्ण बन गया है। सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में घरेलू बचतों का अनुपात सकल पूंजी निर्माण (GCF) की अपेक्षा सामान्यत: कम रहा है। 2004-08 के दौरान यह अन्तर सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में 1.3 प्रतिशत था।

ऋण की तुलना में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के तहत आने वाले समता अंतर्वाह (equity inflows) अधिक स्थायी होते हैं तथा निवेश के साथ न केवल प्रबंधकीय कौशल तथा प्रौद्योगिकीय जानकारी लाते हैं बल्कि समग्र रूप से यह घरेलू निवेश को पूरा करते हैं, जो देश की उच्च विकास दर को बनाए रखने के लिए आवश्यक है और साथ ही अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा को भी बढ़ाते हैं। एफडीआई अंतर्वाहों को प्रोत्साहन देने के लिए, FDI नीति सुमेलित (fine tuned) तथा प्रगामी रूप से उदार रही है, जोकि स्वचालित मार्ग (automatic route) के अंतर्गत अधिक से अधिक उद्योगों में एफडीआई को सुसाध्य बनाती है। वर्ष 2000 से, सरकार ने विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की नीतिगत व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि भारत आकर्षक और निवेशक अनुकूल स्थल के रूप में बने। इसी वर्ष में सरकार ने अधिकतर गतिविधियों के लिए स्वचालित मार्ग पर 100 प्रतिशत तक एफडीआई की अनुमति प्रदान की। जहां स्वचालित मार्ग उपलब्ध नहीं था अथवा एफडीआई की सीमाएं थी, वहां लघु ऋणात्मक सूची जारी की गई थी। उसके बाद, नीति को धीरे-धीरे सरल और तर्कसंगत बनाया गया और विदेशी निवेश के लिए अधिक क्षेत्र खोले गए हैं। यह क्रम अभी भी जारी है जैसा कि आगे के विवरण से आपको स्पष्ट हो जायेगा।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का वर्तमान चरण पूर्वोक्त ऋणात्मक सूचीकरण (Negative Listing) द्वारा पहचाना जाता है जो ऋणात्मक सूची के जारी दर्शाए गए कुछ क्षेत्रों को छोड़कर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति प्रदान करता है। चालू नीतिगत व्यवस्था के अंतर्गत, विदेशी प्रत्यक्ष निवेशकों के लिए प्रवेश के तीन बड़े विकल्प हैं। कुछ क्षेत्रों में, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की आज्ञा नहीं है (ऋणात्मक सूची) क्षेत्रों की अन्य लघु श्रेणी में विदेशी निवेश केवल विदेशी इक्विटी सहभागिता के विशिष्ट स्तर तक अनुमत है, सभी अन्य क्षेत्रों वाली तीसरी श्रेणी में, 100 प्रतिशत इक्विटी सहभागिता तक विदेशी निवेश की अनुमति है। तीसरी श्रेणी के दो उपखंड हैं: एक में वे क्षेत्र हैं जहां विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को स्वचालित अनुमोदन प्रदान किया जाता है (प्राय: 100% से कम विदेशी इक्विटी सहभागिता) तथा दूसरे में वे क्षेत्र हैं जहां विदेशी निवेश अनुमोदन बोर्ड का पूर्व अनुमोदन जरूरी है। ये नीतिगत परिवर्तन वर्मामानरूप में उद्योग की जरूरतों को प्रदर्शित करते हैं और हित धारकों के परामर्श पर आधारित हैं। ऋणात्मक क्षेत्रों के ऊर्ध्वमुखी (upfront) सूचीकरण ने सुधार क्षेत्रों में ध्यान लगाने में सहायता की है। ये विदेशी प्रत्यक्ष निवेश संबंधी अंतर्वाहों में सुधार प्रतिबिंबित करते हैं।

(आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष, पर आधारित)

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति

पहले ही प्रभावित हो चुके उदारीकरण को समेकित करने और विभिन्न क्रियाकलापों को शासित करने वाली प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति को और युक्तिसंगत बनाने के लिए 2006 में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति को व्यापक पुनरीक्षा की गयी थी जिसकी गई प्रमुख नीतिगत पहलें है -

क. मार्ग में परिवर्तन- निम्नलिखित के लिए आटोमेटिक रूट के तहत 100 प्रतिशत FDI की अनुमति प्रदान की गई-पेय अलकोहल का आसवन और किण्वासवन, औद्योगिक विस्फोटकों का निर्माण, हानिकारक रसायनों का निर्माण, उद्योग (विकास एवम् नियमन) अधिनियम 1951 के तहत औद्योगिक लाईसेंस की अपेक्षा वाले मानक शहरी क्षेत्र सीमाओं के 25 कि.मी. में स्थित विनिर्माण क्रियाकलाप, ग्रीनफील्ड हवाईपत्तन परियोजनाएं स्थापित करना, प्राकृतिक गैस LPG पाइपलाइनें

बिछाना, बाजार अध्ययन और तैयारी और पेट्रोलियम क्षेत्र में निवेश वित्त पोषण और नकद तथा थोक व्यापार और निर्यात व्यापार करना।

ख. इक्विटी सीमा में वृद्धि - FDI सीमा बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दी गई तथा देशीय खपत के लिए कोयला और लिग्नाइट खनन, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस क्षेत्र में विपणन के लिए अवस्थापना स्थापित करने और हीरों और कीमती पत्थरों के अन्वेषण और खनन में स्व:चालित मार्ग लागू कर दिया गया।

ग. नए क्रियाकलापों में एफ डी आई- प्रतिबंधात्मक शर्तें हटाना - विद्युत व्यापार और उसकी प्रक्रिया एवं काफी और रबड़ के भण्डारण में स्वचालित मार्ग में 100 प्रतिशत तक FDI की स्वीकृति प्रदान की गयी। एकल ब्रान्ड उत्पाद के खुदरा व्यापार जिसमें सरकार की पूर्व अनुमति की आवश्यकता थी, में भी 51 प्रतिशत (2012 से 100 प्रतिशत) FDI की अनुमति प्रदान की गई। एकल 'बान्ड' उत्पादन खुदरा व्यापार के लिए एफ डी आई को शासित करने वाले विनिर्दिष्ट दिशा-निर्देश जारी किए गए। बी 2 बी ई-कामर्स के लिए अनिवार्य विनिवेश शर्तें समाप्त कर दी गईं।

घ. प्रक्रिया सरलीकरण - एक विद्यमान कम्पनी में शेयरों के अधिग्रहण सहित एक निवासी से अनिवासी को शेयरों का हस्तांतरण स्वत:चालित मार्ग पर रख दिया गया बशर्ते कि वह FDI क्षेत्रक नीति के अनुसार हो।

ड. विदेशी निधियों और तकनीकी जानकारी द्वारा नकद फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषि और पौधरोपण को FDI के लिए निषिद्ध क्षेत्र की सूची से हटा दिया गया था और इन क्षेत्रों में स्वीकृत क्रियाकलापों को क्षेत्र विशिष्ट नीति में शामिल कर दिया गया था। मौजूदा नीति के अनुसार कृषि और संबंधित क्षेत्रों से संबंधित नियंत्रित शर्तों और सेवाओं के अन्तर्गत स्वत:चालित मार्ग के तहत इनमें 100 प्रतिशत एफ डी आई स्वीकृत है- पुष्पकृषि, बागवानी, बीजों का विकास, पशु पालन, मत्स्य पालन, जल जीव पालन, सब्जियों और खुम्बी की खेती। चाय पौध रोपण में सरकार की पूर्व अनुमति से 100 प्रतिशत एफ डी आई की अनुमति है बशर्ते कि पांच वर्ष की अवधि के दौरान कम्पनी की इक्विटी का 26 प्रतिशत किसी भारतीय भागीदार / भारतीय जन सामान्य के पक्ष में विनिवेश किया जाता है और भविष्य में यदि भूमि उपयोग में परिवर्तन हो तो संबंधित राज्य सरकार की पूर्व अनुमति अपेक्षित है। उपर्युक्त दो के अलावा किसी अन्य कृषि क्षेत्र / क्रियाकलाप में एफ डी आई की अनुमति नहीं है।

हाल में, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अन्तर्प्रवाहों को सुगम बनाने के लिए अनेक उपाय शुरू किए गए हैं, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ शामिल किए गए हैं - नागरिक उड्डयन में इक्विटी की उच्चतम सीमा को बढ़ाना, निवेशों को आकर्षित करने की दृष्टि से CII और FICCI के साहचर्य से गंतव्य भारत कार्यक्रमों का आयोजन, निवेश-संबंधी समस्याओं के शीघ्र निपटान के लिए विदेशी निवेश कार्यान्वयन प्राधिकरण (Foreign Investment Implementation Authority - FIIA) को सक्रिय करना, विनिर्माण के विकास को सशक्त बनाने के लिए नीतिगत संवाद हेतु सतत् मंच प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय विनिर्माण प्रतियोगी परिषद्, National Manufacturing Competitiveness Council - NMCC) की स्थापना करना, द्विपक्षीय / क्षेत्रीय / अंतरराष्ट्रीय आयोजनों और व्यष्टि निवेशकों के साथ बैठकों के माध्यम से विदेशी निवेशकों के साथ नियमित बातचीत और औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग की वेबसाईट (www.dipp.nic.in)को ऑनलाईन चैट सुविधा के साथ और अधिक उपभोक्ता-अनुकूल बनाना।

औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग (Department of Industrial Policy and Promotion - DIPP) द्वारा जून, 2008 में जारी की गई समेकित प्रेस विज्ञप्ति में उन क्षेत्रों को विनिर्दिष्ट किया गया है जिनमें विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का निषेध किया है जैसे कि खुदरा व्यापार (एक ही ब्रांड के उत्पाद की खुदरा बिक्री के सिवाय), परमाणु ऊर्जा, लाटरी व्यवसाय, जुआ खेलना और शर्त लगाना, चिट फंड का कारोबार, निधि कम्पनियां, हस्तांतरणीय विकास अधिकारों (transferable development rights - TDRs) में व्यवसाय और ऐसे क्रियाकलाप / क्षेत्र जो प्राइवेट सेक्टर में निवेश के लिए खुले हुए नहीं

हैं। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त, अलग-अलग विनिर्दिष्ट मात्रा में अर्थ-व्यवस्था के अन्य सभी क्षेत्रों में चाहे वह सरकारी अनुमोदन मार्ग के माध्यम से अथवा भारतीय रिजर्व बैंक के स्वचालित मार्ग के माध्यम से हो, एफडीआई की अनुमति है।

क. क्रेडिट सूचना कम्पनियों में 49 प्रतिशत एफडीआई की अनुमति दी गई है।

ख. वस्तु विनिमयों में 26 प्रतिशत तक एफ़डीआई और 23 प्रतिशत तक विदेशी संस्थागत निवेश की अनुमति दी गयी है, बशर्ते कि किसी भी एकल निवेशक के पास 5 प्रतिशत से अधिक की धारिता न हो।

ग. स्थापित होने वाले और स्थापित औद्योगिक पार्कों, दोनों में, स्वचालित मार्ग के अन्तर्गत 100 प्रतिशत तक एफडीआई की अनुमति दी गई है।

घ. नागर विमानन क्षेत्र, जिसमें 74 प्रतिशत एफडीआई गैर-अनुसूचित विमान सेवाओं, चार्टर्ड विमान सेवाओं और कार्गो विमान सेवाओं में लगी हुई है, एफडीआई की अधिकतम सीमा में छूट दी गई है। 100 प्रतिशत एफडीआई की अनुमति अनुरक्षण और मरम्मत करने वाले संगठनों, उड्डयन प्रशिक्षण संस्थानों, तकनीकी प्रशिक्षण संस्थानों और हेलिकाप्टर सेवाओं/समुद्री यान सेवाओं के लिए दी गई है।

ड. पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस क्षेत्र में एफ डी आई नीति को युक्तिसंगत बनाया गया है।

च. 100 प्रतिशत तक एफ डी आई (सरकारी पूर्वानुमोदन सहित) की अनुमति खनन और टाइटेनियम वाले खनिजों को अलग-अलग करने वाले खनिजों तथा अयस्कों, इनके मूल्य वर्धन तथा एकीकृत क्रियाकलापों के लिए दी गयी है।

(स्रोतः आर्थिक समीक्षा, 2008-09)

अंतरराष्ट्रीय सहयोग बैंक (JBIC) द्वारा जापानी निवेशकों के बीच किए गए 2009 सर्वेक्षण में विदेशी कारोबारी प्रचालनों के लिए चीन के बाद भारत को दूसरे सबसे उदीयमान देश का दर्जा दिया जाना जारी रखा गया। डब्ल्यूआईआर 2010 में एफडीआई अंतर्वाहों की वैश्विक प्रवृत्तियों और सतत् विकास के विश्लेषण में भारत को 2010-12 के दौरान एफडीआई हेतु दूसरे सबसे आकर्षक स्थान का दर्जा दिया है। इसके अनुसार, 2009-11के दौरान एफडीआई हेतु शीर्ष पांच सर्वाधिक आकर्षक देश हैं: चीन, भारत, ब्राजील, संयुक्त राज्य अमरीका और रूसी परिसंघ। भारत के लिए सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि की गति बनाए रखने के लिए, यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि इसके विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के अंतर्वाहों की मजबूती भी बनी रहे।

एफडीआई समता (Equity Investments) निवेशों के संदर्भ में पहले दस निवेशकारी देशों की सूची में मॉरीशस पहले स्थान पर है जिसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन, सिंगापुर, नीदरलैण्ड्स, जापान, जर्मनी, रूस, साइप्रस और स्विट्ज़रलैण्ड का स्थान है। अधिकतम एफडीआई प्राप्त करने वाले क्षेत्रों में शामिल हैंरू सेवाएं, दूरसंचार, कम्प्यूटर सॉफ्रटवेयर और हार्डवेयर, आवास-निर्माण और स्थावर संपदा एवं निर्माण। कृषि सेवा, समुद्री परिवहन और बिजली के उपस्करों ने 2009-10 के दौरान एफडीआई अंतर्वाहों में मात्रा की दृष्टि से उछाल देखा है।

यह समझा जा सकता है कि भारत में निवेश की आवश्यकता घरेलू बचत के संसाधनों की उपलब्धताओं से अधिक रहेंगी। 2005-11 के दौरान निवेश-बचतों का अंतर सकल घरेलू उत्पाद का 1.7 प्रतिशत था। इस अंतर को पाटने हेतु प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सर्वोत्तम तरीका है। हमारी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति अब और खुली और पारदर्शी है तथा उसमें संस्थागत समीक्षा प्रणाली भी है। पर वित्तपोषण की बढ़ती हुई लागतें और विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों के इक्विटी अन्त: प्रवाहों की गति में हाल में आई मंदी चिन्ता का विषय बने हुए हैं।

कुल मिलाकर इतना स्पष्ट है कि समयावधि पर आधरित पूंजी प्रवाहों के वर्गीकरण की योजना में, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए इसके दीर्घकालीन स्वरूप के कारण पूंजी प्रवाहों का सर्वाधिक आकर्षक स्रोत रहा है तथा यह प्रौद्योगिक अंतराल को समाप्त करके घरेलू उत्पादन

प्रक्रिया के रूपांतरण के लिए एक साधन भी समझा गया है। आर्थिक सुधारकाल के दौरान ऋण भिन्न सर्जक पूंजी अंतप्रर्वाहों की संवर्धन नीतियों पर जोर देकर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश आमंत्रित करने के सम्मिलित प्रयासों से प्रारंभ में, प्रत्याशा के अनुसार परिणाम प्राप्त नही हुए जिसके कारण भारत में कम प्रवाह हुआ। किन्तु, नीतियों में सुधर, बेहतर आधारभूत ढांचा और वित्तीय क्षेत्र के अधिक गतिशील हो जाने से, वर्ष 2006-07 से भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अंतर्प्रवाहों में तेजी आई।

(आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष, पर आधारित)

16.3.3. विदेशी संस्थागत निवेश

विदेशी संस्थागत निवेश (FII) वैश्विक निक्षेपागार प्राप्तियां (global depository receipts - GDRs) / अमरीकी निक्षेपागार प्राप्तियां (American depository receipts - ADRs) का निर्गम और विदेशी निधियां पोर्टफोलिओ निवेश में शामिल की जाती हैं। भारत में ऐसे प्रवाहों में पूंजी बाजारों के और समग्र वृहत् आर्थिक स्थितियों के संतुलन जैसी समरूपता दिखाई पड़ती है। विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा पोर्टफोलियो निवेश आकर्षित करने की एक योजना सितम्बर, 1992 से चलाई जा रही है।

(भारत-2012, पृ. 421)

एफ आई आई तथा उप-खातों द्वारा निवेशों के लिए समग्र सीमा सरकारी प्रतिभूतियों तथा राजकोषीय हुंडियों के लिए 5 बिलियन अमरीकी डालर है तथा कारपोरेट ऋण के लिए 15 बिलियन अमरीकी डालर है। ऋणोन्मुखी म्यूचुअल फंड यूनिटों (मुद्रा बाजार तथा नकदी निधियों के यूनिटों) में एफ आई आई/उप-खातों द्वारा निवेशों को कारपोरेट ऋण माना जाता है। ऋण सीमा का एक प्रमुख भाग स्टॉक एक्सचेंजों द्वारा व्यवस्था किए गए एक खुली बोली मंच पर एफ आई आई/उप-खातों को आवंटित किया जाता है। नीलामी की प्रक्रिया का निष्पादन वैकल्पिक रूप से NSE तथा BSE द्वारा पेशकश किए गए मंचों पर किया जाता है। अधिकतम तथा न्यूनतम सीमाएं नीलामी के लिए उपलब्ध कुल राशि के अनुसार भिन्न होती है। इस प्रक्रिया में उपभोग की गई सीमाओं का उपयोग 45 दिनों के भीतर किया जाना आवश्यक है। ऋण सीमा के शेष भाग का आवंटन उच्चतम सीमा के अधीन 'पहले आओ-पहले पाओ' आधार पर किया जाता है। इस प्रक्रिया में उपभोग की गई सीमाओं का उपयोग 11 कार्य दिवसों के भीतर किया जाना आवश्यक है।

भारतीय इक्विटी बाजारों में 2008 के दौरान तीव्र गिरावट आई थी, जो अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजारों तथा विदेशी संस्थागत निवेश (FII) बहिर्वाह में अस्थिरता को प्रतिबिम्बित करता है। वर्ष 2009 में बाजार की शुरुआत शान्त तरीके से हुई। बाजार पहले की भांति अप्रैल-मार्च 2009 तक रेंजबद्ध रहे लेकिन उसके बाद अप्रैल 2009 से इसने संभलने का संकेत दिया। भारत समेत उभरती हुई बाजार अर्थव्यवस्था में विदेशी संस्थागत निवेशकों की दिलचस्पी फिर से पैदा होने के साथ, इक्विटी बाजारों ने मई-जुलाई 2009 के दौरान मजबूती पकड़ी। सितम्बर, 2009 में तेजड़िया रुख के नए दौर की शुरूआत हुई और इसके साथ मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज (BSE सूचकांक ने माह के दौरान 17,127 अंकों की ऊंचाई दर्ज की। भारतीय इक्विटी बाजार नवम्बर-दिसम्बर, 2009 के दौरान सुधार दर्शाने से पहले अक्तूबर, 2009 के अंत तक 15,896 के निचले स्तर पर बंद हुए। भारतीय पूंजी बाजारों में इक्विटी सूचकांक की गति प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय इक्विटी बाजारों में आए रूझानों के मुताबिक थी जो कि बढ़ते हुए एकीकरण का द्योतक है।

किन्तु वर्ष 2011 में वैश्विक मन्दी के दौर में देश में आने वाले एफआईआई प्रवाहों के सुस्त पड़ने के परिणामस्वरूप भारतीय बाज़ारों में गिरावट आई और विदेशी मुद्रा बाज़ार में रूपये का तीव्र मूल्य ह्रास हुआ, हालांकि यह मूल्य ह्रास अधिकांशत: संकटग्रस्त यूरोपीय और मुद्रास्पफीतिग्रस्त उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं के चलते विदेशी निवेशकों द्वारा 'सुरक्षित स्थानों की ओर पलायन' करने के कारण हुआ था। अर्थव्यवस्था की विकास दर में कमी आने से भी बाज़ार संवेग (market sentiments) प्रभावित हुए हैं। विकास में कमी अनेक कारणों से आई हैं जिनमें वैश्विक माहौल में व्याप्त अनिश्चितता और

मौद्रिक नीति को सख्त बनाने का अंतराल-प्रभाव शामिल है। भारत में मौद्रिक सख्ती किए जाने से स्टाक बाज़ारों में कुछ सुधार हुआ है, और यह अन्य उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में भी हुआ जब उनके अपने केंद्रीय बैंकों द्वारा सख्ती बरती गई।

सारणी 16.3: विदेशी संस्थागत निवेशकों के लेन देन

लेन-देन	2009.10	2010.11	2011.12#
एफआईआई की संख्या (वास्तविक)	1635	1722	1767
उप-खातों की संख्या (वास्तविक)	5015	5686	6278
1. इक्विटी बाजार क्रियाकलाप (करोड़ रू)			
सकल खरीद	554585	771565	442898
सकल बिक्री	602292	661444	443112
निवल	-47706	110121	-213
2. ऋण बाजार क्रियाकलाप (करोड़ रू)			
सकल खरीद	59993	221034	221907
सकल बिक्री	58098	144717	191319
निवल	1495	36317	30590
3. कुल क्रियाकलाप (करोड़ रू)			
सकल खरीद	846438	992599	664805
सकल बिक्री	703780	846161	634431
निवल	142658	146438	30376

(स्रोत: एनएसई, एमसीएक्स एसएक्स और यूएसई

टिप्पणी: #31 दिसम्बर 2011 की स्थिति के अनुसार

(साभारः आर्थिक समीक्षा, 2011-12, पृ0-123)

वैश्विक तौर पर, यूरोपीय ऋण संकट के गहराने और S&P द्वारा संयुक्त राज्य अमरीका की ऐतिहासिक दर्जावनति ने एक और मन्दी के आगम की आशंका पैदा कर दी। यूरो ज़ोन में फैली अव्यवस्था के कारण वैश्विक बाज़ारों में साल भर घट-बढ़ होती रही। जब तक यूरोप में व्याप्त संकट समाप्त नहीं हो जाता, भारत समेत विश्व भर के बाज़ारों में अस्थिरता बनी रहेगी। तथापि, विश्व के अन्य मुख्य सूचकांकों की तुलना में भारतीय अर्थव्यवस्था कम प्रभावित हुई है। इसके अलावा, कुछ निवेश बैंकों और वित्तीय फर्मों द्वारा दी गई रेटिंग से भारतीय बाज़ारों की समुत्थानशीलता जाहिर होती है।

पंजीकृत FII की संख्या 31 मार्च 2011 को 1722 से बढ़कर दिसम्बर अन्त 2011 तक 1767 हो गई। पंजीकृत उप-खातों की संख्या भी इसी अवधि के दौरान 5686 से बढ़कर 6278 हो गई (सारणी 16.3)। पूर्व में पंजीकृत विदेशी संस्थागत निवेशकों की यह संख्या 2008 में 1,1,594 थी जो 2009 की समाप्ति पर बढ़कर 1706 हो गई तथा 31 दिसम्बर 2010 को 1714 हो गई। उपखातों की संख्या भी 2009 के दौरान 4872 से बढ़कर 5331 हो गई और 2010 में 5503।

भारतीय इक्विटी बाजार में, एफआईआई ने 2010-11 में 1,10,121 करोड़ रुपए के निवेश की तुलना में 2011-12 (अप्रैल-दिसंबर) के दौरान 213 करोड़ रूपए आहरित किए। इसी अवधि में ऋण

खंड में, एफआईआई ने वर्ष 2010-11 में 36317 करोड़ रुपए की तुलना में 30590 करोड़ रुपए निवेशित किए। वर्ष 2011-12 के दौरान (31 दिसंबर 2011 तक) एफआईआई द्वारा इक्विटी तथा ऋण में कुल निवेश वर्ष 2010-11 में 146438 करोड़ रुपए की तुलना में 30376 करोड़ रुपए था। हाजिर बाजार में विदेशी संस्थागत निवेश 2009 में बढ़कर 83424 करोड़ रुपए था जबकि 2008 में 52987 करोड़ रुपए वापस निकाल लिए गए थे। इसके अतिरिक्त, 2009 में 4563 करोड़ रुपए का ऋण निवेश हुआ था जो 2008 में किए गए 11772 करोड़ रुपए के ऋण निवेश की तुलना में कम रहा। इक्विटी और ऋण बाजारों, दोनों को मिलाकर विदेशी संस्थागत निवेशकों से कुल निवल निवेश 2009 में काफी बढ़कर 87987 करोड़ रुपए रहा जबकि 2008 में इसमें 41216 करोड़ रुपए की निवल कमी हुई थी।

(आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष, पर आधारित)

विदेशी संस्थागत निवेश (FII) और अर्हक विदेशी निवेशक (QFI)

अर्हक विदेशी निवेशक (Qualified Foreign Investor - QFI) को जनवरी 2012 में भारतीय इक्विटी बाजार में सीधे निवेश करने की अनुमति दी गई थी। ऐसा निवेशकों का वर्ग व्यापक करने, अधिक विदेशी निधियां आकर्षित करने, बाजार की अस्थिरता कम करने और भारतीय पूंजी बाजार को मजबूती देने के लिए किया गया था। QFI में विदेशों में रहने वाले उन व्यक्तियों, समूहों अथवा संघों, को शामिल किया गया है जो वित्तीय कार्रवाई संबंधी कृतिक बल (Financi al Action Task Force - FATF) का अनुपालन कर रहे हैं और जिन्होंने अंतरराष्ट्रीय प्रतिभूति आयोग संगठन (International Organisation of Securities Commissions (IOSCO's) के समझौता बहुपक्षीय ज्ञापन (multilateral memorandum of understanding - MoU) पर हस्ताक्षर किए हैं। QFI में FII / उप-खाते शामिल नहीं हैं। इससे पहले, केवल FII / उप खातों तथा अनिवासी भारतीयों (NRIs) को भारतीय इक्विटी बाजार में प्रत्यक्ष निवेश करने की अनुमति दी गई थी। इस व्यवस्था के तहत, अनेक QFI, विशेषकर विभिन्न विदेशी नागरिकों का एक बड़ा तबका जो भारतीय इक्विटी बाजार में निवेश करना चाहता था, को सीधे ही निवेश करने की अनुमति नहीं थी। भारतीय रिजर्व बैंक और सेबी ने इस योजना के प्रचालन के लिए 13 जनवरी 2012 को संगत परिपत्र जारी किए हैं।

अर्हक विदेशी निवेशक योजना Qualified Foreign Investor (QFI) scheme

पोर्टफोलियो निवेश मार्ग को और उदार बनाने के लिए, वर्ष 2011-1212 के बजट में सेबी में पंजीकृत म्यूचुअल फण्डों को इक्विटी स्कीमों के लिए KYC (Know Your Costomer) अपेक्षाओं को पूरा करने वाले विदेशी निवेशकों से अभिदान स्वीकृत करने की अनुमति दी। बजट घोषणा का कार्यक्षेत्र बढ़ाकर सेबी में पंजीकृत म्यूचुअल फण्डों को अवसंरचना क्षेत्र की ऋण योजनाओं के लिए QFI से अभिदान स्वीकृत करने की अनुमति दे दी गई है। QFI योजना 9 अगस्त 2011 से शुरू कर दी गई है।

(आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष, पर आधारित)

नीतिगत प्रयास

वर्ष 2007 के दौरान सरकारी प्रतिभूतियों में विदेशी संस्थागत निवेशकों के लिए निवेश सीमा 2 बिलियन अमरीकी डालर से बढ़ाकर 2.6 बिलियन अमरीकी डालर की गई। किन्तु FIIs की बाजारों के उतार-चढ़ाव में भूमिका को देखते हुए अक्तूबर 2007 में सेबी ने विदेशी संस्थागत निवेशकों और उनके उप-खातों को फ्यूचर्स और आप्शंस जैसे अपतटीय व्युत्पाद लिखत का प्रयोग करते हुए पार्टिसिपेटरी नोट्स जारी करने अथवा नवीकृत करने से प्रतिबंधित किया।

भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड (सेबी) द्वारा जारी निवल एफआईआई अंतर्प्रवाहों संबंधी मासिक आंकड़ों के विश्लेषण से बाजारों के उतार-चढ़ाव में इसी प्रकार भूमिका का पता चलता है। उदाहरण के लिए दिसम्बर 2007 को समाप्त पिछले 12 माह के दौरान एफआईआई के अंतर्गत निवल अंतर्प्रवाह का

मानक विचलन (आपको विदित होगा कि यह वितरण का एक सांख्यिकीय माप है जिससे यह पता चलता है कि आकड़ों के मूल्य कितने व्यापक रूप से विस्तृत हैं; अधिक मानक विचलन का अर्थ है अधिक वितरण) बहुत अधिक (2423.4.4 मिलियन अमरीकी डॉलर) रहा। दिसम्बर 2007 को समाप्त 24 माह के समान माप में कुछ अंश तक कम वितरण (1882.8 मिलियन अमरीकी डॉलर) हुआ। दिसम्बर 2007 को समाप्त 12 और 24 माह के लिए एक अन्य सांख्यिकीय माप परिवर्तन का गुणांक (coefficient of variation (मूल्यों के समुच्चय में परिवर्तन लगभग इसके औसत को दर्शाता है; 1 से ऊपर का गुणांक उच्च परिवर्तन को दर्शाता है), की दृष्टि से सेबी के आंकड़े 1.69 और 1.79 परिणाम देते हैं। वर्ष 2008 में विदेशी संस्थागत निवेशकों (FII) की पात्र श्रेणियों का विस्तार किया गया ताकि एनआरआई के स्वामित्वाधीन निवेश प्रबंधकों को एफआईआई के रूप में पंजीकृत करने की अनुमति दी जा सके बशर्ते वे अपनी स्वामित्वाधीन निधियों का निवेश न करें। यह भी निर्णय लिया गया था कि 7 अक्तूबर, 2008 से विदेशी-व्युत्पाद लिखत (Overseas Derivative instrument – ODI) निर्गमन क्षमताओं पर लागू मात्रात्मक प्रतिबंध और व्युत्पादों व ओडीआई पर लगे प्रतिबंधों को समाप्त किया जाए।

जून 2008 में विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों में ऋण में किए जाने वाले निवेशों की सीमा 3.2 बिलियन अमरीकी डॉलर से बढ़ाकर 5 बिलियन अमरीकी डॉलर की गई और कारपोरेट ऋण में यह सीमा 1.5 बिलियन अमरीकी डॉलर से बढ़ाकर 3 बिलियन अमरीकी डॉलर की गई। कारपोरेट बांड निवेश सीमाएं और बढ़ाकर अक्तूबर 2008 में 6 बिलियन अमरीकी डॉलर और जनवरी 2009 में 15 बिलियन अमरीकी डॉलर की गई।

विदेशी संस्थागत निवेशकों पर इक्विटी और ऋण में क्रमश: 70 : 30 के अनुपात में निवेश करने से संबंधित प्रतिबंध समाप्त कर दिया गया।

सरकारी प्रतिभूतियों और कारपोरेट बांडों में एफआईआइ निवेश

नवंबर 2011 में, सरकार ने भारत की बदलती बृहत-आर्थिक स्थिति तथा पूंजी प्रवाहों को बढ़ाने एवं कारपोरेट क्षेत्र के लिए अतिरिक्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने की ज़रूरत के संदर्भ में नीति की समीक्षा की और यह निर्णय लिया कि

क. सरकारी प्रतिभूतियों में एफआईआई निवेश की मौजूदा सीमा में 5 बिलियन अमरीकी डालर की वृद्धि करके उसे अधिकतम 15 बिलियन अमरीकी डालर करना (5 बिलियन अमरीकी डालर की वृद्धिकारी सीमा बिना किसी अवशिष्ट परिपक्वता के प्रतिभूतियों में निवेश की जा सकती है) और

ख. कारपोरेट बांडों में एफआईआई की मौजूदा सीमा में 5 बिलियन अमरीकी डालर की वृद्धि करके उच्चतम सीमा को 20 बिलियन अमरीकी डालर करना (5 बिलियन अमरीकी डालर की वृद्धिकारी सीमा सूचीबद्ध कारपोरेट बांडों में लगाई जा सकती है)। तथापि, दीर्घावधिक अवसंरचना के कारपोरेट बांडों में निवेश सीमा 25 बिलियन अमरीकी डालर पर अपरिवर्तित रखी गई है। इसके चलते कारपोरेट बांडों और सरकारी प्रतिभूतियों में एफआईआई निवेश हेतु समग्र सीमा अब 60 बिलियन अमरीकी डालर हो गई है।

(आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष, पर आधारित)

16.3.4. यूरो निर्गम, अमेरिकी निक्षेपागार रसीद एवं वैश्विक निक्षेपागार रसीदें

गतिशील पूंजी बाज़ार में भारतीय कारपोरेट इक्विटी और ऋण निर्गमों दोनों के जरिए संसाधन जुटाने हेतु प्राथमिक बाजारों में अपनी पहुंच बढ़ाते रहे हैं। इसके अतिरिक्त, घरेलू संसाधन जुटाव की अनुपूर्ति हेतु कारपोरेटों द्वारा जारी विदेशी निर्गमों/यूरो निर्गमों (ए डी आर/जी डी आर) भी काफी महत्वपूर्ण हो गये है। Investopedia के अनुसार 'अमेरिकी निक्षेपागार रसीद' (American Depository Receipts - ADR) किसी विदेशी कंपनी के शेयर खरीदने तथा लाभांश और पूंजीगत लाभ को

अमरीकी डॉलर में प्राप्ति हेतु यह एक उत्तम तरीका है। तथापि, एडीआर किसी दूसरे देश में अंतर्निहित शेयरों के लिए मुद्रा और आर्थिक जोखिम को खत्म के लिए नहीं है। उदाहरण के लिए, यूरो में लाभांश भुगतान अमरीकी डॉलर में कनवर्ट हो जाएगा, रूपांतरण खर्च और विदेशी करों से निवल (net) और जमा समझौते के अनुसार। NYSE, AMEX या Nasdaq पर सूचीबद्ध होते हैं।
निक्षेपागार प्राप्तियों (Depositary Receipts - DRs) परक्राम्य प्रतिभूतियां हैं जो भारत से बाहर एक भारतीय कंपनी की ओर से, एक निक्षेपागार बैंक द्वारा जारी किए गए हैं। ये भारत में अभिरक्षक बैंक द्वारा जमा के रूप में कंपनी के द्वारा निर्गमित स्थानीय रुपये में अंकित (denominated) समता अंशों प्रतिनिधित्व करते हैं। डीआरएस अमेरिका, सिंगापुर, लक्समबर्ग आदि के शेयर बाजारों में कारोबार कर रहे हैं। अमेरिकी बाजार में सूचीबद्ध और कारोबारी डीआरएस अमेरिकी निक्षेपागार प्राप्तियों (ADR) के रूप में जाने जाते हैं तथा कहीं और सूचीबद्ध और कारोबारी निक्षेपागार प्राप्तियों को वैश्विक निक्षेपागार प्राप्तियों (Global Depository Receipts - GDR) के रूप में जाना जाता है। भारतीय संदर्भ में, डीआरएस प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के रूप में देखे जा रहे हैं।

(http://www.rediff.com/money/2006/jun/29adr.html)

प्रारम्भ में वर्ष 1993-94 में पोर्टफोलियो निवेश में हल्की तेजी देखी गई और बाद में एफआईआई प्रवाहों के बढ़ने से वर्ष 2003-04 और 2004-05 में शीघ्र ही काफी तेजी दिखाई पड़ी। वर्ष 2006-07 में एशियाई और विश्वभर के वित्तीय बाजारों में बढ़ी हुई तेजी के साथ, यूरो इक्विटी जो पोर्टफोलियो प्रवाहों की अपेक्षाकृत एक बहुत छोटा घटक थी (वर्ष 1997-98 से 2004-05 की अवधि में एक बिलियन से कम) में वर्ष 2005-06 और 2006-07 में वृद्धि हुई और ये क्रमश 2.6 बिलियन अमरीकी डॉलर और 3.8 बिलियन अमरीकी डॉलर रही। वर्ष 2006-07 में यूरो इक्विटी कुल पोर्टफोलियो निवल प्रवाहों का 54.3 प्रतिशत हुई तथापि, यह संघटन एफआईआई के तहत कम निवल अंतर्प्रवाहों के कारण अधिक उत्पन्न हुआ।
बाजार प्रतिभागियों द्वारा प्रमुख मुद्रा जोड़ों (pairs) में जोखिम से प्रत्यक्ष बचाव में सुविधा के लिए रिजर्व बैंक ने अक्तूबर 2009 में यह प्रस्ताव किया कि मान्यताप्राप्त स्टॉक एक्सचेजों को अमरीकी डालर रूपए संविदाओं जिसकी पहले ही अनुमति दे दी गई है, के अलावा, यूरो भारतीय रुपए, जापानी येन-भारतीय रुपए और पौंड स्टर्लिंग-भारतीय रुपए के मुद्रा जोड़ों में मुद्रा फ्रयूचर्स संविदाओं के पेशकश की अनुमति दी जाए। तदनुसार,सेबी ने 19 जनवरी, 2010 को एक परिपत्र जारी किया जिसमें यूरो-भारतीय रुपए पौंड स्टर्लिंग -भारतीय रुपए और जापानी येन-भारतीय रुपए संबंधी मुद्रा फ्यूचर्स शुरू करने के लिए पात्र स्टाक एक्सचेंजों को अनुमति देने के लिए कहा गया है।

(आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष, पर आधारित)

16.3.5. वाह्य वाणिज्यिक उधार

वाह्य वाणिज्यिक उधार (External Commercial Borrowings -ECB) मध्यकालीन और दीर्घकालीन ऋण होते हैं। वाह्य वाणिज्यिक उधार स्रोतों से निधि प्रवाह सहित ऋण प्रवाह का प्रबन्धन विवेक सम्मत विदेशी ऋण प्रबन्धन के सिद्वान्तों से निर्देशित है। इसमें परिपक्वताओं को दीर्घकाल तक रखने तथा शोधन लागत को निम्न स्तर पर रखने पर बल दिया जाता है। वाह्य वाणिज्यिक उधार को परियोजनाओं या क्षेत्रों की प्राथमिकताओं के क्रम के अधीन समग्र वार्षिक उच्चतम सीमा के अन्तर्गत अनुमोदित किया जाता है और निरन्तर ऊपरी सीमा में संशोधित किया जाता है। सापेक्ष स्थिरता तथा ठोस पूंजी अन्तर्प्रवाह से वाह्य वाणिज्यिक उधार मानदंडों का उदारीकरण कारपोरेटों को 'स्वत: अनुमोदित मार्ग' के अन्तर्गत कतिपय सीमा तक उधार लेने की अनुमति प्रदान करने के स्वरूप में रहा है। वाह्य वाणिज्यिक उधार नीति को पात्र उधारकर्त्ताओं की सूची को विस्तृत करते हुए, वाह्य वाणिज्यिक उधार द्वारा जुटायी गयी निधियों का अन्तिम उपयोग तथा वैश्विक संकट के प्रभाव का सामना करने के लिए वाह्य वाणिज्यिक उधार को बढ़ाने के सन्दर्भ में उदारीकृत किया गया है।

विदेशी वाणिज्यिक उधार (ECB) नीति

संभावित उधारप्राप्त कर्ता (prospective borrower) दो मार्गों (routes) के तहत ECB प्राप्त कर सकता है, नामश: स्वचालित मार्ग और अनुमोदन मार्ग (automatic route and approval route)। स्वचालित मार्ग के तहत शामिल न किए गए ECB पर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अनुमोदन मार्ग के तहत मामला-दर-मामला के आधार पर विचार किया जाता है।

ECB को उदार बनाने के लिए 2008 में की गयी नीतिगत पहलकदमियां

घटते निवेश प्रवाहों के नकारात्मक गिरावट का सामना करने के लिए विदेशी वाणिज्यिक उधारों को उदार बनाने के लिए वर्ष 2008 में कई नीतिगत पहलकदमियां की गयी हैं जो इस प्रकार हैं:

क. आधारभूत संरचना क्षेत्र में उधारकर्त्ताओं को अनुमोदित मार्ग के अन्तर्गत अनुमत अन्तिम उपयोग हेतु रुपया व्यय के लिए 100 मिलियन अमरीकी डालर तक ईसीबी प्राप्त करने की अनुमति दी गयी थी। इस सीमा को अनुमोदित मार्ग के अन्तर्गत आधारभूत संरचना क्षेत्र में उधारकर्त्ताओं हेतु बढ़ाकर 500 मिलियन अमरीकी डालर वार्षिक कर दिया गया। आधारभूत संरचना क्षेत्र में रुपया पूंजी व्यय हेतु 100 मिलियन अमरीकी डालर से अधिक उधार की आवश्यकता, जिसकी 7 वर्षों की न्यूनतम औसत परिपक्वता होनी चाहिए थी, को भी हटा दिया गया है।

ख. अनुमोदित मार्ग तहत उधारकर्त्ताओं के लिए अनुमत अन्तिम उपयोग (आधारभूत संरचना क्षेत्र को छोड़कर) के लिए रुपया व्यय हेतु मौजूदा 20 मिलियन अमरीकी डालर की राशि को बढ़ाकर 50 मिलियन अमरीकी डालर कर दिया।

ग. बैंकों को पट्टा आधार पर संचालित एअरक्राफ्रट इंजन और हेलीकॉप्टर के आयात के सम्बन्ध में प्रतिभूति जमा आदि हेतु पट्टा किराया साख पत्र खोलने हेतु भुगतान की अनुमति दी गयी। बैंकों को विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम (FEMA), 1999 से 'अनापत्ति प्रमाण पत्र' जारी करने की अनुमति प्रदान की गयी है जो एअरक्राफ्ट या हेलीकॉप्टर के आयात के सम्बन्ध में पट्टा संचालन हेतु समुद्रपारीय पट्टाकर्ता के पक्ष में कारपोरेट गारंटी के निर्गम हेतु निर्दिष्ट किया जाता है।

घ. प्रति उधारकर्त्ता को प्रति वित्तीय वर्ष हेतु 500 मिलियन अमरीकी डालर तक ECB स्वत: अनुमोदित मार्ग तहत अनुमत अन्तिम उपयोग हेतु रुपया और अथवा विदेशी मुद्रा व्यय की अनुमति दी गयी थी।

ड. 3जी स्पेक्ट्रम के लिए लाइसेंस / परमिट प्राप्त करने हेतु किए गए भुगतान को ईसीबी उद्देश्य हेतु मात्र अन्तिम प्रयोग के रूप में पात्र समझा जाएगा।

च. गैर-जमा राशि लेने वाले महत्वपूर्ण NBFCs को अस्थायी रूप से आज्ञा, अनुमोदित मार्ग के तहत अल्पावधि विदेशी मुद्रा उधारों को जुटाने के लिए प्रदान की गयी, बशर्ते वे पूंजी पर्याप्तता की विवेकसम्मत आवश्यकताओं तथा प्रकटन मानदंडों की अनुपालन करे।

छ. राष्ट्रीय आवासन बैंक (NHB) के साथ पंजीकृत आवासन वित्त कम्पनियों को अनुमोदित मार्ग तहत अल्पावधि विदेशी मुद्रा बाजारों से जुटाने की अनुमति दी गयी है।

ज. गैर-बैंकिंग वित्त कम्पनियां जो पूर्णत: आधारभूत क्षेत्र के वित्तपोषण में लगी है, को अनुमोदित मार्ग के तहत आधारभूत संरचना क्षेत्र में उधारकर्ताओं को ऋण देने हेतु बहुपक्षीय या क्षेत्रीय वित्तीय संस्थाओं और सरकार के स्वामित्वाधीन विकास वित्तीय संस्थाओं से ECB प्राप्त करने की अनुमति दी गयी है।

झ. सेवा क्षेत्र में कारपोरेट यानि होटल, अस्पताल और सॉफ्टवेयर कम्पनियों को जिन्हें अब तक अनुमोदित मार्ग-तहत पूंजीगत वस्तुओं के आयात हेतु प्रत्येक वित्तीय वर्ष 100 मिलियन अमरीकी डालर तक ECB प्राप्त करने अनुमति दी गयी है, स्वत: अनुमोदित मार्ग तहत-भूमि अधिग्रहण को छोड़कर अनुमत अन्तिम उपयोग हेतु विदेशी मुद्रा और/अथवा रुपया पूंजी व्यय

दोनों में प्रति वर्ष 100 मिलियन अमरीकी डालर-तक ECB लेने की अनुमति प्रदान की गयी है।

ञ. एकीकृत टाउनशिप के विकास में लगे कारपोरेट को अनुमोदित मार्ग तहत ECB प्राप्त करने की अनुमति दी गयी है।

ट. 2 जनवरी, 2009 से प्रभावी ECB पर समस्त लागत की उच्चतम सीमा को 30 जून, 2009 से समाप्त कर दिया गया है। पात्र उधारकर्ता जो अनुमत समस्त लागत से भी आगे ECB प्राप्त करने के लिए छह माह की लिबोर$300 बीपीएस की और छह माह लिबोर$500 बीपीएस हतु क्रमश: तीन-पांच वर्षों की औसत परिपक्कता अवधि हेतु और 5 वर्षों से अधिक की अवधि के संबंध में ECB प्राप्त करने का प्रस्ताव करते है, वे अनुमोदित मार्ग तहत भारतीय रिजर्व बैंक से सम्पर्क करें।

ECB संबंधी केन्द्र सरकार की एक उच्च स्तरीय समिति ने ECB के कार्यक्षेत्र को बढ़ाने के लिए 15 सितम्बर, 2011 को कई निर्णय लिए थे। इनमें ये शामिल हैं:

i. उच्च निवल मूल्य वाले व्यक्ति (High Networth Individuals - HNIs) जो सेबी द्वारा निर्धारित कसौटी को पूरा करते हैं, अवसंरचना विकास कोषों (IDFs) में निवेश कर सकते हैं।

ii. अवसंरचना वित्त कम्पनियों (Infrastructure Finance Companies – IFCs) का दीर्घावधिक अवसंरचना श्रेणी के कारपोरेट बांडों में FII निवेश करने के लिए पात्र निर्गमकर्ताओं के रूप में शामिल किया गया है।

iii. ECB की अवसंरचना परियोजनाओं के रुपया ऋणों के पुनर्वित्त पोषण के लिए इस शर्त पर अनुमति दी जाएगी कि ऐसी ECB का कम से कम 25 प्रतिशत रुपया ऋण की वापसी अदायगी में प्रयुक्त किया जाएगा और 75 प्रतिशत हिस्सा अवसंरचना क्षेत्र में नई परियोजनाओं में निवेश किया जाएगा। इसकी केवल अनुमोदन मार्ग के तहत ही अनुमति दी जाएगी।

iv. अवसरंचना क्षेत्र में कंपनियों द्वारा पूंजीगत वस्तुओं की खरीद हेतु ECB के माध्यम से क्रेता या पूर्तिकर्ता ऋण का पुनर्वित्तपोषण अनुमोदित किया गया था। इसकी भी केवल अनुमोदन मार्ग के तहत ही अनुमति दी जाएगी।

v. निर्माण के दौरान ब्याज (Interest during Constrution – IDC) हेतु ECB, जो अवसंरचना क्षेत्र में कंपनियों के लिए परियोजना निष्पादन चरण के दौरान ऋण पर संचित होती है, की अनुमति दी जाएगी। यह इस शर्त के अधीन होगा कि आईडीसी का पूंजीकरण किया गया हो और यह परियोजना लागत का अंश हो।

vi. रनमिन्बी (Renminbi - RMB) को ECB जुटाने के लिए स्वीकार्य मुद्रा के रूप में अनुमोदन दिया गया था बशर्ते मौजूदा ECB की उच्चतम सीमा के भीतर 1 बिलियन अमरीकी डालर की सीमा हो। ऐसे उधारों की केवल अनुमोदन मार्ग के तहत अनुमति दी जाएगी।

vii. ECB संबंधी वर्तमान दिशानिर्देशों के अनुसार, पात्र कारपोरेटों के लिए स्वचालित मार्ग के तहत मौजूदा ECB की सीमा 500 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़ाकर 750 मिलियन अमरीकी डालर की गई थी। सेवा क्षेत्र के उधारकर्ताओं के लिए यह सीमा 100 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़ाकर 200 मिलियन अमरीकी डालर की गई थी तथा सूक्ष्म वित्त की गतिविधियों में सक्रिय एनजीओ के लिए मौजूदा 5 मिलियन अमरीकी डालर की सीमा बढ़ाकर 10 मिलियन अमरीकी डालर की गई थी। अन्य सभी शर्तें वर्तमान ECB के दिशानिर्देशों के अनुसार लागू होंगी।

viii. वर्तमान ECB दिशानिर्देशों के अनुसार स्वचालित मार्ग के अंतर्गत, विदेशी इक्विटी धारकों से 'सभी पात्र उधारकर्ताओं' को भारतीय रुपये में मूल्यवर्गगत ECB लेने की अनुमति दी जाएगी सिवाय एनजीओ द्वारा लिए गए ECB के मामलों के।

नवम्बर 2011 में, वैश्विक वित्तीय बाजारों के घटनाक्रमों और बृहत आर्थिक स्थितियों को देखते हुए ECB नीति संशोधित की गई थी। ऑल-इन-कॉस्ट की उच्चतम सीमा बढ़ा दी गई थी और भारत में

रुपया व्यय के लिए विदेशों में जुटाई गई ECB की प्राप्तियों को तत्काल लाया जाना चाहिए। ऑल-इन-कॉस्ट की उच्चतम सीमा में किया गया परिवर्तन 23 नवम्बर, 2011 को प्रवृत्त किया गया तथा यह आगे समीक्षा किए जाने के अधीन है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति की व्यापक समीक्षा के परिणामस्वरूप, 2006 में विस्तृत नीतिगत परिवर्तन अधिसूचित किए गए जिनमें स्वचालित मार्गों (ऑटोमैटिक रूट) को बढ़ाना, इक्विटी की उच्चतम सीमा में वृद्धि करना, प्रतिबंध हटाना, प्रक्रियाओं का सरलीकरण और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को एकल ब्रांड उत्पाद रिटेलिंग तथा कृषि जैसे क्षेत्रों तक बढ़ाना शामिल है।

वर्ष 2008-09 में जिंसों (commodity) के मूल्य में वृद्धि के झटके के तत्काल बाद वैश्विक वित्तीय संकट बढ़ने से कम्पनियों को संसाधन जुटाना कठिन हो गया था। विदेशी पक्ष पर, अमरीकी एवं वैश्विक निक्षेपागार प्राप्तियों(ADRs/GDRs) से निधियों के प्रवाह और विदेशी वाणिज्यिक उधारों में तेजी से गिरावट हुई लेकिन प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों के अन्तर्वाह जारी रहे। विगत कुछ वर्षों में रुपए में अधिक अस्थिरता आई है। यह अस्थिरता निवेशकों के आत्मविश्वास को डगमगाती है और कॉरपोरेट तुलनपत्रों तथा लाभ प्रदता के लिए अर्थापत्तियां हैं ECB के सम्बन्ध में उच्च प्रकटन के मामले में तब जब मुद्रा का अवमूल्यन हो रहा हो। अत: रुपए की अस्थिरता को रोकने के लिए अधिक प्रभावी रवैया अपनाना आवश्यक है।

राजकोषीय वर्ष 2009-10 में, FII अन्तर्प्रवाह के महत्वपूर्ण टर्नअराउण्ड, एफडीआई और एनआरआई जमाराशियों में अनवरत अन्तर्प्रवाह, भारतीय अर्थव्यवस्था के बेहतर वृहत अर्थव्यवस्था निष्पादन और अन्तरराष्ट्रीय बाजारों में अमरीकी डॉलर की कमजोरी के पृष्ठ भाग में अमरीकी डॉलर की तुलना में रुपए में मजबूती आयी है।

(आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष, पर आधारित)

16.4 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. अमरीकी निक्षेपागार प्राप्तियां ऋण देयतायें हैं।
2. विदेशी संस्थागत निवेश अल्पावधि प्रवृति की होती है।
3. विदेशी संस्थागत निवेशकों में बीमा और पुनर्बीमा कंपनियां तथा विदेशी केंद्रीय बैंकों को शामिल नहीं किया जाता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. विदेशी निवेश में .... और पोर्टफोलियो निवेश शामिल है।
   (विदेशी प्रत्यक्ष निवेश **या** माँग)
2. रुपए के मूल्य को स्थिर करने हेतु पूंजी प्रवाहों को प्रोत्साहित करने और विदेशी मुद्रा बाज़ार में सट्टेबाजी को रोकने के लिए ....सरकार द्वारा कदम उठाए जाते हैं।
   (केन्द्र **या** राज्य)
3. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए पूंजी प्रवाह का सर्वाधिक आकर्षक माध्यम समझा जाता है चूंकि इससे अद्यतन प्रौद्यौगिकी आएगी और यह अर्थव्यवस्था की .... क्षमता बढ़ाएगी।
   (उत्पादन **या** राजस्व)
4. ...., वैश्विक निक्षेपागार प्राप्तियां / अमरीकी निक्षेपागार प्राप्तियां का निर्गम और विदेशी निधियां पोर्टफोलिओ निवेश में शामिल की जाती हैं।
   (विदेशी प्रत्यक्ष निवेश **या** विदेशी संस्थागत निवेश)

5. पोर्टफोलियो निवेश मार्ग को और उदार बनाने के लिए, वर्ष .... के बजट में सेबी में पंजीकृत म्यूचुअल फण्डों को इक्विटी स्कीमों के लिए KYC (Know Your Costomer) अपेक्षाओं को पूरा करने वाले विदेशी निवेशकों से अभिदान स्वीकृत करने की अनुमति दी।

(2011-2012 **या** 2015-16)

16.5 सारांश

इस अध्याय में आपने यह जाना कि विदेशी निवेश में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और पोर्टफोलियो निवेश शामिल है। पोर्टफोलियो निवेश में विदेशी संस्थागत निवेशकों का निवेश तथा यूरो निर्गम, अमरीकी निक्षेपागार प्राप्तियां / वैश्विक निक्षेपागार प्राप्तियां सम्मिलित है। ये सभी ऋण भिन्न देयताओं को सूचित करती हैं जबकि ऋणों विदेशी सहायता, विदेशी वाणिज्यिक उधार तथा व्यापार क्रेडिट और अप्रवासी भारतीयों की जमा राशियों सहित बैंकिग पूंजी को ऋण देयताओं में शामिल करते हैं। ईसीबी मध्यकालीन और दीर्घकालीन ऋण होते हैं। संभावित उधारप्राप्त कर्ता दो मार्गों के तहत प्राप्त कर सकता है, नामश: स्वचालित मार्ग और अनुमोदन मार्ग ।

भारत में, पोर्टफोलियो निवेशों की तुलना में एफडीआई को तरज़ीह दी जाती है क्योंकि एफडीआई प्रवाह की प्रवृत्ति पोर्टफोलियो तथा अन्य पूंजी प्रवाहों के स्वरूपों की अपेक्षा अधिक स्थिर है। इसे पूंजी प्रवाह का सर्वाधिक आकर्षक माध्यम समझा जाता है चूंकि इससे अद्यतन प्रौद्यौगिकी आएगी और यह अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता बढ़ाएगी। इसी प्रकार विदेशी मुद्रा ऋण की तुलना में रुपया मूल्य वर्ग-ऋण को तरज़ीह दी जाती है और अल्पावधि की तुलना में मध्यावधि तथा दीर्घावधि ऋण को प्राथमिकता दी जाती है। घरेलू संसाधन जुटाव की अनुपूर्ति हेतु कारपोरेटों द्वारा जारी विदेशी निर्गमों / यूरो निर्गमों भी काफी महत्वपूर्ण हो गये है।

16.6 शब्दावली

- **अमेरिकी निक्षेपागार रसीद -** किसी विदेशी कंपनी के शेयर खरीदने तथा लाभांश और पूंजीगत लाभ को अमरीकी डॉलर में प्राप्ति हेतु यह एक उत्तम तरीका है। तथापि एडीआर किसी दूसरे देश में अंतर्निहित शेयरों के लिए मुद्रा और आर्थिक जोखिम को खत्म के लिए नहीं है। उदाहरण के लिए, यूरो में लाभांश भुगतान अमरीकी डॉलर में कनवर्ट हो जाएगा. रूपांतरण खर्च और विदेशी करों से निवल (net) और जमा समझौते के अनुसार। एडीआर NYSE, AMEX या Nasdaq पर सूचीबद्ध होते हैं।
- **अर्हक विदेशी निवेशक -** इसमें विदेशों में रहने वाले उन व्यक्तियों, समूहों अथवा संघों, को शामिल किया गया है जो वित्तीय कार्रवाई संबंधी कृतिक बल का अनुपालन कर रहे हैं और जिन्होंने अंतरराष्ट्रीय प्रतिभूति आयोग संगठन के समझौता बहुपक्षीय ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए हैं। QFI में FII / उप-खाते शामिल नहीं हैं। इस व्यवस्था के तहत, अनेक क्यूएपफआई, विशेषकर विभिन्न विदेशी नागरिकों का एक बड़ा तबका जो भारतीय इक्विटी बाजार में निवेश करना चाहता था, को सीधे ही निवेश करने की अनुमति मिल गयी है।
- **निक्षेपागार प्राप्तियां -** परक्राम्य प्रतिभूतियां हैं जो भारत से बाहर एक भारतीय कंपनी की ओर से, एक निक्षेपागार बैंक द्वारा जारी किए गए हैं। ये भारत में अभिरक्षक बैंक द्वारा जमा के रूप में कंपनी के द्वारा निर्गमित स्थानीय रुपये में अंकित समता अंशों प्रतिनिधित्व करते हैं। डीआरएस अमेरिका, सिंगापुर, लक्समबर्ग आदि कें शेयर बाजारों में कारोबार कर रहे हैं। अमेरिकी बाजार में सूचीबद्ध और कारोबारी डीआरएस अमेरिकी निक्षेपागार प्राप्तियों (ADR) के रूप में जाने जाते हैं तथा कहीं और सूचीबद्ध और कारोबारी निक्षेपागार प्राप्तियों को वैश्विक निक्षेपागार प्राप्तियों (GDR) के रूप में जाना जाता है। भारतीय सन्दर्भ में, डीआरएस प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के रूप में देखे जा रहे हैं।

- **वाह्य वाणिज्यिक उधार -** ईसीबी मध्यकालीन और दीर्घकालीन ऋण होते हैं। ईसीबी स्रोतों से निधि प्रवाह सहित ऋण प्रवाह का प्रबन्धन विवेक सम्मत विदेशी ऋण प्रबन्धन के सिद्वान्तों से निर्देशित है। इसमें परिपक्वताओं को दीर्घकाल तक रखने तथा शोधन लागत को निम्न स्तर पर रखने पर बल दिया जाता है।
- **विदेशी प्रत्यक्ष निवेश -** उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए इसे पूंजी प्रवाह का सर्वाधिक आकर्षक माध्यम समझा जाता है चूंकि इससे अद्यतन प्रौद्यौगिकी व प्रबंधकीय कौशल आते हैं और यह अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता बढ़ाएगी। भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए गैर-ऋण दीर्घकालीन पूंजी प्रवाह होने के नाते, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, विदेशी वित्तपोषण का महत्वपूर्ण स्रोत है। एफडीआई अन्तर्प्रवाह में वित्तीय सेवाओं, विनिर्माण, बैंकिंग सेवाओं, सूचना प्रौद्योगिकी सेवाओं तथा निर्माण जैसी कई आर्थिक गतिविधियों को शामिल किया जाता हैं। ऋण की तुलना में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के तहत आने वाले समता अंतर्वाह अधिक स्थायी होते हैं।

16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश 2. केन्द्र 3. उत्पादन
4. विदेशी संस्थागत निवेश 5. 2011-12

16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- एडम्स, डेल डब्ल्यू, डग्लस एच. ग्राहम और जे.डी. वॉन पिशके (सं.). अंडरमाइनिंग रूरल डेवलपमेंट विथ चीप क्रेडिट. वेस्टव्यू प्रेस, बोल्डर एंड लंडन, 1984.
- ''व्यापार और वाणिज्य से सम्बन्धित महत्वपूर्ण पीएसयू और अन्य निकाय'' *Indembassysuriname-com-* 2010.07.29। पुनर्प्राप्त किए गए 2010.08.02को।
- मुद्रा और वित्त सम्बन्धी रिपोर्ट, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- भारत 2012-एक सन्दर्भ वार्षिकी, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
- भारत में बैंक संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकीय पुस्तिका, भारतीय रिजर्व बैंक, विभिन्न अंक
- http://business.gov.in
- http://business.gov.in/starting_business
- http://en.wikipedia.org/w/index.php?title=IDBI_Bank
- http://en.wikipedia.org/w/index.php?title=Industrial_Finance_Corporation_of_India
- http://en.wikipedia.org/w/index.php?title=Small_Industries_Development_Bank_of_India
- http://en.wikipedia.org/w/index.php?title=Unit_Trust_of_India

- http://www.eximbankindia.com/hinmith/organisation-h.asp
- http://www.forbes.com/2007/12/20/microfinance-philanthropy-credit-biz-cz_ms_1220microfinance_table.html
- http://www.rediff.com/money/2006/jun/29adr.htm
- http://www-premiumpress-com- & # 32;"निर्यात-आयात बैंक ऑफ इंडिया-भारत माइक्रोफाइनांस व्यापार निर्देशिका» *D-indiamicrofinance-com*-लिया गया 2010-08-02को।
- आर्थिक समीक्षा, विभिन्न वर्ष
- www.investopedia.com

16.9 उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थ

- Apte P.G., *Multinational Financial Management* , New Delhi, Tata McGraw Hill.
- Armendáriz, B. & Morduch, J. *The Economics of Microfinance*. The MIT Press: London.
- Farrell, J.L., *Portfolio Management*, McGraw Hill, New York.
- Levi, Maurice, *International Finance*, McGraw Hill Inc. , New York.
- Machiraju, H.R., *International Financial Markets in India*, Wheeler Publishing, Allahabad.
- Richard Goode, *Government Finance in Developing Countries,* Tata- McGraw Hill Publishing Company Ltd., New Delhi.
- Seth A.K., *International Financial Management*, Galgotia Publishing, New Delhi.
- Shapiro, Allen C., *Multinational Financial Management*, Prentice Hall, New Delhi.

16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में औद्योगिक वित्तपोषण में विदेशी पूंजी के योगदान का योगदान का आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
2. विदेशी पूंजी के सम्बन्ध में भारत सरकार की नीति की समीक्षा कीजिए।
3. औद्योगिक वित्तपोषण में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की उपयोगिता का निरूपण कीजिए।
4. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के सम्बन्ध में सरकारी नीति की विवेचना कीजिए।
5. पोर्टफोलियो निवेश के आर्थिक व औद्योगिक क्षेत्रों पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन कीजिए।
6. वाह्य वाणिज्यिक उधार से क्या तात्पर्य है? इनको उदार बनाने के सम्बन्ध में नीतिगत पहल कदमियों का विवरण दीजिए।